आप्तवाणी

श्रेणी - ५

दादा भगवान प्ररूपित

आप्तवाणी

श्रेणी-५

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरूबहन अमीन

हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : अजित सी. पटेल
महाविदेह फाउन्डेशन
'दादा दर्शन', 5, ममतापार्क सोसायटी,
नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा,
अहमदाबाद - ३८००१४, गुजरात
फोन - (०७९) २७५४०४०८, २७५४३९७९

प्रथम संस्करण : ३००० प्रतियाँ, मई २०११

भाव मूल्य : 'परम विनय' और
'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : ५० रुपये

लेसर कम्पोझ : दादा भगवान फाउन्डेशन, अहमदाबाद

मुद्रक : महाविदेह फाउन्डेशन (प्रिन्टिंग डिवीज़न),
पार्श्वनाथ चैम्बर्स, नई रिज़र्व बैंक के पास,
उस्मानपुरा, अहमदाबाद-३८० ०१४.
फोन : (०७९) २७५४२९६४, ३०००४८२३

त्रिमंत्र

दादा भगवान प्ररूपित

आप्तवाणी

श्रेणी-५

समर्पण

दादा की आप्तवाणी करूँ समर्पण,
आंतरशत्रुओं का बना यह दर्पण.

अविरत वेदीं आधि-व्याधि-उपाधि,
आप्तवाणी के शब्दों से प्राप्त समाधि.

दादा के विश्वकल्याण की राह में,
वाणी प्रकटाए दीपक हर घट में.

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

हिन्दी

१. ज्ञानी पुरूष की पहचान
२. सर्व दु:खों से मुक्ति
३. कर्म का सिद्धांत
४. आत्मबोध
५. मैं कौन हूँ ?
६. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
७. भूगते उसी की भूल
८. एडजस्ट एवरीव्हेयर
९. टकराव टालिए
१०. हुआ सो न्याय
११. चिंता
१२. क्रोध
१३. प्रतिक्रमण
१४. दादा भगवान कौन ?
१५. पैसों का व्यवहार
१६. अंत:करण का स्वरूप
१७. जगत कर्त्ता कौन ?
१८. त्रिमंत्र
१९. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
२०. प्रेम
२१. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार
२२. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य
२३. दान
२४. मानव धर्म
२५. सेवा-परोपकार
२६. मृत्यु समय, पहले और पश्चात
२७. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
२८. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार
२९. क्लेष रहित जीवन
३०. अहिंसा
३१. सत्य-असत्य के रहस्य
३२. चमत्कार
३३. पाप-पुण्य
३४. वाणी, व्यवहार में...
३५. कर्म का विज्ञान
३६. आप्तवाणी - १
३७. आप्तवाणी - ४
३८. आप्तवाणी - ५

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी ५५ पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।**

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।**

दादा भगवान कौन ?

जून १९५८ की एक संध्या का करीब छ: बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए। और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। 'मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?' इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कान्ट्रेक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षु जनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट!

वे स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ''यह जो आपको दिखते है वे दादा भगवान नहीं है, वे तो 'ए.एम.पटेल' है। हम ज्ञानी पुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।''

'व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं', इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसीके पास से पैसा नहीं लिया बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लिंक

'मैं तो कुछ लोगों को अपने हाथों सिद्धि प्रदान करनेवाला हूँ। पीछे अनुगामी चाहिए कि नहीं चाहिए? पीछे लोगों को मार्ग तो चाहिए न?''

– दादाश्री

परम पूज्य दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षु जनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आपश्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरूबहन अमीन (नीरूमाँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थीं। दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरूमाँ वैसे ही मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थी। पूज्य दीपकभाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरूमाँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपकभाई देश-विदेशो में कईं जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवा रहे थे, जो नीरूमाँ के देहविलय पश्चात् आज भी जारी है। इस आत्मज्ञानप्राप्ति के बाद हज़ारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, जिम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

ग्रंथ में मुद्रित वाणी मोक्षार्थी को मार्गदर्शन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी, लेकिन मोक्षप्राप्ति हेतु आत्मज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी है। अक्रम मार्ग के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग आज भी खुला है। जैसे प्रज्वलित दीपक ही दूसरा दीपक प्रज्वलित कर सकता है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी से आत्मज्ञान प्राप्त कर के ही स्वयं का आत्मा जागृत हो सकता है।

निवेदन

आत्मविज्ञानी श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, जिन्हें लोग 'दादा भगवान' के नाम से भी जानते हैं, उनके श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहार ज्ञान संबंधी जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके , संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता हैं।

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान संबंधी विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्भुत संकलन इस आप्तवाणी में हुआ है, जो नये पाठकों के लिए वरदानरूप साबित होगी।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो। उनकी हिन्दी के बारे में उनके ही शब्द में कहें तो "हमारी हिन्दी याने गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी का मिक्सचर है, लेकिन जब 'टी' (चाय) बनेगी, तब अच्छी बनेगी।"

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

प्रस्तुत पुस्तक में कईं जगहों पर कोष्ठक में दर्शाये गये शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गये वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गये हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गये हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों रखे गये हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में दिये गये हैं।

अनुवाद संबंधी कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

आप्तवाणियों के हिन्दी अनुवाद के लिए
परम पूज्य दादाश्री की भावना

'ये आप्तवाणियाँ एक से आठ छप गई हैं। दूसरी चौदह तक तैयार होनेवाली हैं, चौदह भाग। ये आप्तवाणियाँ हिन्दी में छप जाएँ तो सारे हिन्दुस्तान में फैल जाएँ।'

- दादाश्री

परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) के श्रीमुख से आज से पचीस साल पहले निकली इस भावना फलित होने की यह शुरूआत है और आज आप्तवाणी-१ का हिन्दी अनुवाद आपके हाथों में है। भविष्य में और भी आप्तवाणीओं तथा ग्रंथो का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध होगा उसी भावना के साथ जय सच्चिदानंद।

पाठकों से...

- 'आप्तवाणी' में मुद्रित पाठ्यसामग्री मूलतः गुजराती 'आप्तवाणी' श्रेणी-५ का हिन्दी रुपांतर है।
- इस 'आप्तवाणी' में 'आत्मा' शब्द को संस्कृत और गुजराती भाषा की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है।
- जहाँ जहाँ पर चंदूलाल नाम का प्रयोग किया गया है, वहाँ वहाँ पर पाठक स्वयं का नाम समझकर पठन करें।
- 'आप्तवाणी' में अगर कोई बात आप समझ न पायें तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधार कर समाधान प्राप्त करें।

संपादकीय

तत्वज्ञान की अत्यंत गहन बातें सुनने और पढ़ने में तो बहुत आई हैं। जीवन के ध्येय के शिखरों का बहुत लोगों ने तलहटी में रहकर उँगलीनिर्देश किया है! व्यवहार में, 'क्या सत्य है, क्या असत्य है, क्या चौर्य है, क्या अचौर्य है, क्या परिग्रह है, क्या अपरिग्रह है या फिर क्या हेय है और क्या उपादेय है', इनका सारा वर्णन बड़े-बड़े ग्रंथों के रूप में प्रकाशित हुआ है। परन्तु असत्य, हिंसा, चोरी, परिग्रह या हेय का मूल आधार क्या है, वह कहीं भी देखने को नहीं मिलता है। उसमें भी कुछ हद तक कोई विरल ज्ञानी ही कहकर गए होंगे, किन्तु जीवन की सामान्य से सामान्य घटनाओं में कषाय सूक्ष्मरूप से किस तरह कार्य कर जाते हैं, उसका विस्फोट यदि किसीने इस कलिकाल में किया है, तो वे सिर्फ ये 'अक्रम विज्ञानी' परमकृपालु श्री दादाश्री ने! उनके माध्यम से प्रकट हुए 'अक्रम विज्ञान' में आत्मा, अनात्मा, आत्मा-अनात्मा संबंधित ज्ञान, उसी प्रकार विश्वकर्त्ता, जगत्नियंता जैसे गुह्य विज्ञानों का प्राकट्य तो है ही, किन्तु वह सर्वग्राह्य, और प्रत्यक्ष जीवन में अनुभवगम्य बन जाए वैसा गुप्त व्यवहार ज्ञान प्रकाशमान हो, वैसा लक्ष्य प्रस्तुत ग्रंथ में लक्षित हुआ है। वात्सल्यमूर्ति पूज्य दादाश्री की वाणी प्रवचन, व्याख्यान या उपदेशात्मक रूप से प्रवाहित नहीं होती। जिज्ञासु, मुमुक्षु या विचारकों के हृदय में से वास्तविक जीवन प्रश्नों के स्फुरण का सर्व प्रकार से समाधानयुक्त निकलनेवाली 'टेप'वाला विज्ञान है! उसमें कोई विवेचन नहीं है, न ही लम्बा-लम्बा ऊबानेवाला भाषण है! प्रश्नों के प्रत्युत्तर हृदयमर्मी होने से, बुद्धि को छिन्नभिन्न करके आत्मदर्शन में फलित करते हैं! यही महान स्वानुभवी 'ज्ञानी पुरुष' की अपूर्व खूबी है!

'ज्ञानी पुरुष' विश्व की ओब्जर्वेटरी (वेधशाला) माने जाते है। हज़ारों लोगों के अनेक प्रश्नों के सटीक प्रत्युत्तर इस ओब्जर्वेटरी में से सहज रूप से तत्क्षण निकलते हैं, फिर वे प्रश्न तत्वज्ञान के हों, जीवन व्यवहार के हों या पशु-पक्षियों की दिनचर्या के हों!

एक महान तत्वज्ञानी परम पूज्य दादाश्री के उत्तरों पर आफ़रीन होकर पूछ बैठे, 'दादा, आप सभी प्रश्नों के जवाब कहाँ से देते हैं?!'

तब पूज्य दादाश्री ने हँसते-हँसते कहा, ''मैं यह पढ़ा हुआ नहीं बोलता हूँ, यह 'केवळज्ञान' में से 'देखकर' बोलता हूँ!!''

फिर एक व्यक्ति ने उनसे पूछा था, 'दादा, आप इतने सारे प्रश्नों के जवाब देते हैं, फिर भी कभी एक भी भूल नहीं निकलती, उसका क्या कारण है?'

तब पूज्य दादाश्री ने कहा, 'यह टेप में से निकलता है इसलिए। मैं यदि बोलने जाऊँ तो निरी भूलें ही निकलें!!!'

संपूर्ण निरअहंकार का यह तादृश्य दर्शन है!

कारुण्यमूर्ति दादाश्री का न तो कोई पंथ है, न ही पक्ष, न ही कोई सम्प्रदाय, न तो किसी प्रकार का खंडन है, न ही किसीका मंडन (स्थापन) है। उनके पास न तो कोई गद्दी है, न ही कोई गद्दीपति!!! उनके पास तो केवळ एक कारुण्यभाव है कि किस प्रकार इस जगत् के जीव असह्य आर्तता में से विमुक्त होकर आत्मा की अनंत समाधि में लीन हो जाएँ! पुण्य के योग से जो उनके पास पहुँच गया और अंत में उन्हें ज्ञानावतारी पुरुष के रूप में पहचान गया उसका बेड़ा पार हो गया! वर्ना सीधे-सादे, सरल और कोट-टोपी के श्रृंगार में सजे हुए इन भव्यात्मा को सामान्य दृष्टि किस प्रकार से समझ सकती है? उसके लिए तो जौहरी की नज़र ही चाहिए!

परमकृपालु दादाश्री के श्रीमुख से प्रवाहित प्रकट वाणी की यथासमझ संकलन के, जनसमक्ष प्रकटीकरण का एक ही अंतरआशय है कि जगत् उन्हें पहचानकर, उनके ज्ञान का अलभ्य लाभ लेकर, प्रत्यक्ष योग साधकर, आदि-व्याधि और *उपाधि* (बाहर से आनेवाले दु:ख) में भी निरंतर समाधि प्राप्त कर लें। जो हम जैसे हज़ारों पुण्यात्माओं को मिल चुका है!

- डॉ. नीरूबहन अमीन के जय सच्चिदानंद।

उपोद्घात

पाँचों इन्द्रियाँ अपने-अपने धर्म में हैं। मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार भी अपने-अपने धर्म में हैं। तो धर्म कौन चूक गया? आत्मा से। कान सुनते हैं और खुद मानता है 'मैं सुनता हूँ।' आँखें देखती हैं और खुद मानता है कि 'मैं देखता हूँ।' इस प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय के धर्म को खुद का धर्म मानता है। आत्मा का धर्म तो देखना, जानना और परमानंद में रहना, वह है। उसके बदले स्वधर्म चूककर परधर्म में प्रवेश करता है। दूसरों के धर्म को खुद का मानता है और खुद का धर्म भूल गया है! आत्मानुभवी आत्मज्ञानी पुरुष स्वरूप का भान करवा देते हैं, उससे उसे खुद के धर्म का भान हो जाता है, इसलिए ओटोमेटिक दूसरे के धर्म को खुद का मानने से रुक जाता है। स्वधर्म में आ गया तो यहीं पर मोक्ष बरतता है!

खुद जो नहीं है, उसे मैं मानना, वह मिथ्यादृष्टि - उल्टी दृष्टि।

खुद जो है, उसे मैं मानना, वह सम्यक् दृष्टि - सही दृष्टि

सांसारिक जानने का प्रयत्न है, वह मिथ्याज्ञान-अज्ञान है। उल्टी श्रद्धा बैठी इसलिए उल्टा ज्ञान हुआ और उससे उल्टा चारित्र उत्पन्न हुआ। आत्मा को जान लिया, वह सम्यक् ज्ञान है।

भाव, वह चार्ज है और घटना होती है वह डिस्चार्ज है। चोरी करने का भाव करता रहता है, वह चोरी का चार्ज करता है और उसका फल अगले जन्म में आता है। डिस्चार्ज में, कि जिसके आधार पर तब वह चोरी करता है! और यदि उसका पछतावा करे, प्रतिक्रमण करे, तो वह उसमें से छूट जाता है। अक्रम मार्ग में भाव-अभाव दोनों में से मुक्त बन जाता है और मात्र देखने और जानने का ही रहता है!

जीव मात्र प्रवाह के रूप में है। प्रवाह में आगे प्रवाहित होता है। उसमें कोई कर्त्ता नहीं है। कर्त्ता दिखते हैं, वे नैमित्तिक कर्त्ता हैं, स्वतंत्र कर्त्ता नहीं हैं। यदि स्वतंत्र कर्त्ता होता तो खुद हमेशा के लिए बंधन में ही रहता। नैमित्तिक कर्त्ता बंधन में नहीं आता है। कुदरती रूप से संयोगों

के धक्के से जगत् चल ही रहा है। मात्र रोंग बिलीफ़ खड़ी होती है कि मैंने किया। उससे अगले जन्म का कर्मबीज डलता है! इसलिए अखा भगत ने कहा है,

'जो तू जीव तो कर्त्ता हरि, जो तू शिव तो वस्तु खरी,
कर्त्ता मिटे तो छूटे कर्म, ए छे महाभजन का मर्म।'

अज्ञानता में अनौपचारिक व्यवहार से आत्मा द्रव्यकर्म का कर्त्ता है। जो सचर है वह मिकेनिकल आत्मा है, प्रकृति है, और मूल आत्मा अचल है। पूरा जगत् प्रकृति को स्थिर करने जाता है। जो स्वभाव से ही चंचल है, वह स्थिर किस प्रकार से हो सकता है? अचल, ऐसा मेरा आत्मस्वरूप है और बाकी की दूसरी सारी ही चंचल प्रकृति है, वह मुझसे बिल्कुल अलग ही है, मात्र इतना जान लेना है। फिर प्रकृति, प्रकृति में बरतेगी और आत्मा, आत्मा में बरतेगा, भिन्न रहकर!

शास्त्र पढ़कर मानते हैं, 'मैं जानता हूँ।' उससे बल्कि अहंकार बढ़ा, फिर वह जाए कहाँ से? वह तो ज्ञानी मिलें, तब काम होता है।

यह बंधा हुआ है, वह कौन? अहंकार, उसका मोक्ष करना है। आत्मा तो मुक्त ही है। अज्ञानता से मानता है कि 'मैं बंध गया', वह ज्ञान होते ही मुक्त हो जाता है! फिर अहंकार चला जाता है। अहंकार जाए तो 'मैं कर रहा हूँ, वह कर रहा है और वे कर रहे हैं', वह मिथ्यादृष्टि ही खत्म हो जाती है!

प्रकृति करती है टेढ़ा, तो तू कर अंदर सीधा। प्रकृति क्रोध करे तब तू अंदर प्रतिक्रमण कर। भीतर हम सुधारें, फिर प्रकृति चाहे जितना टेढ़ा करे तब भी तू उसके लिए जिम्मेदार नहीं है। प्रकृति बिल्कुल अलग ही है, उसे अलग ही रखना है। पराई पीड़ा में नहीं पड़ते। प्रकृति अभिप्राय रखे और हम अभिप्राय रहित बनें।

वीतरागों का तरीका कैसा होता है? 'ये गलत हैं, भूलवाले हैं', कहा, कि पकड़े गए! वहाँ कोई अभिप्राय ही नहीं देना चाहिए। हमारी दृष्टि ही नहीं बिगड़नी चाहिए!

अक्रम विज्ञान में सारी ही छूट देते हैं। कर्म नहीं बंधेंगे कहीं भी, उसकी दादा गारन्टी देते हैं, मात्र एक ही भयस्थान बताते हैं, *अणहक्क* (बिना हक़ का) के विषयों का।

द्वेष और अभाव में बहुत फर्क है। अभाव अर्थात् डिस्लाइक, वह मानसिक होता है। वह तो ज्ञानी को भी होता है, लाइक एन्ड डिस्लाइक। और द्वेष, वह अहंकारी वस्तु है! अभाव, वे तो अभिप्राय किए हुए हैं, उनके फलस्वरूप रहते हैं। उनके प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे, तब जाएँगे।

मन को दबाना नहीं होता है। उसे समझा-बुझाकर शांत करना होता है। संयमी को यमराज भी वश में रहते हैं, यानी कि मृत्यु का भी उसे भय नहीं रहता!

याद आया वह परिग्रह। स्वरूप से दूर करे वह परिग्रह।

अक्रमविज्ञान से स्वरूप की प्राप्ति होती है, जो क्रोध-मान-माया-लोभ को खत्म कर देती है! व्यवहार शुद्ध बनता है और पूरा वर्ल्ड आश्चर्यचकित हो जाता है, उस व्यवहार को देखकर! परम पूज्य दादाश्री का ऐसा ही व्यवहार देखने को मिलता है। उसे देखकर ही हमें ऐसा सीखने को मिलता है।

परम विनय तो ज्ञान मिलते ही अपने आप उत्पन्न हो जाता है! परम विनय से मोक्ष है, क्रियाओं से नहीं। मंदिरों में विनय है। ज्ञानी के पास परम विनय उत्पन्न होता है। जो संसार में अभ्युदय और मोक्ष के लिए आनुषंगिक, दोनों फल देता है!

जिनका विनय करो, उनकी निंदा नहीं करते।
ज्ञानी भाव को ही देखते हैं, क्रिया को नहीं।

किसीने किसीको मार डाला, तो वह प्रकृति करती है, हिसाब है, 'व्यवस्थित' है वगैरह-वगैरह ज्ञान के अवलंबन फर्स्ट स्टेज के हैं, और अंतिम स्टेज में तो, मूल स्वभाव में तो, वह मरता ही नहीं, नाशवंत चीज़ों का नाश होता ही रहता है। इसलिए जगत् निर्दोष है। मारता है वह भी

निर्दोष है और मरता है वह भी निर्दोष है, जो बचाए वह भी निर्दोष है!

सभी दु:खों का मूल अज्ञान है। अज्ञान से कषाय हैं और कषाय ही रात-दिन कचोटते हैं!

ज्ञान मिलने के बाद जप-तप क्रियाएँ वगैरह साधनों की ज़रूरत नहीं रहती। मात्र ज्ञानी की आज्ञा में ही रहें, तो हो जाता है मोक्ष!

ज्ञानी मिलें, तभी अंतर का भेदन होता है और तभी अंदर का सबकुछ दिखता है, और उससे छूटा जा सकता है।

आत्मा के अनुभव की बातें ज्ञानी के पास से सुनकर बुद्धि ग्रहण कर लेती है। परन्तु वह भी ज्ञानी का प्रत्यक्ष सुनकर जो बुद्धि सम्यक् हुई हो, वही ग्रहण कर सकती है, नहीं तो कान तक ही जाता है। ज्ञानी की वाणी परमात्मा को स्पर्श करके निकली हुई होती है, इसलिए आवरण भेदकर सामनेवाले को स्पर्श करती है और मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सभी उसे ग्रहण कर लेते हैं। और बाकी सबकी वाणी मन को स्पर्श करके निकलती है, इसलिए वह सिर्फ मन को ही स्पर्श करती है।

अवस्था में तन्मयाकार हो, वहाँ अस्वस्थ हो जाता है, और अविनाशी आत्मा में रहे तो स्वस्थ ही रहेगा हमेशा! आत्मा पौद्‌गलिक अवस्था को जानता है और आत्मा स्वयं अपने आप को ही देखता है। इसलिए सभी आवरण बिंध जाते हैं और सबकुछ शुद्ध हो जाता है!

ज्ञानी निरंतर देह से अलग ही रहते हैं। उसके ज्ञाता-दृष्टा ही रहते हैं, इसलिए उन्हें कोई दु:ख स्पर्श ही नहीं करता। आत्मा का स्वभाव ही नहीं कि उसे कोई दु:ख स्पर्श करे!

मार पड़े तब पूरी रात जगकर इन्वेन्शन (खोजबीन) करे, वह प्रगति करता है। ठंडक में पड़े हुए की प्रगति रुक जाती है।

मोक्ष में जाने का हर एक जीव को अधिकार है। मात्र, ज्ञानी की शरण में जाना पड़ता है।

इस काल में अक्रम विज्ञान, मोक्ष की अंतिम गाड़ी है, जो भी इस

अंतिम अवसर का लाभ उठा ले, वह प्रत्यक्ष मोक्ष में जाएगा वेग से। फिर हज़ारो वर्षों तक भी ठिकाना नहीं पड़ेगा!

आयुष्य में परिवर्तन किसीसे भी नहीं हो सकता। फिर भले ही वे संत हों, महात्मा हों, ज्ञानी हों या तीर्थंकर हों।

मृत्यु के समय जिसका समाधिमरण होता है, उसे देह की पीड़ा परेशान ही नहीं करती। अंतिम घंटा संपूर्ण समाधि में जाता है और जिन्हें अक्रम ज्ञान मिला हो उन सबको ही अंत समय में तो दादा प्रत्यक्ष दिखते हैं या फिर 'मैं शुद्धात्मा हूँ', सिर्फ वही लक्ष्य में रहता है, देह अलग ही लगता है, जो मरता है वह अलग ही लगता है। मरते समय पूरी ज़िन्दगी का लेखाजोखा आ जाता है।

सिद्ध भगवंत सिद्धक्षेत्र में ही होते हैं, केवळज्ञान-स्वरूप ही होते हैं। निरंतर परम सुख में होते हैं और पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशित करते हैं।

'शुद्धात्मा को देखना' अर्थात् क्या? इन आँखों से वे नहीं दिखते। जैसे एक डिब्बी में कीमती हीरा बंद करके रख दिया हो, वह फिर खयाल में ही रहता है कि 'इसमें हीरा है और ऐसा है' वगैरह, वगैरह.. वैसे ही ज्ञान मिलने के बाद मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सभी एक्सेप्ट करते हैं कि 'मैं शुद्धात्मा ही हूँ और सभी में शुद्धात्मा ही है।' फिर शंका नहीं होती!

ज्ञानी की आराधना करें तो शुद्धात्मा की आराधना करने के बराबर है और वही परमात्मा की आराधना है और वही मोक्ष का कारण है।

आत्मसुख की अनुभूति क्या है? किस तरह उसका पता चलता है? आत्मसुख का लक्षण अर्थात् निरंतर निराकुलता रहती है। आकुलता-व्याकुलता हुई तो उपयोग चूक गए, ऐसा समझना। *शाता* (सुख-परिणाम) वेदनीय या *अशाता* (दु:ख-परिणाम) वेदनीय, दोनों को जाने वह आत्मअनुभव।

शारीरिक दु:ख किसे होता है? आत्मा को नहीं, देह को होता है। वह भी 'व्यवस्थित' है। जब वेदना हो, तब हम 'चंदूभाई' से कह दें, ऐसे

हाथ घुमाकर (खुद खुद को ही), 'आपका बहुत सिर दुःख रहा है? अभी कम हो जाएगा!' और वहाँ पर 'मुझे' दुःखा ऐसा लगा कि भूत लिपट जाएगा। डिक्शनरी बदल दो। *अशाता* सुखदायी और *शाता* दुःखदायी। 'ये सारे सुख-दुःख पड़ोसी को हैं' ऐसा समझो।

खुद अपने साथ, प्रकृति के साथ जुदापन का व्यवहार शुरू कर दो। खुद अपने आप से अलग रहकर उसके साथ बातें करना, क्षत्रिय की तरह, तो प्रकृति खत्म होती जाएगी। 'चंदूभाई' को दर्पण के सामने ले जाकर सिर पर हाथ फेरकर बाते करें, दिलासा दें।

ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप, इस प्रकार भगवान ने ऐसे मोक्ष के चार आधारस्तंभ बताए हैं। उणोदरी सबसे बड़ा बाह्यतप है, और मोक्ष के लिए अंतरतप की ज़रूरत है। अंतरतप अर्थात् भयंकर वेदना हो रही हो उस घड़ी 'हम' होम डिपार्टमेन्ट में ही रहें, स्व-परिणति में ही रहें। पर-परिणति उत्पन्न ही नहीं हो, वैसा तप करना है। ये पर-परिणाम हैं, ये मेरे परिणाम नहीं हैं, इस प्रकार स्व-परिणाम में मज़बूत रहे, वही तप! और उससे ही मोक्ष है! वेदना को पराई जाने तो वैसा जानते ही रहोगे और 'मुझे हो रहा है' होते ही फिर उस वेदना का वेदन करते हो। और 'यह सहन नहीं होती' कहा कि वेदना फिर दस गुना लगती है। बोले, वैसा असर हो जाता है। वहाँ क्षत्रियता से काम लेना चाहिए।

आत्मा का स्वभाव कैसा है! जैसा चिंतन करता है वैसा ही तुरन्त हो जाता है! सुखमय चिंतन किया तो सुखमय हो जाता है और दुःखमय चिंतन किया तो दुःखमय हो जाता है! इसलिए जागृत रहना कि दुःखमय चिंतन न हो जाए। ऐसा मत बोलना कि मेरा सिर दुःख रहा है। वहाँ तो ऐसा ही बोलना कि चंदूभाई का सिर दुःख रहा है! पर-भाव में पर-परिणति उत्पन्न नहीं होनी चाहिए। पर-परिणाम को खुद के परिणाम माने, वही पर-परिणति है।

ज्ञानियों को, तीर्थंकरों को भी *अशाता* वेदनीय होती है, परन्तु उसे वे जानते हैं, केवळज्ञान के द्वारा जानते हैं।

चित्त को स्वरूप में ही रखना है, वेदना में या विनाशी वस्तु में नहीं। चित्त अविनाशी में रहा, तो वह हो गया शुद्ध। फिर वह विदेही हो गया! निज शक्ति स्वक्षेत्र में ही है। वह उत्पन्न हो गई कि काम हो गया।

आड़ाई (अहंकार का टेढ़ापन) किसे कहते हैं? खुद की भूल हो गई हो, उसका खुद को पता चल जाता है, फिर भी कोई पूछे कि, 'ऐसा क्यों किया', तो कहता है कि, 'ऐसा करने जैसा था', वह आड़ा कहलाता है। भूल के बारे में पता हो फिर भी ढके, वह सबसे बड़ी *आड़ाई*।

दो प्रकार के इनाम। लॉटरी लगे वह और जेब कटे वह भी, दोनों 'व्यवस्थित' हैं।

जहाँ पर गच्छ-मत वाली वाणी नहीं है, केवळ आत्मा संबंधी ही वाणी है, वे ब्रह्मस्वरूप कहलाते हैं।

आत्मा अनंत हैं। मोक्ष में प्रत्येक आत्मा अलग-अलग ही है और निरंतर स्व-सुख में ही रहते हैं।

पूरा जीवन व्यवहार *गलन* (डिस्चार्ज होना, खाली होना) स्वरूप ही है और फिर 'व्यवस्थित' है। पाँचों ही इन्द्रियाँ उदयाधीन हैं।

कर्मबंध किससे है? 'मैं चंदूलाल हूँ' वह मान्यता ही कर्मबंध का मूल कारण है। बात को सिर्फ समझना ही है। यह विज्ञान है।

विचार आएँ, परेशान करनेवाले आएँ, उन्हें अलग रहकर देखते ही रहना है। विचार मन में से आते हैं। मन कहे, गाड़ी टकरा जाएगी तो? तब वहाँ उसे देखते ही रहना है और आराम से गाड़ी में बैठे रहना है, मन में तन्मयाकार नहीं हो जाना है। बहुत दु:ख आ पड़े तो उसे कहना कि 'दादा के पास जा।'

संसार से बाहर नहीं निकलने दे, वह बुद्धि है। बुद्धि फायदा-नुकसान दिखाती है, जलन करवाती है। ज्ञानी के पास अंतरदाह हमेशा के लिए बंद हो जाता है! सम्यक् बुद्धि हो, वहाँ पर गच्छ-मत कुछ भी नहीं होता! यह मेरा, यह आपका, ऐसे जुदाई नहीं होती!

आउटर बुद्धि (बर्हिबुद्धि) मिकेनिकल है और इनर बुद्धि (आंतर-बुद्धि) स्वतंत्र बनानेवाली है। वह बुद्धि भी मिकेनिकल है। कोई *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) ही नहीं हैं, वैसा स्वतंत्र बनाती है। मिकेनिकल बुद्धि से संसारी चीज़ें मिलती हैं।

'मैं कौन हूँ?' 'मैं किसके आधार पर हूँ?' वह आधार-आधारी का पता चलना आवश्यक है। जगत् में क्या करने जैसा है, क्या नहीं करने जैसा है, और क्या जानना है और क्या नहीं जानना है, इतना ही समझना है।

विरह अर्थात् चैन ही नहीं पड़े, तब संसार से छूटा जा सकता है। विरह ज्ञानी का होना चाहिए। उससे भीतर बिजली उत्पन्न होती है और 'स्वरूप' तेज़वान बनता है! विरह तो बहुत उत्तम वस्तु कहलाती है। ज्ञानी से बहुत काल का परिचय हो जाए, उसे विरह महसूस होता है। जिसे मोक्ष में जाना हो उसे इस विरह की वेदना जगती है!

हम सबका मूल स्वरूप सच्चिदानंद स्वरूप है। 'ज्ञानी पुरुष' रोंग बिलीफ़ फ्रेक्चर कर देते हैं और राइट बिलीफ़ बैठा देते हैं। फिर 'मैं आत्मा ही हूँ' उसका भान होता है, ज्ञान होता है और निरंतर उसका लक्ष्य रहता है! उसके बाद माया जाती है और मोह जाता है।

गौतम स्वामी को महावीर स्वामी पर जो मोह था, उसे प्रशस्त मोह कहा जाता है। उससे संसार के सभी मोह खत्म हो जाते हैं और मोक्ष अवश्य मिलता ही है। प्रशस्त मोह अर्थात् कि जो मोक्ष में ले जानेवाले हैं, उन पर मोह हो जाता है। वह हानिकारक नहीं है। वह तो मोक्ष दिलवा देगा। ज़रा देर लगेगी, परन्तु उससे क्या? वीतरागों पर मोह, वीतरागता लानेवाली वस्तुओं पर मोह, वह प्रशस्त मोह है।

जहाँ शंका हो, वहाँ सायक्लोन आता है! और मोक्ष के लिए तो संपूर्ण नि:शंक होना पड़ेगा। आत्मा के लिए संपूर्ण नि:शंक होना पड़ेगा। और वह नि:शंकता, जब 'ज्ञानी पुरुष' आत्मा का ज्ञान दे, तभी होती है! फिर नए कर्म चार्ज नहीं होते!

यदि संसार में आगे बढ़ना हो तो बुद्धिमार्ग पकड़ो, और मोक्षमार्ग में जाना हो तो अबुधमार्ग पकड़ो। जो विपरीत बुद्धि होती है, ज्ञानी के सत्संग से वह सम्यक् हो जाती है और वह मोक्ष में ले जाती है! संपूर्ण अबुध हो जाए, तब केवळज्ञान होता है! मोक्ष में जाने के लिए बुद्धि काम की नहीं है।

आज्ञा के बिना स्वच्छंद नहीं रुकता और स्वच्छंद गए बिना मोक्ष नहीं होता, इसलिए ज्ञानी की आज्ञा ही धर्म और वही तप! आज्ञा का आराधन ही मोक्ष का उपाय है! योग साधना से एकाग्रता होती है। थोड़ी देर मन स्थिर होता है और वह यदि अबव नॉर्मल हो जाए तो वह महान रोगग्रस्त है। उससे अहंकार बढ़ जाता है और परमात्मा दूर हो जाते हैं।

साक्षीभाव, वह अहंकार से रहता है! कोई गालियाँ दे, अपमान करे और बुरा लग जाए, वही प्रमाण है कि अहंकार है अंदर। साक्षीभाव क्रमिकमार्ग की एक सीढ़ी है। अंत में तो ज्ञाताभाव, दृष्टाभाव में आना है।

आत्मा के बारे में स्वमति से चलना, उसे ही स्वच्छंद कहा है। स्वच्छंद से मार्ग में अंतराय पड़ते हैं।

वर्तन में नहीं लाना है, समझ में सेट कर लेना है, सच्चा ज्ञान! समझने का फल ही वर्तन है। समझ गया हो, परन्तु वर्तन में नहीं आए तब तक दर्शन कहलाता है और वर्तन में आ गया, वह ज्ञान कहलाता है। ज्ञान की माता कौन? समझ! वैसी समझ कहाँ से मिलेगी? ज्ञानी के पास से। पूर्ण समझ वह केवळदर्शन, और वह वर्तन में आ जाए, वह केवळज्ञान है!

जहाँ कुछ भी करने का है, वहाँ मोक्षमार्ग नहीं है। जहाँ समझना है, वही मोक्षमार्ग है! मोक्षमार्ग आसान है, सरल है और सुगम है, बिना किसी मेहनत का मार्ग है। इसलिए काम निकाल लो।

'यह गलत है', ऐसा समझ में आए तब अपने आप वह छूट जाता है। जैसे-जैसे समझदारी दृढ़ होती जाती है, वैसे-वैसे ज्ञान परिणामित होता जाता है। वर्तन में आया, उसे ही चारित्र कहते हैं। सम्यक् चारित्र देखा जा सकता है और केवळ चारित्र, वह इन्द्रियगम्य नहीं है, ज्ञानगम्य है।

श्रद्धा की तुलना में दर्शन उच्च कहलाता है। श्रद्धा बदल जाती है और दर्शन कभी बदलता नहीं! और भीतर सूझ पड़े वह कुदरती देन है। अनेक जन्मों के अनुभव के सार के रूप में सूझ मिलती है!

दो लोग बातें करें, वह आख्यान और समूह में बोले वह व्याख्यान!

अनुकूलता में सावधान रहो। अनुकूलता फिसलाती है और प्रतिकूलता जागृत रखती है।

जिस भाव से बंध पड़ता है उसी भाव से *निर्जरा* (आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना) होती है! क्रूर भाव का बंध पड़े तो *निर्जरा* होते समय क्रूर दिखता है!

शास्त्रज्ञान से निबेड़ा नहीं है, अनुभवज्ञान से निबेड़ा है। और अनुभवज्ञान अनुभवी ज्ञानी के पास से ही मिलता है। शास्त्र हमारी भूल नहीं दिखाते। वे सामान्यभाव से सभी को कह जाते हैं। प्रत्यक्ष के बिना उपाय नहीं है। कागज़ पर बनाया हुआ दीया अंधेरे में प्रकाश देगा? शास्त्रों की सीमा कागज़ पर बनाए हुए दीये जितनी ही है। सच्चा प्रकाश प्रकट दीया, ज्ञानी ही दे सकते हैं!

जहाँ कषाय हैं, वहाँ परिग्रह है, और अकषाय से मोक्ष! अक्रमज्ञान मिलने के बाद कषाय नहीं होते, क्योंकि यहाँ कर्म बंधते ही नहीं। आत्मज्ञान हो जाए, वहाँ कषाय जाएँ!

सत्संग किसलिए करना है? इतना ही समझने के लिए कि कुछ भी करना मत। जो परिणाम हों, उन्हें देखते रहो!

नियतिवाद अर्थात् इस संसार के जीवों का जो प्रवाह चल रहा है, वह नियति के नियम का अनुसरण करके चल रहा है, परन्तु उसमें सिर्फ नियति से ही पूरा नहीं हो जाता। दूसरे कारण जैसे कि काल, स्वभाव, पुरुषार्थ, प्रारब्ध, सभीकुछ आता है।

आत्मज्ञान मिले तब चित्त शुद्ध हो जाता है। शुद्ध चित्त ही शुद्ध चिद्रूप और वही शुद्धात्मा कहलाता है। पूज्य दादाश्री ज्ञान देते हैं तब चित्त पूरा

ही शुद्ध हो जाता है। इसलिए फिर निरंतर 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह लक्ष्य रहा करता है।

जहाँ अहंकार चला जाए, वहाँ निराकुलता होती है।

'मैं चंदूलाल हूँ' वह मान्यता प्रकृति को आधार देती है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का ज्ञान हुआ कि वह आधार खिसक गया। अर्थात् निराधार होते ही वह वस्तु गिर पड़ी। अहंकार हट गया अर्थात् अकर्त्ता हुआ।

महाविदेह क्षेत्र में सीमंधर स्वामी के पास किस तरह जा सकते हैं? पूज्य दादाश्री की पाँच आज्ञा पालेंगे, उससे।

आत्मा और पुद्‌गल में क्या फर्क है? आत्मा एक ही वस्तु है हमारे पास, और पुद्‌गल परमाणु अनंत हैं। पुद्‌गल विभाविक वस्तु है और आत्मा स्वाभाविक है। पुद्‌गल *पूरण-गलन* होता रहता है!

कुछ करना नहीं है, मात्र ज्ञानी के कृपापात्र बनना है। कृपापात्र बनने में बाधक क्या है? आपकी आड़ाइयाँ!

द्रव्य नहीं पलटता। भाव पलटें, तब छूटा जा सकता है। बंद करने से चोरी बंद नहीं होती, परन्तु चोरी करने का भाव पलट जाए तो चोरी बंद हो जाती है! प्रतिक्रमण करने से भाव पलट जाते हैं और कर्म शुद्ध होकर पूरा हो जाता है!

जगत् अहंकार निकालने में फँसा हुआ है। दादाश्री कहते हैं, "इगोलेस बनने की ज़रूरत नहीं है, मात्र 'हम कौन है' जानने की ही ज़रूरत है। अपना जो स्वरूप है उसमें इगोइज़्म है ही नहीं।" आप चंदूभाई नहीं हो, फिर भी मानते हो कि 'मैं चंदूभाई हूँ', वही अहंकार है।

अंदर कषाय होते हैं, चिढ़ होती है, गुस्सा आता है, उसका कारण क्या है? अज्ञानता। अज्ञानता के कारण, अहंकार के कारण, अंदर राग-द्वेष होते ही रहते हैं! इसलिए संसार का रूटकॉज़ अज्ञानता है!

धनवान कौन है? जो मन से राजा हो, वह! पैसे हों तब भी खर्च

करे और नहीं हों फिर भी खर्च करे! हर ग्यारहवें वर्ष में पैसा बदलता है। ग्यारह वर्षों तक एक पैसा भी नया नहीं आया हो, तो करोड़पति भी खाली हो जाए! पहले के समय में लोग लक्ष्मी को किस तरह सँभालकर रखते थे? संपत्ति के चार बराबर भाग करके पच्चीस प्रतिशत की प्रोपर्टी खरीद लेते! पच्चीस प्रतिशत का सोना, पच्चीस प्रतिशत ब्याज पर रखते और पच्चीस प्रतिशत व्यापार में डालते थे। इस सिस्टम से दिवालिया होंगे ही नहीं, कभी भी!

बहुत नुकसान हो जाए तब समझ जाना कि पाप का उदय चल रहा है। इसलिए माथापच्ची एक तरफ रखकर शांति से सत्संग कर, आत्मा का कर। ऐसे समय में व्यापार में कुछ भी करने जाएगा, तो वह उल्टा होगा।

जगत् के लोग शरीर को चेतन कहते हैं। जो काम करते हैं, चलते-फिरते हैं उसे चेतन कहते हैं। परन्तु वास्तविक चेतन तो कुछ भी क्रिया करता ही नहीं। मात्र देखना और जानना, ये दो ही क्रियाएँ उसकी हैं। दूसरा सब अनात्म भाग का है। बोलता है, वह भी मिश्रचेतन है। मिकेनिकल चेतन है। रियल चेतन नहीं है। मूल स्वरूप तो स्थिर है, अचल है। बाकी सब चंचल है। मिकेनिकल का अर्थ ही चंचल, सचर है। आत्मा अचर है, जगत् सचराचर है!

चित्त शुद्ध हुआ, वही अंतरात्मा।

पहले शुद्धात्मा प्रतीति में आता है, लक्ष्य में आता है। उसके बाद अनुभव पद में रहने के लिए शुद्धात्मा में ही तन्मयाकार रहना होता है। परन्तु जब तक कर्म खपाने बाकी हैं, तब तक निरंतर शुद्धात्मा में ही तन्मयाकार नहीं रहा जा सकता। इसलिए उसे अंतरात्मदशा, (इन्ट्रिम गवर्नमेन्ट) कहा है। सभी कर्म पूरे हो जाएँ, तब परमात्मा हो जाता है। शुद्धात्मा पद की प्राप्ति के बाद वृत्तियाँ सारी निजभाव में रहती हैं।

चित्त को शुद्धात्मा में रखो या 'दादा भगवान' में रखो, फिर भी वह चित्त को शुद्ध ही रखेगा। संसार में भटकता हुआ चित्त, वह अशुद्ध चित्त कहलाता है, वह मिश्रचेतन है। और शुद्धचित्त हो जाए वह शुद्धात्मा। 'मैं

शुद्धात्मा हूँ' वैसा लक्ष्य बैठ गया, उसे ही निजस्वरूप का भान हुआ और उसे ही अंतरात्मदशा हुई, ऐसा माना जाता है।

चित्त और प्रज्ञा में क्या फर्क है? चित्त बाहर भटकता है। शुद्ध चित्त होने के बाद में वह नहीं भटकता। प्रज्ञाशक्ति बाहर नहीं जाती। प्रज्ञा तो मूल आत्मा का अंग है, डायरेक्ट शक्ति है। जो ज्ञान और अज्ञान को निरंतर अलग रखती है!

ज्ञानी की समझ से मोहनीय कर्म पूरा खत्म हो सकता है। टकराव टालो। पूर्वग्रहरहित हो जाएँ, तभी कल्याण होगा।

अक्रमज्ञान मिलने के बाद 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह उपयोग रहना चाहिए। जीव मात्र में शुद्धात्मा है, ऐसा दृष्टि में रहना चाहिए। फिर वह व्यक्ति हमारा अपमान करनेवाला हो या जेब काटनेवाला हो! आत्मा जानने के बाद हर एक को खुद का पुद्‌गल खपाना है। हर एक को अपने-अपने धर्म के पुद्‌गल का आवरण होता है। जैन को जैन पुद्‌गल और वैष्णव को वैष्णव पुद्‌गल, जो मोक्ष में जाने से रोकता है। उसे क्षय करने पर ही मोक्ष होगा।

ज्ञानी को चारित्रमोह बहुत कम होता है और ज्ञानी के आश्रितों को उसका क्षय करना बाकी रहता है! जितनी-जितनी 'फाइलें' पूरी होती हैं, उतना-उतना चारित्रमोह क्षय हुआ कहा जाता है। शुद्ध उपयोग से ही चारित्रमोह का क्षय होता है!

कर्म क्रिया से नहीं बंधता, ध्यान से बंधता है! पाँच लाख का दान पुण्य नहीं बंधवाता, परन्तु उस समय भीतर ध्यान में क्या था कि मेयर के दबाव से देने पड़े, नहीं तो पाँच रुपये भी नहीं देता! तो वह वैसा कर्म बांधता है। परन्तु पाँच रुपये भी नहीं देने हैं!!! ध्यान का आधार क्या है? भीतर का 'डेवलपमेन्ट'।

धर्म क्या? अर्थ क्या? काम और मोक्ष क्या?

स्वार्थ अर्थात् सांसारिक स्वार्थ को कहते हैं, वहाँ से लेकर ठेठ

परमार्थ तक का अर्थ, वह स्वार्थ है। आत्मा संबंधी ही स्वार्थ, वह परमार्थ। ऐसे स्वार्थी तो सिर्फ आत्मज्ञानी पुरुष ही होते हैं! सांसारिक स्वार्थ में ले जाए वह सकाम और परमार्थ में ले जाए वह अकाम। धर्म अर्थात् क्या? संसार में भटकाए वह शुभधर्म और मोक्ष में ले जाए वह शुद्धधर्म। अधर्म को धक्के मारना, वह शुभधर्म है। दान, पुण्य, सेवा, मदद वगैरह पुण्य बांधते हैं, वह रिलेटिव धर्म है। और पुण्य-पाप से छुड़वाए, वह रियल धर्म है। मोक्ष अर्थात् संसार के सर्व बंधनों से मुक्त होकर सिद्धगति प्राप्त करना, वह। मुक्ति के कामी को इस जगत् में कोई बांधनेवाला नहीं है! इस जगत् का कोई कर्त्ता नहीं है, भगवान भी नहीं। मात्र साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स से जगत् चल रहा है।

बालकृष्ण की भक्ति से वैकुंठ मिलता है। योगेश्वर कृष्ण की भक्ति और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति से मोक्ष मिलता है। कृष्ण भगवान ने गीता में 'मैं' शब्द का 'आत्मा' के लिए ही उपयोग किया है, देहधारी कृष्ण के लिए नहीं।

ध्यान दो प्रकार के हैं : एक पौद्‌गलिक अर्थात् कि कुंडलिनी का, गुरु का, मंत्र वगैरह का, वह; और दूसरा आत्मा का ध्यान। वह निर्विकल्प समाधि में ले जाता है।

निर्विकल्प अर्थात् विकल्परहित दशा और निर्विचार अर्थात् विचार रहित दशा! ज्ञानी के अलावा निर्विकल्प दशा देखने को ही नहीं मिलती कहीं भी!

सांख्य और योग, उन दोनों पंखों से उड़ा जा सकता है। सांख्य अर्थात् ज्ञान जानना। मन-वचन-काया, अंत:करण के धर्म को जानना, वह सांख्य है। योग के बिना, (गुरु की) मानसिक पूजा के बिना, ऊँचा नहीं चढ़ा जा सकता।

शिव अर्थात् कल्याण स्वरूप। आधि-व्याधि और *उपाधि* में भी समाधि रहे, वह सच्ची समाधि! ध्यान में जो प्रकाश दिखता है वह ज्ञेय है और उसे जाननेवाला आत्मा है, और आत्मा ज्ञाता है।

मनुष्य जीवन का हेतु मुक्ति प्राप्ति का है! और उसके लिए 'ज्ञानी पुरुष' को ढूंढना चाहिए, और वे मिल जाएँ तो काम निकल जाए! शुद्धात्मा और संयोग दो ही हैं जगत् में, उसमें भी संयोग मात्र वियोगी स्वभाव के हैं। संयोग सभी अर्पण कर दिए तो मोक्ष होता है!

जिसे आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं होते, उसे पूरा ही दिन सामायिक है। अक्रम में निरंतर सामायिक रह सके, वैसा है। आर्तध्यान-रौद्रध्यान जाए नहीं तो उसके लिए ४८ मिनिट सामायिक में बैठकर आर्तध्यान-रौद्रध्यान से बिल्कुल मुक्त रहें तो वह सच्ची सामायिक की कही जाएगी। उसके लिए सामायिक करने से पहले विधि करनी पड़ती है कि 'हे भगवान, मैं चंदूलाल, मेरा नाम, मेरी काया, मेरी जात, मेरा मिथ्यात्व, सबकुछ आपको समर्पण करता हूँ। अभी मुझे सामायिक करते समय वीतराग भाव दीजिए!!'

जो तीर्थंकर होनेवाले हैं, उनके लक्षण क्या? निरंतर जगत् कल्याण की भावना। उसके अलावा दूसरी कोई भी भावना नहीं होती। खाना, पीना, रहना, सोना चाहे जैसा मिले, फिर भी कल्याणभावना निरंतर वैसी की वैसी ही रहती है। खुद का संपूर्ण कल्याण हो चुका होता है, वही दूसरों का कल्याण कर सकते हैं। वे ही कल्याण की भावना कर सकते हैं! और जो ज्ञानी की आज्ञा में निरंतर रहे, कृपापात्र बने, तो वह उस स्टेज में आ सकता है!

स्वस्तिक क्या सूचित करता है? चार पंख चार गति सूचित करते हैं और मध्य में मोक्ष!

ये दिखते हैं, वे दादा भगवान नहीं हैं! आपको जो याद आते हैं, वे असल दादा हैं! ये दिखते हैं, वे तो ए. एम. पटेल हैं और भीतर बैठे हैं, वे प्रकट परमात्म स्वरूप 'दादा भगवान' हैं! देहधारी को भगवान नहीं कह सकते। देह तो नाशवंत है और परमात्मा तो परमानेन्ट हैं, हमारे अंदर व्यक्त हुए हैं दादा भगवान! सूरत के स्टेशन की बेंच पर १९५८ में!!!

संतों का व्यवहार शुभाशुभ होता है। ज्ञानी का शुद्ध व्यवहार होता है। जो व्यवहार पूरा होता जाए, वह शुद्ध हुआ कहा जाता है। 'ज्ञानी पुरुष'

को देहधारी परमात्मा ही कहा जाता है! जिनकी एक भी स्थूल भूल या सूक्ष्म भूल नहीं होती, वे 'ज्ञानी पुरुष' कहलाते हैं।

जबरदस्त पुण्यानुबंधी पुण्य परिपक्व हों तब ऐसे 'ज्ञानी पुरुष' से भेंट होती है। इस काल में ऐसे ज्ञानी हो चुके हैं, संपूज्य श्री दादाश्री! कईयों को प्रश्न होगा कि दादा का ज्ञान प्राप्त करना है, परन्तु पूर्व में गुरु बनाए हुए हैं, उनका क्या? उसके लिए पूज्य दादाश्री यहाँ पर कहते हैं कि उन्हें रहने देना, व्यवहार में गुरु चाहिए और मोक्ष के लिए ज्ञानी चाहिए। गुरु वे, जो सांसारिक धर्म सिखलाएँ। वे संत पुरुष कहलाते हैं। अशुभ छुड़वाते हैं और शुभ पकड़वाते हैं। आत्मप्राप्ति वहाँ पर नहीं होती, और 'ज्ञानी पुरुष' मोक्ष देते हैं, घंटेभर में ही, नक़द!

भक्त और ज्ञानी में क्या फर्क है? सेवक और सेव्य जितना!

ज्ञानी जबरदस्त यशनाम कर्म लेकर आए हुए होते हैं। उनसे लोगों के भौतिक काम भी हो जाते हैं, परन्तु ज्ञानी उसमें खुद कुछ भी नहीं करते हैं।

ज्ञानी के अंगूठे में अहंकार विलीन करने का सोल्वेन्ट होता है और उस जगह से ही आपको जल्दी तार पहुँचता है। एक समय भी परसमय में नहीं रहें, निरंतर स्वसमय में रहें, वे सर्वज्ञ। दादा को सभी कर्मों का अभाव होता है। पूज्य दादाश्री कहते कि हमें केवळज्ञान में सिर्फ चार डिग्री की ही कमी है, काल के कारण!

मोक्षमार्ग में पात्रता के लिए मात्र 'परम विनय और मैं कुछ भी नहीं जानता', वह भाव चाहिए। ज्ञानी का अविनय खुद को ही मोक्ष के अंतराय डालता है।

जिस गाँव जाना है, उसका ही ज्ञान जानने जैसा है। उसके अलावा दूसरा कुछ भी इन्वाइट करने जैसा नहीं है। अक्रम विज्ञान में आरती, भक्ति वगैरह क्रियाएँ नहीं कहलातीं। उनमें खुद कर्त्ता नहीं बनता है। जुदा रहकर करवाता है। इसलिए यहाँ पर किसी व्यक्ति की भक्ति नहीं है, परन्तु खुद,

खुद के ही आत्मा की भक्ति करता है। वह खुद तब प्रज्ञा स्वरूप में होता है, अज्ञा तो यहीं पर खत्म हो गई। संपूज्य दादाश्री खुद भी अपने अंदरवाले दादा को दोनों हाथों से नमस्कार करके अंदर बैठे हुए 'दादा भगवान के असीम जय जयकार हो' गवाते थे और सबको भी अपने-अपने भीतरवाले दादा भगवान के असीम जय जयकार बोलने को कहते थे! इसीको पराभक्ति कहते हैं! सुननेवाला और बोलनेवाला दोनों सत्संग करते हैं, ऐसा यह अक्रम विज्ञान है।

दादा भगवान कौन? ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप के आधार पर जो अनुभव में आते हैं, वे दादा भगवान हैं। बाकी ये दिखते हैं, वे ए. एम. पटेल हैं। कल यह बुलबुला फट जाएगा। आत्मा सूक्ष्मतम है और देह स्थूल है, जिसे लोग जला देंगे। स्थूल सूक्ष्म को किस तरह जला सकता है? ऐसे ही दादा भगवान आपके, हमारे, सभी के अंदर बिराजमान हैं, जो चौदह लोकों के नाथ हैं और वे आप खुद ही हो!!!

- डॉ. नीरूबहन अमीन

अनुक्रमणिका

आप्तवाणी

श्रेणी - ५

आत्मा, आत्मधर्म में...

दादाश्री : आत्मा क्या कार्य करता है?

प्रश्नकर्ता : आत्मा तो ज्ञाता-दृष्टा है।

दादाश्री : परन्तु आप तो कहते हो न कि 'मैं सुनता हूँ'। आप आत्मा हो या सुननेवाले हो?

प्रश्नकर्ता : 'मैं आत्मा हूँ।'

दादाश्री : परन्तु आत्मा तो सुनता नहीं है, कान ही सुनते हैं न?

प्रश्नकर्ता : *पुद्‌गल* (जिसका सर्जन और विनाश हो) का और आत्मा का संयोग हुआ है न?

दादाश्री : परन्तु आत्मा सुनता होगा या कान?

प्रश्नकर्ता : आत्मा सुनता है, कान तो जड़ हैं।

दादाश्री : तो फिर बहरे को बुलाकर पूछ लो न? बहरे में आत्मा नहीं है? तो कौन सुनता है?

प्रश्नकर्ता : आत्मा नहीं हो तो *पुद्‌गल* की कोई भी इन्द्रिय काम नहीं करेगी।

दादाश्री : उपस्थिति के कारण तो यह जीवन कहलाता है, परन्तु

कान सुनते हैं या आत्मा? यदि आत्मा सुन सकता तो बहरा व्यक्ति भी सुन सकता। तो कहो अब कि 'कौन सुनता है?'

प्रश्नकर्ता : कान द्वारा सुनाई देता है, परन्तु यदि चेतन तत्व हो तो!

दादाश्री : अब चेतन तत्व तो कभी भी कुछ सुनता ही नहीं है। वह तो ज्ञाता–दृष्टा और परमानंदी है! अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतशक्ति, अनंतचारित्र उसमें है! तब क्या सुनने का गुण आत्मा में है, ऐसा आप मान सकते हो?

आत्मा सुनता ही नहीं है। आत्मा में सुनने का गुण ही नहीं है। जैसे इस सोने में जंग लगने का गुण नहीं है, वैसे ही आत्मा में सुनने का गुण नहीं है। बोलने का भी गुण नहीं है।

प्रश्नकर्ता : परन्तु चैतन्यतत्व हो, तब कान सुनेंगे न?

दादाश्री : चैतन्यतत्व की हाज़िरी से ही यह सारा जगत् चल रहा है। यदि चैतन्यतत्व इस शरीर में नहीं हो, आत्मा नहीं हो तो यह शरीर खत्म हो जाए, परन्तु वह चेतन्यतत्व यह नहीं सुनता है।

प्रश्नकर्ता : तो कौन सुनता है, वह आप समझाइए।

दादाश्री : बात तो समझनी ही पड़ेगी न? यदि ऐसा कहें कि 'आत्मा सुनता है' तो, 'आत्मा बोलता है, मेरे आत्मा की आवाज़ बोलती है', ऐसा कहा जाएगा। लौकिक भाषा में कैसा भी चलने दें, परन्तु भगवान की अलौकिक भाषा में वह एक्सेप्ट (स्वीकार) नहीं होगा।

यह आपके साथ बात कर रहे हैं, वह कौन बोल रहा है?

प्रश्नकर्ता : आप बोल रहे हैं।

दादाश्री : 'दादा भगवान' बोल रहे हैं, तो यह 'टेपरिकॉर्डर' भी बोलता है, और यह दो हज़ार में मिलता है यानी 'दादा भगवान' की क़ीमत दो हज़ार की हुई!!!

प्रश्नकर्ता : यह इस बारे में आप समझाइए।

दादाश्री : यह 'दादा भगवान' नहीं बोल रहे है, यह तो 'ओरिजिनल टेपरिकॉर्डर' बोल रहा है। यह 'अक्रम विज्ञान' है। कहीं भी सुनी नहीं हो, वैसी यह बात है!

अत: यह जो सुनते हैं, वह कान का धर्म है। बहरा मनुष्य हो उसे हम क्या कहते हैं कि कान उनके धर्म में नहीं है।

अब आँख का धर्म क्या है?

प्रश्नकर्ता : देखना।

दादाश्री : हाँ, आत्मा का धर्म देखने का नहीं है। नाक का धर्म क्या है?

प्रश्नकर्ता : सूंघना।

दादाश्री : जीभ का धर्म क्या है?

प्रश्नकर्ता : चखना।

दादाश्री : इसलिए कैसा भी कड़वा जीभ पर रखो कि तुरन्त ही पता चल जाता है। अर्थात् ये पाँचों इन्द्रियाँ अपने-अपने धर्मों में हैं। अब उसी प्रकार ही पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने धर्म में हैं। द्रव्येन्द्रियाँ और भावेन्द्रियाँ दोनों हैं। द्रव्येन्द्रियाँ खत्म हो जाएँ, तब भी भीतर भावेन्द्रियाँ रहती हैं। इसलिए पाँच द्रव्येन्द्रियाँ और भावेन्द्रियाँ सभी अपने-अपने धर्म में ही हैं।

मन अपने धर्म में है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : वह समझ में नहीं आता।

दादाश्री : मन हमेशा सोचता रहता है। विचारों का सिलसिला चले तब उसे हम मन कहते हैं। मन दो प्रकार के विचार करता है। खराब विचार करता है और अच्छे विचार भी करता है। अर्थात् दोनों प्रकार के विचार करने, वह मन का धर्म है और विचार ही यदि नहीं आते हों तो उसे

'एबसेन्ट माइन्डेड' कहते हैं। अब पागल को भी 'माइन्ड' होता है, पर 'एबसेन्ट माइन्डेड' अर्थात् जीव योनि में से बेकार हो चुका कहा जाएगा।

अब यहाँ से सुरेन्द्रनगर आपका घर आपको दिखता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दिखता है।

दादाश्री : और घर में टेबल कुरसियाँ, सब दिखता है क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दिखता है।

दादाश्री : वह मन का धर्म नहीं है। अपने यहाँ के लोग नहीं समझने के कारण उसे मन समझते हैं। अब वास्तव में मन नहीं जाता है, परन्तु चित्त जाता है। मन शरीर से बाहर निकल ही नहीं सकता। बाहर जो भटकता है, वह चित्त है।

प्रश्नकर्ता : चित्त और मन, वे दोनों अलग-अलग हैं?

दादाश्री : हाँ, चित्त और मन दोनों अलग-अलग ही हैं। लौकिक भाषा में कुछ भी बोलें, परन्तु भगवान की भाषा लोकोत्तर भाषा है। उसे जब तक हम नहीं समझेंगे तब तक कभी भी मोक्ष नहीं होगा।

अर्थात् चित्त बाहर भटकता है। यहाँ पर ही रहते हुए भी चित्त आपका घर, टेबल, घड़ी सब देख लेता है और मन का स्वभाव सिर्फ विचार करने का ही है। मन अच्छे-बुरे विचार करता है और अच्छा देखना, बुरा देखना वह चित्त का धर्म है।

प्रश्नकर्ता : चित्त को जड़ कहना चाहिए या चेतन कहना चाहिए?

दादाश्री : वह मिश्रचेतन है, वह वास्तव में शुद्ध चेतन नहीं है और मन तो बिल्कुल जड़ है।

अब बुद्धि अपने धर्म में है। बुद्धि का काम क्या है कि फ़ायदा और नुकसान दिखाती है। आप गाड़ी में बैठे कि तुरन्त बुद्धि दिखाती है कि वह जगह अच्छी है, और दुकान में जाओ, वहाँ पर फ़ायदा-नुकसान दिखाती है।

मुझे बुद्धि फ़ायदा-नुकसान नहीं दिखाती, क्योंकि मुझमें बुद्धि नहीं है, वह बहुत कम, नहीं के बराबर बुद्धि है। ३६० डिग्री पर संपूर्ण भगवान कहलाते हैं और ये 'पटेल' ३५६ डिग्री पर हैं। इनमें चार डिग्री कम हैं, इसलिए ये जुदा हुए, नहीं तो 'ये' भी 'महावीर' ही कहलाते!

अर्थात् इस बुद्धि का धर्म फ़ायदा-नुकसान दिखाना है। गाड़ी में, किसीके साथ सौदा करे उसमें या कढ़ी का पतीला गिर गया, तो तुरन्त बुद्धि अपना धर्म अदा करती है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, करती है।

दादाश्री : अब बुद्धि का इसके अलावा एक धर्म और भी है, वह क्या है कि बुद्धि 'डिसीज़न' लेती है। हालाँकि 'डिसीज़न' लेने का बुद्धि का स्वतंत्र धर्म नहीं है। बुद्धि 'डिसाइड' करती है, उस पर अहंकार हस्ताक्षर कर दे, तभी वह पूरा होता है। अहंकार की स्वीकृति के बिना डिसीज़न रूपक में आता ही नहीं है।

अर्थात् इस अंतःकरण में 'पार्लियामेन्टरी' पद्धति है। उसके चार 'मेम्बर' हैं। मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार। यदि मन और बुद्धि एक हो गए तो अहंकार को स्वीकृति देनी ही पड़ती है। चित्त और बुद्धि एक हो गए तो भी अहंकार को स्वीकृति देनी ही पड़ती है। यानी जिसके पक्ष में तीनों गए उसकी बात मान्य होती है। ये संपूर्ण तत्वज्ञान की बातें हैं। परन्तु वह आपको आपकी बुद्धि से समझ में आना चाहिए।

आपको ज्ञान तो नहीं है न?

प्रश्नकर्ता : ज्ञान तो है न!

दादाश्री : आप ज्ञान किसे कहते हो?

प्रश्नकर्ता : ज्ञान अर्थात् समझ?

दादाश्री : ज्ञान अर्थात् समझ नहीं, ज्ञान अर्थात् प्रकाश। यदि प्रकाश आपके पास हो तो ठोकर नहीं लगेगी (चिंता, कषाय, मतभेद नहीं होंगे)।

प्याले फूट जाएँ या कुछ भी हो, फिर भी आप पर असर नहीं होगा। आपको असर होता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, होता है।

दादाश्री : तो वह प्रकाश नहीं है। यह तो पूरा अँधेरा है। अब, अहंकार का धर्म क्या है?

प्रश्नकर्ता : अहम्‌भाव रखना, वह।

दादाश्री : नहीं। जहाँ देखे वहाँ पर अहम्, 'मैंने किया' करता है। बस! अहंकार सिर्फ अहंकार ही करता रहता है कि 'मैंने किया, मैंने भोगा!' यह आम खाया, उस विषय को जीभ भोगती है, बुद्धि भोगती है या अहंकार भोगता है?

प्रश्नकर्ता : अहंकार भोगता है।

दादाश्री : अब जीभ स्वाद लेती है और अहंकार सिर्फ कहता है कि 'मैंने ऐसा किया!' आत्मा में अहंकार नाम की कोई वस्तु ही नहीं है, परन्तु यह खड़ी हो गई है, और अपने-अपने धर्म में ही है फिर! अहंकार करने की जगह पर निरंतर अहंकार करता ही रहता है। कोई अहंकार पर चोट करे, अपमान करे तो तुरन्त अहंकार भग्न हो जाता है या नहीं हो जाता? मान-अपमान दोनों का असर होता है न? यानी अहंकार, अहंकार के धर्म में है।

यानी कान, कान के धर्म में है, आँख, आँख के धर्म में है, नाक, नाक के धर्म में है, सब अपने-अपने धर्म में हैं। अब महावीर भगवान के भी आँखें, कान, नाक सभी अपने-अपने धर्म में थे। उनका भी मन, मन के धर्म में, चित्त, चित्त के धर्म में था। उनकी बुद्धि और अहंकार खत्म हो चुके थे। आपमें भी ये सब अपने-अपने धर्म में ही हैं। सिर्फ 'आत्मा' ही अपने धर्म में नहीं है। 'आत्मा' अपने खुद के धर्म में आ जाए तो बुद्धि और अहंकार खत्म हो जाएँगे। उसका कारण आपको समझाता हूँ।

आत्मा और बुद्धि में फ़र्क है या नहीं? आत्मा, वह प्रकाश है और बुद्धि भी प्रकाश है। बुद्धि 'इन्डायरेक्ट' प्रकाश है, और आत्मा तो 'डायरेक्ट' प्रकाश है। 'इन्डायरेक्ट' प्रकाश अर्थात् सूर्य का प्रकाश दर्पण पर पड़ा और दर्पण में से प्रकाश रसोईघर में गया। यह 'इन्डायरेक्ट' प्रकाश हुआ। उसी तरह आत्मा का प्रकाश अहंकार पर पड़ता है और वहाँ से बाहर निकलता है, उसे बुद्धि कहते हैं। दर्पण की जगह पर अहंकार है और सूर्य की जगह पर आत्मा है। आत्मा मूल प्रकाशवान है। संपूर्ण स्व-पर प्रकाशक है। वह पर को प्रकाशित करता है और स्वयं को भी प्रकाशित करता है। आत्मा सभी ज्ञेयों को प्रकाशित करता है।

अर्थात् अहंकार के 'मीडियम' (माध्यम) से बुद्धि खड़ी हो गई है। अहंकार का मीडियम खत्म हो जाए तो बुद्धि नहीं रहेगी। फिर डायरेक्ट प्रकाश आएगा। मुझे डायरेक्ट प्रकाश मिलता है। आपको अब क्या करना बाकी रहा? अहंकार और बुद्धि को खत्म करना रहा। अब वह खत्म किस तरह से होंगे? 'आत्मा' खुद के धर्म में आ जाए तो वे दोनों निकल जाएँगे। दूसरे सभी तो अपने-अपने धर्म में ही हैं, और कुछ भी बदलने की ज़रूरत नहीं है।

अब 'आत्मा' को खुद के धर्म में लाने के लिए क्या करोगे? उसके लिए क्या साधन चाहिए?

प्रश्नकर्ता : राग-द्वेष कम हो जाने चाहिए।

दादाश्री : यह अँगूठी है। उसके अंदर तांबे का मिक्सचर है। अब हम किसीसे भी कहें कि इसमें से सोना और तांबा अलग कर दो, तो वह कर सकेगा क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं कर सकेगा।

दादाश्री : ऐसा क्यों?

प्रश्नकर्ता : वह तो सुनार का ही काम है।

दादाश्री : दूसरे सब मना करते हैं कि यह हमारा काम नहीं है।

अर्थात् यदि आत्मा जानना हो तो आत्मा के जानकार होने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : 'सत् पुरुष' रूपी सुनार होने चाहिए।

दादाश्री : नहीं, सत् पुरुष तो 'इन' सभी महात्माओं को कहा जाता है। सत् पुरुष किसे कहते हैं कि सत् जिसने प्राप्त किया है और पुरुषार्थ धर्म में आ चुके हैं वे। सत् अर्थात् अविनाशी। सत् पुरुष खुद का अविनाशी पद प्राप्त कर चुके होते हैं। 'मैं आत्मा हूँ' ऐसी प्रतीति, जागृति हो चुकी होती है। परन्तु वे सत् पुरुष ही कहलाते हैं, 'ज्ञानी पुरुष' नहीं कहलाते। 'क्रमिक' में सत् पुरुष के लिए त्यागात्याग संभव है, 'ज्ञानी पुरुष' को त्यागात्याग संभव नहीं है! 'ज्ञानी पुरुष' तो दूसरों को मोक्ष का दान देते हैं! दूसरों को ज्ञानमय बनाते हैं!! श्रीमद् राजचंद्र ने 'ज्ञानी' को मोक्षदाता पुरुष कहा है। 'ये' सभी मोक्ष में रहते ज़रूर हैं, परन्तु दूसरों को मोक्ष नहीं दे सकते। उन्हें आत्मा की प्रतीति और लक्ष्य ही हुआ है। आत्मा का अस्पष्ट वेदन उन्हें रहता है। इसमें तो आत्मा का स्पष्ट वेदन जिसे है वैसे 'ज्ञानी पुरुष' चाहिए। उन्हें कहीं भी आत्मा के अलावा और कुछ भी दिखता ही नहीं है। उन्हें इस जगत् में कोई दोषित दिखता ही नहीं है। जेब काटनेवाला भी दोषित नहीं दिखता और दान देनेवाला भी दोषित नहीं दिखता। फिर भी आप मुझे ऐसा पूछो कि 'ये दोनों एक समान कहलाएँगे?' तब मैं कहूँगा कि, 'ये दान देनेवाला है वह जो क्रिया कर रहा है, उसका फल वह भोगेगा। और जो जेब काट रहा है, वह जो क्रिया कर रहा है, उसका फल वह भोगेगा, बाकी दोषित कोई नहीं है।

प्रश्नकर्ता : दोषित क्यों नहीं कहलाएँगे?

दादाश्री : वे सब संयोग के अनुसार करते हैं। अच्छा करनेवाला भी संयोग के अनुसार करता है और खराब करनेवाला भी संयोग के अनुसार करता है।

अब, आत्मा को आत्मधर्म में लाने के लिए मोक्षदाता पुरुष की ज़रूरत पड़ेगी।

कृपालुदेव ने अपनी पूरी पुस्तक के सार में कहा है कि, 'और कुछ भी मत ढूँढ, मात्र एक सत् पुरुष को ढूँढकर उनके चरणकमल में सर्व भाव अर्पण करके बरतता जा। फिर यदि मोक्ष नहीं मिले, तो मेरे पास से ले लेना।'

अर्थात् हमें यदि मोक्ष नहीं मिले तो वे 'ज्ञानी पुरुष' नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्मा खुद के धर्म में आ गया, उसका प्रमाण क्या?

दादाश्री : यह सब 'मैं कर रहा हूँ' और यह 'मैं हूँ' ये जो रोंग बिलीफ़ पड़ी हुई हैं, वे चली जाती हैं। अभी तो आपको 'मैं चंदूभाई हूँ, इस स्त्री का पति हूँ, इस बच्चे का फादर हूँ, इसका मामा हूँ, मूँगफली का व्यापारी हूँ' ऐसी कितनी सारी रोंग बिलीफ़ आपको होंगी?

प्रश्नकर्ता : असंख्य।

दादाश्री : अब इतनी सारी रोंग बिलीफ़ कब जाएँगी? आत्मा खुद के गुणधर्म में आ जाए तो ये सारी 'रोंग बिलीफ़' चली जाएँगी। 'रोंग बिलीफ़' खत्म हो जाएँगी और 'राइट बिलीफ़' बैठ जाएगी। 'राइट बिलीफ़' को सम्यक् दर्शन कहते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' आत्मा को उसके धर्म में ला देते हैं, जबकि बाकी सब तो अपने-अपने धर्म में है ही।

जब आपको अपने आत्मधर्म में आने की इच्छा हो, तब यहाँ पर आ जाना। 'हम' उसे धर्म में ले आएँगे। आत्मा खुद के धर्म में आ जाए, तो दूसरा सबकुछ छूट जाता है। चार वेद क्या कहते है? 'दिस इज़ नोट देट, दिस इज़ नोट देट!' (यह वह नहीं है, यह वह नहीं है!) तू जिस आत्मा को ढूँढ रहा है वह वेदों में नहीं है, 'गो टु ज्ञानी।' (ज्ञानी के पास जाओ।) आत्मा पुस्तक में उतारा जा सके वैसा नहीं है, क्योंकि आत्मा निःशब्द है, अवर्णनीय है, अव्यक्तव्य है। वह शास्त्रों में किस तरह समाएगा?

श्रीमद् राजचंद्र ने भी कहा है कि ज्ञान, ज्ञानी के पास है और उनके बिना आपका छुटकारा कभी भी नहीं हो सकता। इसलिए 'ज्ञानी' की ही

इसमें ज़रूरत है। चौबीस तीर्थंकर कहते आए हैं कि आत्मज्ञान के लिए निमित्त की ज़रूर है। 'ज्ञानी' कर्त्ता नहीं होते। मैं यदि कर्त्ता होऊँ, तो मुझे कर्म बँधेंगे और आप निमित्त मानो तो आपको पूरा-पूरा लाभ नहीं होगा। मुझे तो 'मैं निमित्त हूँ' ऐसा मानना है और आपको 'ज्ञानी द्वारा हुआ' ऐसा विनय रखना है! हर किसीकी भाषा अलग होती है न?

परम विनय से मोक्ष है।

आत्मा प्राप्त हो गया, खुद के स्वभाव में आ गया, जागृत हो गया, खुद के धर्म में आ गया, फिर बाकी क्या रहा? बाकी सब तो धर्म में है ही, सिर्फ आत्मा ही धर्म में नहीं था।

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञान' मिलने के बाद दादा, यह शर्त हर एक को क़बूल हो जाती है?

दादाश्री : 'ज्ञान' मिलने के बाद तो अपने आप क़बूल होगी ही न? 'ज्ञान' मिलने से पहले किसीको भी क़बूल नहीं होती। फिर किसलिए क़बूल हो जाती है, वह आपको समझाता हूँ। यह जलेबी खिलाने के बाद चाय पिलाएँ तो उसमें क्या फ़र्क आता है?

प्रश्नकर्ता : चाय का स्वाद फीका लगता है।

दादाश्री : यह मैं आपके आत्मा को उसके स्वभाव में अर्थात् उसे खुद के गुणधर्म में ले आता हूँ। इसलिए ये दूसरे सब विषय फीके लगने से आसक्ति खत्म हो जाती है। अब पहले से ही यदि आपको आसक्ति खत्म करने को कहें तो?

प्रश्नकर्ता : तो यहाँ कोई आएगा ही नहीं।

दादाश्री : इसलिए पहले आत्मा को आत्मधर्म में लाना चाहिए। अक्रम में पहले यह है। जब कि क्रमिक में पहले आसक्ति निकालनी है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् अधर्म निकालना चाहिए?

दादाश्री : अधर्म शब्द की हमें ज़रूरत नहीं है। अधर्म क्या है?

धर्म का विरोधी शब्द है। बुरा करना - वह अधर्म, और अच्छा करना - वह धर्म है। परन्तु दोनों कर्त्ताभाव में हैं और इस आत्मा का तो स्वाभाविक धर्म है, सहज धर्म है। अब आत्मा खुद के धर्म में आ जाए तब फिर उसकी पत्नी हो, उसका क्या होगा? उसे क्या निकाल देगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं, परन्तु उस पर से आसक्ति कम करनी पड़ेगी।

दादाश्री : उसके लिए फिर कर्त्ता बनना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : तो वह समझाइए।

दादाश्री : आत्मधर्म में आने के बाद 'बाय रिलेटिव व्यू पोइन्ट', 'आप चंदूभाई हो, इस स्त्री के पति हो, इस बच्चे के फादर हो।' और 'बाय रियल व्यू पोइन्ट' आप शुद्धात्मा हो।

'द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ, गॉड हेज़ नोट पज़ल्ड दिस वर्ल्ड एट ऑल।' (संसार एक पहेली है। भगवान ने इस संसार को पहेली नहीं बनाया है।) यदि परमात्मा ने 'पज़ल' किया होता तो उन्हें यहाँ पर बुलाना पड़ता और दंड देना पड़ता कि आपने इन लोगों को किसलिए उलझाया? यानी कि भगवान ने यह जगत् नहीं उलाझाया है।

'मैं आत्मा हूँ, मैं आत्मा हूँ', ऐसे शब्द बोलने से कुछ नहीं होता है। वह तो भगवान की कृपा उतारनी पड़ती है, उसके बाद ही आप मोक्षगामी बनते हो। अब यहाँ पर मोक्षगामी अर्थात् क्या? इस जन्म में सीधा मोक्ष नहीं है। परन्तु यहाँ पर अज्ञानमुक्ति होती है।

दो प्रकार की मुक्ति है : पहले अज्ञानमुक्ति अर्थात् आत्मा, आत्मस्वभाव में आ गया, वह! दूसरी है-वह है, संपूर्ण देहमुक्ति, सिद्धगति मिलती है वह! यहाँ से एकावतारी हो सकता है! अज्ञानमुक्ति हो उससे फ़ायदा क्या होता है? संसारी दु:खों का अभाव रहा करता है!

मनुष्य क्या ढूँढता है?

प्रश्नकर्ता : दु:खों का अभाव।

दादाश्री : आत्मा स्वभाव से सुखिया ही है और फिर दुःख का अभाव हुआ, फिर रहा क्या?

प्रश्नकर्ता : आत्मा जानने की कुछ चाबियाँ तो होंगी न?

दादाश्री : चाबी-वाबी कुछ भी नहीं होतीं! ज्ञानी के पास जाकर कह देना कि, 'साहब! मैं बेअक्कल, बिल्कुल मूर्ख हूँ! अनंत जन्मों से भटका, परन्तु आत्मा का एक अंश भी, बाल जितना आत्मा भी मैंने जाना नहीं! इसलिए आप कुछ कृपा करें और मेरा इतना काम कर दीजिए!' बस इतना ही करना है। 'ज्ञानी पुरुष' तो मोक्ष का दान देने के लिए ही आए हैं।

और बाद में लोग फिर शोर मचाते हैं कि व्यवहार का क्या होगा? आत्मा जानने के बाद जो बाकी रहा वह सारा ही व्यवहार है। और व्यवहार का भी 'ज्ञानी पुरुष' फिर 'ज्ञान' देते हैं। पाँच आज्ञा देते हैं, कि 'ये मेरी पाँच आज्ञा पालना। जा, तेरा व्यवहार भी शुद्ध और निश्चय भी शुद्ध। जोखिमदारी सब हमारी। मोक्ष यहीं से अनुभव में आना चाहिए। यहाँ से ही नहीं बरते वह सच्चा मोक्ष नहीं है। मुझसे मिलने के बाद यदि फिर यहाँ से मोक्ष नहीं बरते तो ये ज्ञानी सच्चे नहीं हैं और मोक्ष भी सच्चा नहीं है। मोक्ष यहीं पर, इस पाँचवे *आरे* (कालचक्र का एक भाग) में ही अनुभव होना चाहिए, यहाँ पर ही इस कोट-टोपी के साथ! वहाँ बरतेगा उसका तो क्या ठिकाना?'

प्रश्नकर्ता : क्या आत्मा के अलग-अलग प्रकार होते हैं?

दादाश्री : नहीं, आत्मा एक ही प्रकार का होता है।

प्रश्नकर्ता : तो आत्मा को राग-द्वेष लगते है?

दादाश्री : नहीं। आत्मा को राग-द्वेष नहीं लगते। यह तो विभाव उत्पन्न होता है। जो गुण खुद में नहीं है, वह विभाव कहलाता है। आत्मा खुद स्वभाव से वीतराग ही है। उसमें राग-द्वेष का गुण है ही नहीं। यह तो भ्राँति से ऐसा लगता है।

प्रश्नकर्ता : यह जो जन्म-मरण का चक्र चलता है, उसका आत्मा पर असर होने से 'कॉज़ेज़' होते हैं, वह सही है?

दादाश्री : नहीं, नहीं। आत्मा पर असर नहीं होता है। आत्मा का स्वभाव बदलता ही नहीं। उसे सिर्फ 'रोंग बिलीफ़' ही बैठती है।

प्रश्नकर्ता : 'रोंग बिलीफ़' किस तरह बैठ गई?

दादाश्री : खुद के स्वरूप का भान नहीं रहा इसलिए इन लोगों ने दूसरा भान बिठाया और वह ज्ञान फिट हो गया। इसलिए लोग कहते हैं उसके अनुसार उसे श्रद्धा बैठ गई कि वास्तव में 'मैं चंदूभाई हूँ' और ये सारे लोग भी 'एक्सेप्ट' करते हैं। ऐसे करते-करते 'बिलीफ़' किसी भी प्रकार से 'फ्रेक्चर' होती ही नहीं। आत्मा में कुछ भी बदलाव नहीं होता। आत्मा तो सौ प्रतिशत शुद्ध सोने जैसा ही रहता है। सोने में तांबे की मिलावट हो जाए उससे सोना बिगड़ नहीं जाता!

दृष्टि - मिथ्या और सम्यक्

दादाश्री : यह उल्टी दृष्टि है, मिथ्यादृष्टि है, उससे ही ये दुःख उत्पन्न हुए हैं। और समकित अर्थात् सीधी दृष्टि। कभी भी आपकी दृष्टि सीधी हुई थी क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : पूरा संसारकाल घूम चुके, फिर भी एक क्षण के लिए भी सीधी दृष्टि नहीं हुई। क्या नाम है आपका?

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई।

दादाश्री : 'आप चंदूभाई हो', यह बात सच है?

प्रश्नकर्ता : मिथ्यात्व लगता है, अहम्पद लगता है।

दादाश्री : तो फिर आप कौन हो?

प्रश्नकर्ता : उसका ख्याल नहीं आता।

दादाश्री : तो अभी तक क्यों वह जाना नहीं?

प्रश्नकर्ता : हमेशा यही उलझन होती थी कि 'मैं कौन हूँ', परन्तु उसका पता नहीं चलता था।

दादाश्री : 'मैं चंदूलाल हूँ, इस स्त्री का पति हूँ, इसका फादर हूँ, इसका मामा, चाचा', वे सब 'रोंग बिलीफ़' हैं। वे 'रोंग बिलीफ़' 'ज्ञानी पुरुष' 'फ्रेक्चर' कर देते हैं और 'राइट बिलीफ़' बिठा देते हैं। तब हमें समकित दृष्टि मिली कहलाती है।!

विपरीत ज्ञान - सम्यक् ज्ञान

पहले विपरीत ज्ञान जानने का प्रयत्न था, उससे बंधन में आ जाते हैं। अब सम्यक् ज्ञान जानने का प्रयत्न है। यह 'खुद का' है। इससे स्वतंत्र हुआ जाता है। वह भी ज्ञान है इसलिए जानने का 'टेस्ट' आता है (रुचि होती है), परन्तु वह परावलंबी है, किसीका अवलंबन लेना पड़ता है। और सम्यक् ज्ञान खुद को स्वसुख देनेवाला है, स्वावलंबनवाला और स्वतंत्र बनानेवाला है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान तो एक ही प्रकार का होता है न? आत्मा ही ज्ञान है, तो फिर विपरीत ज्ञान और यह ज्ञान अलग-अलग कैसे हो सकते है?

दादाश्री : विपरीत अर्थात् जिसकी ज़रूरत नहीं है, उस ज्ञान में पड़े।

प्रश्नकर्ता : परन्तु उसे ज्ञान कहेंगे?

दादाश्री : ज्ञान ही कहेंगे न? अज्ञान किस आधार पर कहा है? कि 'यह हितकारी नहीं है', इसलिए अज्ञान कहा है।

प्रश्नकर्ता : इसलिए उसे अज्ञान ही कहेंगे न? ज्ञान नहीं कहेंगे न?

दादाश्री : जगत् की दृष्टि से तो सभी ज्ञान ही है न?

जो सांसारिक सबकुछ जानने का प्रयत्न है, वह मिथ्या ज्ञान है। उल्टी श्रद्धा बैठी इसलिए उल्टा ज्ञान उत्पन्न होता है और उल्टा चारित्र उत्पन्न

होता है। उसका स्वाद भी मिलता है और उसकी मार भी पड़ती है। वह राग-द्वेषवाला ज्ञान है और यह वीतरागी ज्ञान है। यह जानने-देखने के साथ ही वीतरागता रहती है और उसे जानते और देखते ही राग-द्वेष होते हैं।

द्रव्यचोर - भावचोर

मन पिछले अवतार का संकुचित फोटो है।

एक मनुष्य 'ऑफ़िसर' (अधिकारी) होता है। उसकी 'वाइफ' उसे कहे कि 'आप रिश्वत नहीं लेते हैं। ये सभी लोग लेते हैं और उन्होंने बंगले बनवा लिए।' अब ऐसा बहुत बार हो तो वह मन में निश्चित करता है कि अरे, मैं भी लूँगा अब से!

परन्तु रिश्वत लेने जाए, उससे पहले ही वह काँप जाता है, और ली नहीं जा सकती। मन सिर्फ निश्चित करता है कि अब से लो। अर्थात् उसने भाव बदला, परन्तु उससे पूरी ज़िन्दगी लिया नहीं जा सकता क्योंकि पहले के ज्ञान के आधार पर मन है। मन, वह गतज्ञान का फल है। अब अभी नया ज्ञान उत्पन्न किया कि रिश्वत लेनी चाहिए। वह ज्ञान अब उसे अगले जन्म में रिश्वत लेने देगा।

दूसरा ऑफ़िसर हो वह इस जन्म में रिश्वत लेता है, परन्तु मन में उसे ऐसे भाव होते रहें कि, 'ये रिश्वत लेते हैं वह गलत हैं। ऐसा क्यों लेता हूँ?' उससे अगले जन्म में रिश्वत नहीं ली जाएगी। और एक पैसा भी नहीं लेता फिर भी लेने के भाव है, उसे भगवान पकड़ते है। वह अगले जन्म में चोर बनेगा और संसार का विस्तार करेगा।

प्रश्नकर्ता : और जो पछतावा करता है, वह छूट रहा है?

दादाश्री : हाँ, वह छूट रहा है। इसलिए वहाँ कुदरत के घर पर न्याय अलग प्रकार का है। यह जैसा दिखता है वैसा वहाँ पर नहीं है, वह बात आपकी समझ में आ रही है?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् भाव भी निकाल देना चाहिए, ऐसा?

दादाश्री : भाव ही निकाल देना है। भाव की ही उठापटक है, यह

वस्तु की बात नहीं है। हक़ीक़त में क्या हुआ, उससे लेना–देना नहीं है भगवान के वहाँ। भाव – वह 'चार्ज' है, और जो वास्तव में होता है वह 'डिस्चार्ज' है।

प्रश्नकर्ता : 'अक्रम ज्ञान' में भाव का क्या स्थान है?

दादाश्री : अक्रम में तो भाव भी नहीं है और अभाव भी नहीं है। उन दोनों से दूर हो गए। भाव और अभाव से संसार खड़ा होता है, 'रिलेटिव डिपार्टमेन्ट' खड़ा होता है। 'अक्रम विज्ञान' से भाव–अभाव उड़ जाते हैं, इसलिए नया 'चार्ज' होना बंद हो जाता है और जो 'चार्ज' किया था, वह 'डिस्चार्ज' होना बाकी रहता है। यानी कि 'कॉज़' बंद हो गए और 'इफेक्ट' बाकी रहते हैं। 'इफेक्ट', वह परिणाम है।

पूरा जगत् परिणाम में ही कलह कर रहा है। फेल हो जाए उसकी कलह नहीं होनी चाहिए। पढ़ते समय हमारी कलह होनी चाहिए, कि भाई पढ़, पढ़! उसे टोको, डाँटो परन्तु फेल होने के बाद में तो उसे कहना कि 'बैठ भाई, खाना खा ले! सूरसागर (बरोड़ा का एक तालाब) में डूबने मत जाना!'

प्रश्नकर्ता : किस भूल के आधार पर ऐसे भाव हो जाते हैं? उदाहरण के तौर पर रिश्वत लेने का भाव होना।

दादाश्री : वह तो उसके ज्ञान की भूल है। सही ज्ञान क्या है, उसका उसे 'डिसीज़न' नहीं है। अज्ञानता के कारण भाव होते हैं, क्योंकि उसे ऐसा लगता है कि इस दुनिया में ऐसा नहीं करूँगा तो मेरी दशा क्या होगी? यानी उसे खुद के ज्ञान पर से भी निश्चय टूट गया है। खुद का ज्ञान गलत है ऐसा वह जानता है। अब, यह ज्ञान, वह मोक्ष का ज्ञान नहीं है। यह व्यवहार का ज्ञान है। और 'टेम्परेरी' रूप में ही होता है कि जो संयोगवश निरंतर बदलता ही रहता है।

संसारप्रवाह

जीव मात्र प्रवाह स्वरूप है। जैसे नर्मदाजी का पानी बहता रहता है,

उसमें हम कुछ भी नहीं करते हैं। बहाव ही हमें आगे की ओर ले जाता है। पिछले जन्म में नौवें मील पर थे, वहाँ अच्छे-अच्छे आम के पेड़, आम, बदाम, अँगूर वगैरह देखे थे। अच्छे बाग़ देखे थे। अब आज इस जन्म में दसवें मील पर आया, वहाँ सबकुछ रेगिस्तान जैसा मिला। इसलिए फिर नौवें मील का ज्ञान उसे कचोटता रहता है। वहाँ आम माँगता है, अँगूर माँगता है, परन्तु किसी चीज़ का ठिकाना नहीं पड़ता। इस तरह यह आगे-आगे बहता ही रहता है! यह सब नियति का काम है, परन्तु नियति 'वन ऑफ द फेक्टर्स' की तरह है, खुद कर्त्ता के रूप में नहीं है। कर्त्ता के रूप में इस जगत् में कोई चीज़ नहीं है। वैसे ही कर्त्ता के बिना यह जगत् बना नहीं है! परन्तु वह नैमित्तिक कर्त्ता है। स्वतंत्र कर्त्ता कोई नहीं है। स्वतंत्र कर्त्ता हो तो बंधन में आएगा, नैमित्तिक कर्त्ता बंधन में नहीं आता!

प्रश्नकर्ता : इसलिए नैमित्तिक कर्त्ता में जो कर्त्ता हो, वह ऐसा मानता है कि मैं निमित्त हूँ?

दादाश्री : हाँ, वह तो खुद अपने आपको खयाल में रहता ही है कि 'मैं निमित्त हूँ।' मुझे लोग ऐसा कहते हैं कि 'दादा आपने ऐसा किया और आपने वैसा किया।' परन्तु मैं तो जानता हूँ न कि इसमें मैं तो निमित्त हूँ! कर्त्ता बने उसे कर्म बँधते हैं। आप किसी भी वस्तु के कर्त्ता बनते हो क्या?

प्रश्नकर्ता : सुबह से शाम तक कर्त्ता ही बनते हैं।

दादाश्री : अब आप कर्त्ता हो या नहीं, उसका आपको प्रमाण देखना है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : आप ऐसा बोलते हो, 'रात को दस बजे सो जाना है और छह बजे उठना है', फिर वहाँ पलंग में सिर तक ओढ़कर लेटे-लेटे आप क्या-क्या योजना गढ़ते हो? फिर एकाएक विचार आता है कि फलाने को पाँच हज़ार रुपये दिए थे, उसका आज खाता बंद करना बाकी रह गया।

तब फिर आपको नींद आएगी क्या? यदि नींद खुद के हाथ में नहीं है, तो दूसरी कौन-सी वस्तु खुद के हाथ में है? जल्दी उठना हो तो अलार्म रखना पड़ता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : वह भी खुद के हाथ में नहीं है! संडास जाना भी खुद के हाथ में नहीं है। कुछ भी अपने हाथ में नहीं है। यह तो कुदरती रूप से अपने आप चलता रहता है। उसके साथ हम 'एडजस्ट' हो जाते हैं कि 'यह मैं कर रहा हूँ।' यह हर एक वस्तु दूसरी शक्ति के अधीन चलती है। ईश्वर भी कर्त्ता नहीं है और आप भी इसके कर्त्ता नहीं हो। इसके कर्त्ता आप हो, ऐसा मानते हो, वही अगले जन्म का बीज है। एक दिन यह सब समझना तो पड़ेगा ही न?

इसलिए अखा भगत ने कहा है कि,

'कर्त्ता मिटे तो छूटे कर्म, ए छे महाभजननो मर्म',
'जो तू जीव तो कर्त्ता हरि, जो तू शिव तो वस्तु खरी।'

किसी जीव को करने की शक्ति है ही नहीं, यह कर्त्ता किस चीज़ के बन बैठे हैं? वास्तव में तो स्वपरिणाम के कर्त्ता है। अब परपरिणाम का कर्त्ता कोई हो सकता है क्या? ये जन्म हुआ, तब से मरण तक सबकुछ अनिवार्य है, और वह परपरिणाम स्वरूप है! उसके हम कर्त्ता समझते हैं, इसलिए अगले जन्म का बीज पड़ता है।

व्यवहार आत्मा : निश्चय आत्मा

अज्ञानता में आत्मा (व्यवहार आत्मा) अनौपचारिक व्यवहार से द्रव्यकर्म का कर्त्ता है। अनौपचारिक व्यवहार अर्थात् जिसमें उपचार भी नहीं करना पड़ता, ऐसे व्यवहार से द्रव्यकर्म का कर्त्ता है। और स्वरूप का भान हो जाने पर हमेशा के लिए स्वपरिणामी है। उसमें वह कुछ विकृत नहीं हो गया। विकृति यदि हो जाए तो बदल ही जाएगा, खत्म हो जाएगा। इतना ही समझ में आ जाए तो काम हो जाएगा।

यह, 'मैं करता हूँ' ऐसा मानता है। अरे, तू यहाँ पर कहाँ है? यह तो सचर है, 'मिकेनिकल' (भौतिक) आत्मा है। उसके भीतर अचर है, वह शुद्धात्मा है। बाहर प्रकृति है, वह सचर विभाग है और अचर आत्मविभाग है। लोग सचर को स्थिर करना चाहते हैं। प्रकृति तो मूल स्वभाव से ही चंचल है। जगत् घड़ीभर भी विस्मृत हो सके, ऐसा नहीं है।

कर्त्तापन का मिथ्यात्व

शास्त्र तो सभी जानते हैं, परन्तु अनजान किससे है? आत्मा से! सबकुछ जाना परन्तु आत्मा से अनजान रहा। वह तो ऐसा ही समझता है कि, 'यह मैं करूँ तो ही होगा।' वह क्या कहता है? अरे, अंगारों पर बैठ। अपने आप हो जाएगा सबकुछ! अंगारों पर बैठने से अपने आप छाले हो जाएँगे या नहीं होंगे? अरे, यह दूसरा सब जाना उससे तो 'इगोइज़म' बढ़ेगा बल्कि!

जो करता है, उसे बंधन होता है। जो कुछ भी किया, वह सब बंधन है। त्याग करें या ग्रहण करें - सब बंधन ही है। लिए तो देने पड़ेंगे और दिए तो लेने पड़ेंगे। ये रुपये उधार दिए हों, उन्हें छोड़ सकते हैं परन्तु त्याग का फल आएगा तब लेना ही पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : सभी शास्त्रों का हेतु तो आत्मा का दर्शन करना ही है न? तो फिर आत्मा का दर्शन क्यों नहीं होता? 'इगोइज़म' क्यों बढ़ता है?

दादाश्री : 'इगोइज़म' बढ़ता है वह भी ठीक है, क्योंकि वह 'डेवेलपमेन्ट' (विकास) है। इन कॉलेजों में सबसे अंतिम पी.एच.डी होने जाते हैं, परन्तु जितने बन सके उतना सच। सभी नहीं बनते। धीरे-धीरे 'डेवलप' (विकसित) होता है। 'इगोइज़म' बढ़ता है, वह भी ठीक है। उसमें जो अंतिम 'ग्रेड' के दो-चार होते हैं उन्हें 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाते हैं, तब वे पास हो जाते हैं। तब तक ऐसे करते-करते आगे बढ़ते हैं। पहले 'इगोइज़म' को खड़ा करता है। हिन्दुस्तान के बाहर जो 'इगोइज़म' है, वह साहजिक 'इगोइज़म' है। उनका 'इगोइज़म' कैसा है? जहाँ जाना है, वहाँ

पर जाने का 'इगोइज़म' करता है और जहाँ नहीं जाना है, वहाँ नहीं जाने का 'इगोइज़म' करता है और हमें जहाँ नहीं जाना है वहाँ चले जाते हैं और जहाँ जाना है वहाँ मना कर देते है! अपने यहाँ सारा विकल्पी 'इगोइज़म' है। उन लोगों का साहजिक 'इगोइज़म' होता है। गाय-भैंसों को होता है वैसा। वहाँ चोरी करनेवाला चोरी करता रहता है, बदमाशी करनेवाला बदमाशी करता है और 'नोबल' हो वह नोबल रहता है। अपने यहाँ तो नोबल भी चोरी करते हैं और चोर भी नोबिलीटी करते हैं। इसलिए, यह देश ही आश्चर्यजनक है न? यह तो 'इन्डियन पज़ल' (भारतीय पहेली) है! जो 'पज़ल' किसीसे 'सोल्व' नहीं हो सकता। फ़ॉरेनवाले बुद्धि लड़ा-लड़ाकर थक जाते हैं, परन्तु उन्हें इसका 'सोल्युशन' नहीं मिलता। चाचा का बेटा ऐसे कहता है कि 'गाड़ी नहीं दे सकते, साहब आनेवाले है!' पूरा अहंकार ही कपटवाला!

और जो क्रियाएँ करते हैं, वह सब ठीक है। वे अहंकार बढ़ाती हैं, और ऐसे करते-करते सब अनुभव चखते-चखते फिर आत्मानुभव होता है।

प्रश्नकर्ता : फिर अंतिम 'स्टेज' (स्थिति) में अहंकार निकल जाता है!

दादाश्री : फिर उसे ज्ञानी मिल जाते हैं। हर एक 'स्टेन्डर्ड' के शिष्य तैयार होते हैं, उसीके अनुसार उसे शिक्षक मिल जाते हैं, ऐसा नियम हैं।

कर्त्ता बना कि बंधन हुआ। फिर भले किसी भी चीज़ का कर्त्ता बने! सकाम कर्म का कर्त्ता बन या निष्काम कर्म का कर्त्ता बन, कर्त्ता बना कि बंधन। निष्काम कर्म से सुख मिलता है, संसार में शांति मिलती है और सकाम से दु:ख मिलता है।

वळगण किसे?

प्रश्नकर्ता : आत्मा को शरीर की *वळगण* (बला, भूतावेश, पाश, बंधन) है, *पुद्गल* की, इसलिए आत्मा भटकता है?

दादाश्री : *वळगण* आत्मा को लगती ही नहीं। यह तो सब अहंकार को ही है। अहंकार है तो आत्मा नहीं है और आत्मा है तो अहंकार नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो आत्मा को मोक्ष देना है न?

दादाश्री : आत्मा मोक्ष में ही है। उसे दुःख ही नहीं है न! जिसे दुःख हो, उसका मोक्ष करना है। खुद बँधा हुआ भी नहीं है, मुक्त ही है। यह तो अज्ञान से मानता है कि 'बँधा हुआ हूँ' और 'मुक्त हूँ' उसका ज्ञान हो जाए तो मुक्त हुआ। वास्तव में बँधा हुआ भी नहीं है। वह मान बैठा है। लोग भी मान बैठे हैं, वैसे ही यह भी मान बैठा है। लोगों में स्पर्धा है यह सब। 'मेरा-तेरा' के भेद डल गए, वे बंधन को मज़बूत करते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसे एकदम से उतरना ज़रा मुश्किल हो जाता है न?

दादाश्री : इसलिए ही तो ये सब अंतराय आते हैं न! समकित नहीं होता, उसका कारण ही यह है। इसलिए ही तो कहा है कि, आत्मज्ञान जानो! आत्मा क्या है, उसे जानो। नहीं तो छूटा नहीं जा सकेगा! शास्त्रकारों ने बहुत-सारे उदाहरण दिए हैं, परन्तु वे समझ में आएँ तब न? आत्मज्ञानी हों, वहीं पर छुटकारा मिलता है। ज्ञानी समझाते हैं कि, 'कितने भाग में तू कर्त्ता है।' वह तो ऐसा मानता है कि, ''सामायिक, जप, तप, योग 'मैं' ही करता हूँ। 'मैं' ही आत्मा हूँ और 'मैं' ही यह करता हूँ।'' अब 'करता है' शब्द आया, तब से ही वह मिथ्यात्व है! 'करोमि, करोसि और करोति' वह सब मिथ्यात्व में है!

प्रकृति करे टेढ़ा : पुरुष करे सीधा

प्रकृति टेढ़ा करे, परन्तु तू अंदर सीधा करना। प्रकृति क्रोध करने लगे तब 'हमें' 'चंदूभाई' से क्या कहना पड़ेगा? 'चंदूभाई यह गलत हो रहा है, ऐसा नहीं होना चाहिए, ऐसा नहीं होना चाहिए।' यानी 'आपका' काम पूरा हो गया! प्रकृति तो कल सुबह उल्टी भी निकले और सीधी

भी निकले। उसके साथ हमारा लेना-देना नहीं है। भगवान क्या कहते हैं कि, 'तू तेरा बिगाड़ना मत।'

मनुष्यों का स्वभाव कैसा होता है कि जैसी प्रकृति वैसा खुद हो जाता है। जब प्रकृति नहीं सुधरती, तब कहेगा, 'रहने दो न!' अरे, नहीं सुधरे तो कोई हर्ज नहीं, तू तेरा अंदर सुधार न! फिर तुम्हारी 'रिस्पोन्सिबिलिटी' (जिम्मेदारी) नहीं है! इतनी हद तक का यह 'साइन्स' है!!! बाहर कैसा भी हो, उसकी 'रिस्पोन्सिबिलिटी' ही नहीं है। इतना समझे तो हल आ जाए। आपको समझ में आया, मैं क्या कहना चाहता हूँ, वह?

प्रश्नकर्ता : हाँ, समझ में आया।

दादाश्री : क्या समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : सिर्फ देखना है, उसके साथ तादात्म्य नहीं होना है।

दादाश्री : ऐसा नहीं। तादात्म्य हो जाए, फिर भी हमें तुरन्त कहना चाहिए, 'ऐसा नहीं होना चाहिए।' यह तो सब गलत है! प्रकृति तो सबकुछ करेगी, क्योंकि वह ग़ैरजिम्मेदार है। परन्तु इतना बोल दिया, तो आप जिम्मेदारी में से छूट गए। अब इसमें कोई परेशानी हो ऐसा है?

प्रश्नकर्ता : परेशानी नहीं है, परन्तु जब क्रोध आता है उस समय भान नहीं रहता।

दादाश्री : अपना 'ज्ञान' ऐसा है कि भान में रखता है। प्रतिक्रमण करता हैं, सभी कुछ करता हैं। आपको भान रहता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : रहता है, दादा।

दादाश्री : हर समय रहता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हरेक समय रहता है।

दादाश्री : अपना 'ज्ञान' ऐसा है कि निरंतर जागृति, और जागृति में ही रखे, और जागृति ही आत्मा है।

प्रकृति तो अभिप्राय भी रखेगी और सबकुछ रखेगी। परन्तु हमें अभिप्राय रहित होना चाहिए। हम अलग, प्रकृति अलग, इन 'दादा' ने वह अलग कर दिया है। फिर आप 'अपना' रोल अलग से निभाओ। इस 'पराई पीड़ा' में नहीं उतरना है।

वीतरागों की रीति

वीतरागों का मत ऐसा है कि ''ये ऐसे हैं', इस प्रकार अभिप्राय बाँधा वह उसका गुनाह है।''

'हम' सिर्फ सावधान करना जानते हैं। फिर आपको टेढ़ा करना हो तो उसका कुछ कर ही नहीं सकते न। वह तो भगवान महावीर के समय में भी उनका शिष्य गोशाला बदल गया था। गोशाला भगवान के सामने व्याख्यान देते हुए कहता है, 'मैं भी महावीर ही हूँ।' इसमें महावीर क्या करें? उन दिनों ऐसे लोग पैदा होते थे, तो आज दो लोग ऐसे पैदा हो जाएँ तो उन्हें हमलोग कुछ नहीं कह सकते? और वैसे हों तब ही अच्छा न?

यह वीतरागों का विज्ञान तो कैसा है? हमने अभिप्राय बाँधा कि 'ये गलत हैं और ये भूलवाले हैं', तो वहाँ पकड़ में आ गए! अभिप्राय तो देना ही नहीं है, परन्तु अपनी दृष्टि भी नहीं बिगड़नी चाहिए! मैं 'सुपरफ्लुअस' (नाटकीय) रहता हूँ। यहाँ कितने सारे महात्मा हैं, उन सभी की हक़ीक़त मैं जानता हूँ, परन्तु मैं कहाँ दख़ल करूँ? दुरुपयोग करने जैसा यह 'ज्ञान' नहीं है।

प्रश्नकर्ता : भगवान को 'क्या गलत और क्या सही' ऐसा है ही नहीं, फिर प्रश्न ही खड़ा नहीं होता।

दादाश्री : वह भगवान की दृष्टि में है। यहाँ प्रश्न खड़ा होता है। हम अभी जब तक भगवान हुए नहीं हैं, तब तक हम गुनहगार हैं।

प्रश्नकर्ता : परन्तु फिर तो सही क्या और गलत क्या, वह प्रश्न गौण हो जाता है न?

दादाश्री : नहीं, परन्तु खेद तो होना ही चाहिए। ये शब्द दुरुपयोग करने के लिए मैं नहीं बोल रहा हूँ। मैं जो बोल रहा हूँ वह आपको 'बोदरेशन' (भार, परेशानी) नहीं रहे इसलिए बोल रहा हूँ। किसीके मन में ऐसा नहीं हो जाए कि, 'मुझे कर्म बँधेंगे', इसलिए खुलकर कह रहा हूँ। नहीं तो मैं भी छान-छानकर नहीं बोलूँ कि, 'कर्म तो बँधेंगे, यदि आप कभी ऐसा नहीं करो तो।'

'हमने' आपको सभी प्रकार की छूट दी है। 'मात्र, एक विषय में जागृत रहना' ऐसा कहते हैं और वह भी खुद की स्त्री अथवा खुद का पुरुष उतने तक ही विषय की छूट देते हैं। *अणहक्क* (बिना हक़ का) के विषय के सामने हम आपको चेतावनी देते है, क्योंकि उसमें बहुत बड़ा जोखिम है। अपने इस 'अक्रम विज्ञान' में इतना ही भयस्थान 'हम' आपको बताते हैं। बाकी सभी तरफ़ से निर्भय बना देते हैं।

अभिप्राय खत्म करो

प्रश्नकर्ता : द्वेष नहीं रहे परन्तु अभाव रहता है, उसका क्या कारण है?

दादाश्री : अभाव, वह चीज़ अलग है। वे सब मानसिक वस्तुएँ हैं। द्वेष तो अहंकारी वस्तु है। अभाव में 'लाइक' और 'डिसलाइक' रहता है। वह तो सभी को रहता है। हम भी बाहर से अंदर आकर यह बिछौना देखें, तब यहाँ आकर बैठ जाते हैं। परन्तु कोई कहे कि आपको यहाँ नहीं बैठना है, वहाँ बैठना है, तो हम वहाँ बैठ जाते हैं। परन्तु पहले 'लाइक' इस बिछौने को करते हैं। हमें द्वेष नहीं होता, परन्तु 'लाइक-डिसलाइक' रहता है। वह मानसिक है, अहंकार नहीं है!

प्रश्नकर्ता : वह अभिप्राय के आधार पर रहता है न?

दादाश्री : वे अभिप्राय सब किए थे, उनके फलरूप ये अभाव रहा करते हैं। उसे हमें 'प्रतिक्रमण' करके बदल देना चाहिए कि सामनेवाला व्यक्ति तो बहुत अच्छा है, फिर हमें वह अच्छा दिखेगा।

प्रश्नकर्ता : अभिप्राय का प्रतिक्रमण करना चाहिए या प्रत्याख्यान करना चाहिए?

दादाश्री : प्रतिक्रमण करना चाहिए। किसीके लिए खराब अभिप्राय बैठ गया हो, तब हमें अच्छा बैठाना चाहिए कि बहुत अच्छा है। जो खराब लगता हो, उसे अच्छा कहा कि बदल जाता है। पिछले अभिप्रायों के कारण आज वह खराब दिखता है। कोई खराब होता ही नहीं है। खुद के मन को ही कह देना चाहिए। अभिप्राय मन ने बनाए हुए हैं। मन के पास *सिलक* (जमापूँजी) है। किसी भी रास्ते मन को बाँधना चाहिए। नहीं तो मन बेलगाम हो जाता है, परेशान करता है।

प्रश्नकर्ता : आपने एक बार कहा था कि मन को सहलाते भी नहीं रहना चाहिए और दबाना भी नहीं चाहिए। तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : हमें मन को दबाना नहीं है, परन्तु उसे हमें 'रिवर्स' (पीछे मोड़ना) में लेना है। इसलिए जिनके लिए हमें खराब अभिप्राय हों तो हमें कहना चाहिए कि, 'ये तो बहुत अच्छे हैं, उपकारी हैं', ऐसा कहें तो मन मान जाता है। 'ज्ञान' के आधार पर मन को क़ाबू में किया जा सकता है। दूसरी किसी चीज़ से मन बँध सके ऐसा नहीं है। क्योंकि मन 'मिकेनिकल' वस्तु है। मन प्रतिदिन 'एग्ज़ोस्ट' होता रहता है। इसलिए अंत में वह खत्म हो जाएगा। नयी शक्ति नहीं मिलती है और पुरानी का उपयोग होता रहता है। मन कहे कि कमर में दुःख रहा है, तब हम उसे कहें कि, 'अच्छा है कि पैर नहीं टूटे।' ऐसा कहें तो मन शांत हो जाएगा। उसे प्लस-माइनस करना पड़ता है!

यमराज वश बरते वह...

दादाश्री : संयम किसे कहते हैं?

प्रश्नकर्ता : परिभाषा मालूम नहीं है।

दादाश्री : यह तो भगवान का शब्द है।

प्रश्नकर्ता : समझकर हम 'ज्ञान' में रहें, वह संयम है।

दादाश्री : ये सब 'कंट्रोल' में रहते हैं, 'आउट ऑफ कंट्रोल' नहीं होते, वह संयम नहीं कहलाता। संयम तो अलग ही वस्तु है। वे संयमधारी कहलाते हैं!

जिसे यमराज नहीं पकड़ें, उनका नाम संयमी! संयमधारी का भगवान ने बखान किया है। संयमधारी के तो दर्शन करने पड़ते है! यमराज को जिन्होंने वश में किया है!!!

प्रश्नकर्ता : यमराज को वश में किया है, वह किस तरह?

दादाश्री : यमराज वश हो चुके हैं, ऐसा कब कहा जाएगा कि जिसे मृत्यु का डर नहीं लगता हो, 'मैं मर जाऊँगा, मैं यमराज के कब्ज़े में हूँ', ऐसा नहीं लगता हो, वह संयमधारी कहलाता है।

संयम का अर्थ अभी लोग कहाँ से कहाँ ले गए हैं! भगवान की भाषा का शब्द एकदम निचली कक्षा में ले गए हैं। भगवान की निश्चय भाषा व्यवहार में ले आए हैं। अभी लोग जिसे संयम कहते है, वास्तव में वह संयम नहीं कहलाता। इसे तो 'कंट्रोल किया' कहा जाता है। मनुष्यों का 'कंट्रोल' कम होता है, इसलिए उन्हें 'कंट्रोल' करना पड़ता है। सभी जानवर कंट्रोलवाले हैं, सिर्फ मनुष्य ही 'डीकंट्रोल'वाले हैं। खुद का भान ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : सत्ता है, परन्तु जिम्मेदारी का भान नहीं है।

दादाश्री : जब कंट्रोल की संपूर्ण सत्ता हाथ में आ गई तब दुरुपयोग किया। इसलिए खुद निराश्रित हो गया! इन गाय-भैंसों को चिंता होती है क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : तब सिर्फ इन मनुष्यों को ही चिंता होती है। क्योंकि सत्ता का दुरुपयोग किया। चिंता खड़ी हुई कि खुद निराश्रित हुआ। 'मेरा क्या होगा?' ऐसा जिस-जिसको होता है वे सब निराश्रित हैं।

याद आएँ, वह परिग्रह

नाश्ता करने में हर्ज नहीं है। लत नहीं लगनी चाहिए। आत्मा को खींच न ले जाए उतनी जागृति रखनी चाहिए। खिंच जाते हों तो प्रतिक्रमण करना चाहिए। भोजन में क्या खींच ले जाता है?

प्रश्नकर्ता : तीखा।

दादाश्री : वापिस याद आता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : तो वह खाया ही नहीं कहलाता, याद आया तो परिग्रह हैं। याद नहीं आया तो वह परिग्रह नहीं कहलाता। बहीखाता लिखना बाकी हो तो याद आता है कि इतनी जमापूंजी बाकी है। मक्ख़ी वहीं पर मंडराती रहती है।

इन 'दादा' की याद ही ऐसी हैं कि सबकुछ भुला दे। यों ही परिग्रह भुला देती है।

प्रश्नकर्ता : साधारण संयोगों में हमें जो याद नहीं आता, परन्तु वह सामने आए और कुछ घंटो तक रहे, वह परिग्रह माना जाता हैं?

दादाश्री : हाँ! जो हमें स्वरूप से दूर करे, वह परिग्रह! वह ग्रह लग गया है, परिग्रह का भूत लग गया है। इसलिए 'हम लोग' 'स्वरूप को' भूल जाते हैं! उतना समय घंटे-दो घंटे स्वरूप का लक्ष चूक जाते हैं। अरे, कुछ लोग तो बारह-बारह घंटे तक चूक जाते हैं। और इस जगत् में, जिसे 'ज्ञान' नहीं दिया हो उसे तो वही चलता रहता है। पूरे दिन पानी दूसरे के खेत में ही जाता है। पंप घर का, इंजन-पानी सबकुछ खुद का, पेट्रोल-ऑइल खुद का और फिर भी पानी जाता है लोगों के खेत में! 'स्वरूप ज्ञान' के बाद सारा पानी खुद के खेत में ही जाता है। 'स्वक्षेत्र' में ही जाता है, 'परक्षेत्र' में नहीं जाता।

प्रश्नकर्ता : पंद्रह दिनों तक याद नहीं आए और फिर याद आए

वह परिग्रह कहलाता है?

दादाश्री : हाँ। भूत आपके पीछे पड़ा है। पूरी दुनिया के भूत लगे हुए हैं आपको? आपको आपके भूत लगे हुए हैं। कुछ बातें होती हैं, उतने में ही भूत लगे हुए हैं। और सब जगहों पर नहीं लगते!

स्वरूपज्ञान की प्राप्ति

प्रश्नकर्ता : क्रोध-मान-माया-लोभ को छोड़ने का रास्ता, वह 'ज्ञान' ही है? और वह 'ज्ञान' इस काल के लिए समन्वित है?

दादाश्री : सच्चा ज्ञान तो वह कहलाता है कि जो क्रोध-मान-माया-लोभ को खत्म कर दे।

प्रश्नकर्ता : उसे प्राप्त कैसे करें?

दादाश्री : वही ज्ञान यहाँ आपको देता हूँ। इन सबके क्रोध-मान-माया-लोभ सारे खत्म ही हो गए हैं।

प्रश्नकर्ता : हृदय की सरलता आनी इतनी आसान है?

दादाश्री : सरलता आनी या नहीं आनी वह तो पूर्वजन्म का हिसाब है। उसका 'डेवलपमेन्ट' है। जितना सरल होगा उतना अधिक उत्तम कहलाएगा। परन्तु वह 'क्रमिकमार्ग' का है। उसमें सरल व्यक्ति धर्म को प्राप्त करता है, परन्तु उसमें करोड़ो जन्मों तक भी मोक्ष का ठिकाना नहीं पड़ता। और यह 'अक्रमविज्ञान' है। यह एक ही अवतारी 'ज्ञान' है। और यदि इस 'ज्ञान' की आराधना हमारी आज्ञापूर्वक की जाए न तो निरंतर समाधि रहेगी! आप डॉक्टर का व्यवसाय करो तो भी निरंतर समाधि रहेगी। कुछ भी बाधक होगा ही नहीं और स्पर्श भी नहीं करेगा। यह तो बहुत उच्च विज्ञान है। इसलिए कविराज कहते हैं कि दस लाख वर्षों में हुआ नहीं है, वैसा यह हो गया है।

प्रश्नकर्ता : शरणागति की आवश्यकता है, ऐसा?

दादाश्री : नहीं। यहाँ पर शरणागति जैसी कोई वस्तु ही नहीं है।

यहाँ पर तो अभेदभाव है। मुझे आपमें से किसीके प्रति जुदाई लगती ही नहीं। और इस दुनिया के प्रति भी बिल्कुल जुदाई नहीं लगती।

प्रश्नकर्ता : आप तो बहुत उच्च कोटि के हैं, हम तो बहुत नीची कोटि के हैं।

दादाश्री : नहीं। ऐसा नहीं है। आप तो मेरी कोटि के ही हो। आप मुझे देखते ही रहो। उससे मेरे जैसे होते रहोगे। दूसरा कोई रास्ता नहीं है। जिसे आप देखते हो, उसी रूप होते जाते हो।

प्रश्नकर्ता : संसार के व्यवहार में शुद्धता, शुचि चाहिए न?

दादाश्री : शुद्धता इतनी अधिक आ जानी चाहिए कि आदर्श व्यवहार कहलाना चाहिए। 'वर्ल्ड' में देखा ही नहीं हो, वैसा सबसे ऊँचा व्यवहार होना चाहिए। हमारा व्यवहार तो बहुत ऊँचा है।

यह विज्ञान ऐसा है। मैं जो आपको दिखाता हूँ, वह केवळज्ञान (एब्सोल्यूट ज्ञान, कैवल्यज्ञान) का आत्मा है और इस जगत् के लोग जिसे आत्मज्ञान कहते हैं, वह शास्त्रीय आत्मज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : पात्रता या अधिकार के बिना यह 'ज्ञान' किस तरह पचेगा?

दादाश्री : पात्रता या अधिकार की यहाँ पर ज़रूरत ही नहीं है। यह आचार की कक्षा पर आधारित नहीं है। बाह्याचार क्या है? पूरा जगत् बाह्याचार पर बैठा है। बाह्याचार, वह 'इफेक्ट' हैं, 'कॉज़ेज़' नहीं है। 'कॉज़ेज़' हम खत्म कर देते हैं। फिर 'इफेक्ट' तो अपने आप धुल जाएगा।

परम विनय

प्रश्नकर्ता : परम विनय वह आचार है क्या?

दादाश्री : परम विनय तो अपने आप उत्पन्न होता है। यह ''ज्ञान'' ही उत्पन्न करता है। जैसे कि बच्चे को समझाया जाए कि यह शीशी 'पोइज़न' की है, और 'पोइज़न' मतलब क्या, ऐसा समझाने के बाद वह

उसे छूता नहीं है। उसी प्रकार यह 'ज्ञान' अविनय छुड़वाता है, और परम विनय उत्पन्न करवाता है। आपको परम विनय में नहीं रहना है, परन्तु...

प्रश्नकर्ता : अपने आप ही रहा जाता है।

दादाश्री : हाँ, अपने आप ही परम विनय में रहा जाता है।

दादा के दरबार का विनय

दादाश्री : यह हम आते हैं और आप सब खड़े हो जाते हो, तो इस उठने–बैठने से तो अंत आए ऐसा नहीं है। उससे तो दम निकल जाएगा।

प्रश्नकर्ता : जिनालय में तो भगवान की मूर्ति के पास वंदना करते समय उठक–बैठक ही करते हैं न?

दादाश्री : वहाँ उठक–बैठक करें तो विनय के बहुत (मार्क) अंक हैं और यहाँ पर तो अन्य बहुत सारी कमाई करनी है न? विनय का फल मोक्ष है, क्रियाओं का फल मोक्ष नहीं है। जिनालय में विनय करो, वह दिखता है। यों क्रिया ज़रूर है, परन्तु उस समय अंदर सूक्ष्म विनय है, वह मोक्षदायी है। वंदन करे उस घड़ी गालियाँ नहीं दे रहा होता है और 'यहाँ' का विनय तो अभ्युदय और आनुषंगिक दोनों फल देता है! गुरु महाराज का विनय करके बाहर आकर निंदा करें तो फिर सबकुछ मिट्टी में ही मिल जाएगा। जिसका विनय करो, उनकी निंदा मत करना और निंदा करनी हो तो वहाँ पर विनय मत करना। उसका कोई अर्थ ही नहीं है न!

आपको तो यहाँ पर कुछ करने को रहा ही नहीं न! यहाँ पर खड़ा होने के लिए तो इसलिए मना करते हैं कि इस काल में लोगों के पैरों का ठिकाना नहीं है। पूरे दिन भाग–दौड़, भाग–दौड़ होती है। ये रेल्वे ने भी पुल चढ़ा–चढ़ाकर दम निकाल दिया है! अब उसमें हम कहें कि 'खड़े हो जाओ, बैठ जाओ' तो उसका कब अंत आएगा? इसके बदले तो ऐसे ही सही–सलामत रहो न। जिसे जैसे अनुकूल आए, वैसे बैठो। 'दादा' को

सबकुछ पहुँच चुका है। ये 'दादा' तो आपके भाव को ही देखते हैं, क्रिया को नहीं देखते।

समझ की श्रेणियाँ

प्रश्नकर्ता : सामनेवाला दोषित नहीं दिखे उसके लिए, 'प्रकृति करती है', उस समझ से काम लेता हूँ।

दादाश्री : वह 'फर्स्ट स्टेज' की बात है, परन्तु अंतिम बात में ऐसा कुछ भी नहीं होता है। आत्मा इसका जानकार ही है। और कुछ भी नहीं है। उसके बदले मान बैठा है कि सामनेवाले ने ही किया! 'रोंग बिलीफ़' ही है सिर्फ।

प्रश्नकर्ता : एकलौते बेटे को मार डाला...

दादाश्री : वह मरता ही नहीं। जो मूल स्वभाव है, जो 'मूल वस्तु' है, वह मरता ही नहीं है। ये तो जो नाशवंत चीज़ें हैं, उनका नाश होता ही रहता है।

जगत् निर्दोष ही दिखता है। जिसकी समझ कम हो, वह हिसाब लगाकर कहता है 'हिसाब होगा।' नहीं तो, 'मेरा बेटा है' ऐसा होगा ही नहीं न!! भगवान की भाषा समझ में आ जाए, उसे तो पूरा जगत् निर्दोष ही दिखेगा न? कोई फूल चढ़ाए तो भी निर्दोष दिखेगा और पत्थर मारे तो भी निर्दोष दिखेगा! एक ने मार डाला और एक ने बचाया। परन्तु दोनों निर्दोष दिखेंगे, विशेषता नहीं दिखेगी उसमें।

आपको हमारे 'ज्ञान' की समझ से समझना हो तो 'व्यवस्थित' है, 'हिसाब है', ऐसा आपको समझना पड़ेगा। उससे आगे जाओगे तब 'मूल वस्तु' समझ में आएगी। 'बचानेवाला कोई बचा ही नहीं सकता, मारनेवाला कोई मार नहीं सकता। सबकुछ कुदरत का काम है यह।' 'व्यवस्थित' है, परन्तु 'व्यवस्थित' के अवलंबन के रूप में यह कौन कर रहा है? उस पूरे भाग को खुद जानता है कि सारी कुदरत की ही क्रियाएँ हैं। कुदरत जीव मात्र का हित ही कर रही है, परन्तु उसे यह काल 'डिस्टर्ब' करता है।

प्रश्नकर्ता : काल 'डिस्टर्ब' करता है, वह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : यह काल 'डिस्टर्ब' नहीं कर रहा होता न तो यह जगत् बहुत सुंदर लगता। ऐसा काल आए, तब नीचे अधोगति में ले जाता है। बाकी कुदरत का अधोगति में ले जाने का काम नहीं है। कुदरत का स्वभाव तो निरंतर उर्ध्वगति में ही ले जाने का है।

एक काल ऐसा था कि सेठ लोग नौकरों को दु:ख देते थे, और अब नौकर सेठ लोगों को दु:ख देते हैं ऐसा काल आया है! काल की विचित्रता है! नॉर्मेलिटी में हो तो सबकुछ सुंदर कहलाएगा। सेठ नौकर को दु:ख ही नहीं दे और नौकर ऐसी तोड़फोड़ ही नहीं करे।

यह तो खुद सिर्फ मान बैठा है। बाप हुआ वह भी मान बैठा है कि मैं बाप हूँ, परन्तु बेटे को दो घंटे खूब गालियाँ दे, तो पता चल जाएगा कि कितने दिनों का बाप है! ठंडा ही हो जाएगा न! सचमुच का बाप होता, तब तो जुदा होते ही नहीं।

पापों का प्रायश्चित

प्रश्नकर्ता : अपने किए हुए पाप भगवान के मंदिर में जाकर हर रविवार को क़बूल कर लिए हों तो फिर पाप माफ़ हो जाएँगे न?

दादाश्री : इस तरह यदि पाप धुल जाते हों न तो कोई बीमार-बीमार होता ही नहीं न? फिर तो कोई दु:ख होता ही नहीं न? परन्तु यह तो अपार दु:ख पड़ता है। माफ़ी माँगने का अर्थ क्या है कि आप माफ़ी माँगो तो आपके पाप का मूल जल जाता है। इसलिए वह फिर से फूटता नहीं, परन्तु उसका फल तो भुगतना ही पड़ता है न?

प्रश्नकर्ता : कोई-कोई जड़ तो फिर से फूट निकलती हैं।

दादाश्री : ठीक से जला नहीं हो, तो वापिस फूटता रहता है। वर्ना, जड़ भले कितनी ही जल गई हो, फिर भी फल तो भुगतने ही पड़ते हैं। भगवान को भी भुगतने पड़े! कृष्ण भगवान को भी यहाँ तीर लगा था!

उसमें किसीका चलता ही नहीं। मुझे भी भोगना पड़ता है!

हर एक धर्म में माफ़ी होती है। क्रिश्चियन, मुस्लिम, हिन्दू सभी में होती है, परन्तु अलग-अलग तरह से होती है।

प्रश्नकर्ता : भगवान ने जो चार प्रकार के सुख दिए हैं, वे चारों ही प्रकार के सुख किसी एक व्यक्ति को आते ही नहीं न?

दादाश्री : ये सुख हैं ही नहीं। सभी कल्पनाएँ हैं। यह सच्चा सुख है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : कौन-सा सच्चा और कौन-सा झूठा सुख, वह अनुभव हुए बिना किस तरह समझ में आएगा?

दादाश्री : खुद को अनुभव होता ही है। बाहर की किसी भी वस्तु की मदद के बिना ऐसा सुख उत्पन्न होता है कि कभी देखा ही नहीं हो!

प्रश्नकर्ता : वह हमेशा रहना चाहिए।

दादाश्री : वह सुख फिर जाता ही नहीं। इन सभी को (ज्ञान लेने के बाद) वैसा सुख उत्पन्न हुआ है, फिर वह गया ही नहीं। फिर उस सुख के ऊपर आप पत्थर डालते रहो, तो आपको लगेंगे ज़रूर, लेकिन हमारी आज्ञा में रहो तो कुछ होगा नहीं। हमारी आज्ञा बिल्कुल आसान है!

सुख का शोधन

दादाश्री : किसलिए तू नौकरी करती है बहन?

प्रश्नकर्ता : ऐसा नसीब में लिखकर लाए होंगे।

दादाश्री : फिर, पैसों का क्या करती हो?

प्रश्नकर्ता : मैं आत्मा को ढूँढ रही हूँ।

दादाश्री : आत्मा को कोई ही व्यक्ति ढूँढ सकता है। सभी जीव आत्मा को नहीं ढूँढते। ये सब जीव क्या ढूँढ रहे हैं? सुख को ढूँढ रहे हैं। दुःख किसी जीव को पसंद नहीं है। छोटे से छोटा जीव हो या मनुष्य

हो या स्त्री हो, दुःख किसीको पसंद नहीं है। अब इन सबको सुख तो मिलता है, परन्तु किसीको संतोष नहीं है। उसका क्या कारण होगा?

यह सुख, वह सच्चा सुख नहीं है। एक बार सुख स्पर्श कर गया फिर दुःख कभी भी नहीं आए, वह सच्चा सुख कहलाता है। वैसा सुख ढूँढ रहे हैं! मनुष्य जन्म में उसे मोक्ष कहा जाता है। फिर कर्म पूरे हुए कि मोक्ष हो गया! परन्तु पहला मोक्ष यहाँ से हो ही जाना चाहिए।

कषाय नहीं होने चाहिए। कषाय तुझे होते हैं क्या?

प्रश्नकर्ता : होते हैं।

दादाश्री : कषाय तुझे बहुत पसंद हैं क्या?

प्रश्नकर्ता : पसंद तो नहीं, परन्तु होते हैं।

दादाश्री : कषाय ही दुःख है! पूरा जगत् कषायों में ही पड़ा हुआ है। लोगों को कषाय पसंद नहीं हैं। परन्तु फिर भी कषायों ने उन्हें घेर लिया है। कषायों के ही ताबे में सब आ गए हैं। इसलिए वे बेचारे क्या करें? कितना ही भले गुस्सा नहीं करना हो फिर भी हो जाता है।

तुझे कैसा सुख चाहिए, 'टेम्परेरी या परमानेन्ट?'

प्रश्नकर्ता : सभीको शाश्वत सुख चाहिए।

दादाश्री : फिर भी शाश्वत सुख मिलता नहीं है, उसका क्या कारण है?

प्रश्नकर्ता : हमारे कर्म ऐसे हैं, और क्या?

दादाश्री : कर्म चाहे जैसे भी हों परन्तु हमें शाश्वत सुख देनेवाले, दिखानेवाले कोई मिले नहीं है। जो भी कोई शाश्वत सुख भोग रहे हों, उन्हें हम कहें कि 'मुझे रास्ता दिखाइए तो आपका काम हो जाएगा।' परन्तु वैसे कोई मिले नहीं हैं। दुःखी और सिर्फ दुःखी ही मिले हैं। इसलिए दुःख उनका भी नहीं गया और आपका भी नहीं गया।

सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' ही सर्वदा सुखी रहते हैं। वे मोक्ष में ही रहते हैं। उनके पास जाएँ तो आपका निबेड़ा आ जाएगा। नहीं तो भटकते रहना है। इस काल में शांति किस तरह रहे? 'स्वरूप के ज्ञान' के बिना शांति किस तरह रहे? अज्ञान ही दु:ख है।

जाप किसका?

प्रश्नकर्ता : मन की शांति प्राप्त करने के लिए कौन-सा ऐसा जाप अधिक करें कि जिससे मन को विशेष शांति हो और भगवान की तरफ़ लक्ष्य रहे?

दादाश्री : स्वरूप का जाप करें तो हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : सहजात्मस्वरूप परमगुरु?

दादाश्री : नहीं, वह स्वरूप का जाप नहीं है। वह भगवान की भक्ति है। स्वरूप का अर्थात् 'आप कौन हो?' उसका जाप करो तो पूरी शांति मिल जाएगी। स्वरूप का जाप क्यों नहीं करते?

प्रश्नकर्ता : मन में बहुत समय से प्रश्न उलझन में डाल रहा था कि किस तरह का जाप करने से शांति मिलेगी?

दादाश्री : स्वरूप का जाप करो तो निरंतर शांति मिलेगी, चिंता नहीं होगी, *उपाधि* (बाहर से आनेवाले दु:ख) नहीं होगी। उसके लिए 'ज्ञानी पुरुष' के पास कृपापात्र बन जाना चाहिए।

ज्ञानी मिलने के बाद साधनों की निरर्थकता

प्रश्नकर्ता : अंत:करण की शुद्धि के लिए जो साधन बताए हैं, वे कितने अंशो तक ज़रूरी हैं?

दादाश्री : कौन-से साधन?

प्रश्नकर्ता : जप-तप, वे सब।

दादाश्री : जब तक साध्य वस्तु नहीं मिले, तब तक साधनों में

रहना चाहिए। परन्तु यदि 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ तो कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है। 'ज्ञानी पुरुष' खुद ही सबकुछ कर देते हैं। और वे नहीं मिले हों, तो आपको कुछ न कुछ करना ही चाहिए। नहीं तो उल्टी चीज़ें घुस जाएँगी। शुद्धिकरण नहीं करो तो अशुद्धि ही होती रहेगी या नहीं होती रहेगी? इसलिए हमें रोज़ कचरा तो समेटना ही पड़ेगा न! 'ज्ञानी पुरुष' मिल गए हों तो उन्हें कहना कि, साहब, मेरा निबेड़ा ले आइए। तब 'ज्ञानी पुरुष' एक घंटे में ही सब कर देते हैं, फिर सिर्फ उनकी आज्ञा में रहना है कि 'चलती लिफ्ट में हाथ बाहर मत निकालना, नहीं तो हाथ कट जाएगा। और पूरी लिफ्ट रोक देनी पड़ेगी।' यह तो मोक्ष में जाने की लिफ्ट है।

मोक्ष में जाने के दो मार्ग हैं : एक 'क्रमिक' मार्ग और दूसरा 'अक्रम' मार्ग। क्रमिक अर्थात् 'स्टेप बाय स्टेप' सीढ़ियों से चढ़ना और 'अक्रम' अर्थात् लिफ्ट में ऊँचे जाना!

मोक्ष - अक्रम मार्ग

प्रश्नकर्ता : मोक्ष को प्राप्त करने के लिए सीधा रास्ता नहीं है?

दादाश्री : तुझे टेढ़ा चाहिए क्या?

प्रश्नकर्ता : टेढ़ा तो नहीं चाहिए, परन्तु सीधा नहीं मिल रहा है। 'मोक्ष प्राप्त करने के लिए रास्ता आसान नहीं है' ऐसा मेरा मानना है।

दादाश्री : हाँ। वह तो ठीक है। मोक्ष के लिए दो रास्ते हैं। कायम का तो एक ही रास्ता है। यह जो मुश्किल रास्ता आप कहते हो न, वही है। यह तो कभी ही ईनामी रास्ता निकल जाता है। यह दस लाख वर्ष में निकलता है! उसमें जिसे टिकिट मिल गई, उसका कल्याण हो गया! यह रास्ता हमेशा के लिए नहीं होता है। यह 'अक्रम विज्ञान' है और वह 'क्रम विज्ञान' है। क्रम अर्थात् स्टेप बाय स्टेप, सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़कर ऊपर जाना। और यह लिफ्ट है! लिफ्ट तुझे पसंद नहीं हो तो कोई हर्ज नहीं। हम तुझे क्रमिकवाला रास्ता दिखाएँगे। तुझमें सीढ़ियाँ चढ़ने की शक्ति है, फिर क्या बुरा है? और जिसे लिफ्ट पसंद हो, जिसमें शक्ति नहीं हो वह

लिफ्ट में बैठे।

'ज्ञानी' मिल जाएँ तो मोक्ष हथेली में है और नहीं मिलें तो करोड़ों जन्मों तक भी ठिकाना नहीं पड़े!

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी भी सम्यक्ज्ञानी होने चाहिए न? उन्हें सच्ची समझ होनी चाहिए न?

दादाश्री : हाँ, सम्यक्ज्ञान आपको भी होना चाहिए, तभी मोक्ष होगा। सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सबकुछ ही हो जाएगा, तब मोक्ष होगा। ऐसे ही मोक्ष नहीं हो जाता।

प्रश्नकर्ता : हमें भी मोक्ष का स्वाद चखाएँगे न?

दादाश्री : हाँ, चखाऊँगा। सभी को चखाऊँगा। जिसे चखना हो उसे चखाऊँगा।

अंतर का भेदन हुए बिना उपजे नहीं अंतरदृष्टि

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी पुरुष' ऐसा कहते हैं कि आपको अंदर ही देखते रहना है। तो हमें अंदर क्या देखना है?

दादाश्री : वह जो कहा हुआ है, वह सापेक्ष वचन है। जिसे आंतरिक ज्ञान हो चुका हो, उसे अंदर देखना है और जिसे बाह्य ज्ञान हुआ हो, उसे बाहर देखना है। अब बाह्यज्ञान हुआ हो और अंदर देखे तो क्या दिखेगा उसे?

प्रश्नकर्ता : बाहर का ही दिखेगा।

दादाश्री : इसलिए मेरा कहना यह है कि यह जो वचन कहा है वह सापेक्ष वचन है। जिसे अंतर का कोई कुछ ज्ञान हुआ है, अंतर की कोई बात सुनी है, और अंतर का कुछ भेदन हुआ है, उसे अंदर देखना है। और अंतर का भेदन नहीं हुआ हो तो अंदर क्या देखोगे?

प्रश्नकर्ता : हमें कोई विचार आते हों वे?

दादाश्री : हाँ, परन्तु वह अतंर का भेदन हुआ हो उसके लिए वह काम का है। अंतर का भेदन नहीं हुआ हो, विचार उठते हों, उनमें तन्मयाकार हो जाए, फिर क्या दिखेगा? जिसके अंतर का भेदन हुआ हो, वह तो विचारों में तन्मयाकार नहीं होता और उन्हें देखता है कि मुझे क्या विचार आया? परन्तु अंतरभेद होना इतना आसान नहीं है। 'ज्ञानी पुरुष' के बिना वैसा अंतरभेद नहीं होता। भेद तो डलना चाहिए न हमें? अहंकार भेद नहीं डलने देता।

जिसकी दृष्टि बाहर ही है, लौकिक में ही रचा-बसा है, उसे अंदर क्या देखना है? उसकी रमणता कहाँ है, उस पर दृष्टि आधारित है। जब तक आत्मा प्राप्त नहीं हो जाए, तब तक अंदर कुछ भी देखने जैसा है ही नहीं। सिर्फ शुभ उपयोग रखता है, परन्तु वह मोक्ष का मार्ग नहीं है, धर्ममार्ग है। इसलिए उसका और मोक्ष का कोई लेना-देना नहीं है। आप अंदर चाहे जितना उपयोग रखोगे, परन्तु वह शुद्ध उपयोग तो नहीं माना जाएगा।

शुद्ध उपयोग तो 'ज्ञानी पुरुष' के 'ज्ञान' देने के बाद रहता है। 'ज्ञान' कौन-सा? आत्मज्ञान। 'मैं कौन हूँ' वह निश्चित होता है। और वह फिर भान सहित होना चाहिए। शुद्ध उपयोग मोक्षमार्ग है। और आप कहते हो वे सभी शुभ उपयोग हैं। अशुभ में से शुभ में आने का वह मार्ग है।

अध्यात्म और बौद्धिकता

प्रश्नकर्ता : अध्यात्म के अनुभव के बारे में दादा के पास या किसी भी वीतराग पुरुष के पास से हम उत्तर प्राप्त करें, तो वह बौद्धिक अर्थघटन माना जाएगा क्या?

दादाश्री : आपके पास आया, इसलिए बौद्धिक हो गया। आपको बुद्धि से समझने के लिए बौद्धिक हो गया। बाकी वैसे तो ज्ञान प्रकाश है! बुद्धि तो हम में होती ही नहीं! इसलिए हम ज्ञान के 'डायरेक्ट' प्रकाश के द्वारा ही बात करते हैं। हमारे पास पुस्तक के ज्ञान की भी बातें नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : वाणी में जो उतरे, तो वह उतने अंश तक बौद्धिक हुआ नहीं कहलाएगा?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कोई नियम नहीं है। वाणी में तो 'डायरेक्ट' प्रकाश सारा ही उतरता है और 'इनडायरेक्ट' भी सारा ही उतरता है। वाणी का उससे कोई लेना-देना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : 'डायरेक्ट' प्रकाश पहुँचाने के लिए माध्यम की मर्यादा वाणी के लिए बाधक है या नहीं?

दादाश्री : 'डायरेक्ट' प्रकाशवाली वाणी स्याद्वाद होती है। किसीको किंचित् मात्र दुःख नहीं हो, ऐसी वह वाणी होती है। बुद्धिवाली वाणी से किसीको दुःख हो जाता है, क्योंकि बुद्धिवाली वाणी में अहंकार रूपी 'पोइज़न' होता है।

प्रश्नकर्ता : वीतराग वाणी हो परन्तु सामने ग्रहण करनेवाली बुद्धि हो, तो वह वीतरागता को समझ सकेगी क्या?

दादाश्री : बुद्धि समझ सकती है, परन्तु वह खुद अपने आप नहीं समझ सकती। वह तो 'ज्ञानी पुरुष' के पास सम्यक् हो जाए, तब ग्रहण कर सकती है।

प्रश्नकर्ता : ग्रहण करनेवाला जो होता है, वह तो उसकी बौद्धिक शक्ति से ग्रहण करता है न? या उसकी मर्यादा होती है फिर...

दादाश्री : हाँ, वह बौद्धिक शक्ति से ग्रहण करता है परन्तु 'ज्ञानी पुरुष' की उपस्थिति में ही बुद्धि वह पकड़ सकती है, और किसी जगह पर बुद्धि पकड़ नहीं सकती। क्योंकि 'ज्ञानी पुरुष' की उपस्थिति में निकली हुई वाणी आवरणों को भेदकर 'डायरेक्ट' आत्मा तक पहुँचती है और आत्मा को पहुँचती है, इसलिए तुरन्त आपके मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार पकड़ लेते हैं। हमारी वाणी आत्मा में से होकर निकली हुई होती है। जगत् की वाणी मन में से होकर निकली हुई होती है। इसलिए उसे मन 'एक्सेप्ट' करता है और यहाँ आत्मा 'एक्सेप्ट' करता

है, परन्तु फिर वापिस मन-बुद्धि उसे पकड़ लेते हैं।

अवस्था में अस्वस्थ, स्व में स्वस्थ

प्रश्नकर्ता : वीतरागों की अनुपस्थिति में अवस्था में अस्वस्थ हो जाते हैं और उनकी उपस्थिति में स्वस्थ रहा जाता है, ऐसा क्यों होता है?

दादाश्री : उपस्थिति में तो स्वस्थ रहता ही है। अस्वस्थ रहता है, वह तो आपकी बुद्धि करवाती है और बुद्धि है तब तक अहंकार है, और अहंकारवाली बुद्धि है, वह अस्वस्थ करवाती है। उसका यदि 'एन्ड' (अंत) आ जाए तो अस्वस्थ होने का कोई कारण ही नहीं रहेगा।

प्रश्नकर्ता : भौतिक रूप से तो वह संभव ही नहीं होता न?

दादाश्री : नहीं, संभव नहीं होता! फिर भी जितना लाभ मिले उतना सच्चा! नहीं तो आपकी बुद्धि और अहंकार *निकाल* (निपटारा) करते-करते खत्म हो जाएँगे, तब फिर अपने आप ही निरंतर स्वस्थता रहेगी, स्व में रहने के लिए स्वस्थता और वह अवस्थाओं में रहता है इसलिए अस्वस्थता है। अवस्थाएँ सभी विनाशी हैं, स्व अविनाशी हैं। यानी अविनाशी में रहे तो स्वस्थ रह सकता है और नहीं तो फिर अस्वस्थ रहा करता है।

प्रश्नकर्ता : अवस्था में अस्वस्थ रहता है, उसे खुद देख सकता है और जान सकता है फिर भी स्वस्थ नहीं रहा जा सकता, उतना बुद्धि का आवरण अधिक कहलाएगा?

दादाश्री : नहीं, वहाँ पर क्या न्याय है कि जो देखता है, दादा ने जो आत्मा दिया है, 'शुद्धात्मा', वही इन सबको देखता है। 'उस' रूप से 'हम' रहें तो कुछ भी झंझट नहीं है। नहीं तो स्वस्थ और अस्वस्थ देखने जाएँ तो उसका अंत ही नहीं आएगा।

प्रश्नकर्ता : उसकी चाबी कौन-सी?

दादाश्री : स्वस्थ हो जाए या अस्वस्थ, दोनों का जानकार शुद्धात्मा है। अस्वस्थ हो जाता है इसलिए खुद उसमें, 'फ़ॉरेन' में हाथ डालता है।

स्वस्थ हो जाओ या अस्वस्थ हो जाओ, आपको तो 'जानने' से काम है। ये सब पौद्गलिक अवस्थाएँ हैं और पौद्गलिक अवस्था को जाने, वह 'शुद्धात्मा' कहलाता है। पौद्गलिक अर्थात् *पूरण-गलन* हो चुकी! जो अस्वस्थता आपको आती है वह *पूरण* (चार्ज होना, भरना) हो चुकी है, तभी आज आ रही है, वह अभी आकर *गलन* (डिस्चार्ज होना, खाली होना) हो जाएगी।

'फ़ॉरेन' में हाथ डाला तो जले बगैर रहेगा ही नहीं। हम 'फ़ॉरेन' में हाथ डालते ही नहीं। क्योंकि यों भी जो फल मिलनेवाला है, वह तो मिलेगा ही। और ऊपर से उसने हाथ डाला उसका 'डबल' फल मिलेगा। दो नुकसान उठाता है। हमें एक ही नुकसान उठाना है। 'चंदूभाई' अस्वस्थ हो जाते हैं, वैसा 'आपको' जानते रहना है, वह पंद्रह मिनिट बाद खत्म हो जाएगा। 'देखते' रहोगे तो दो नुकसान नहीं होंगे।

प्रश्नकर्ता : अस्वस्थता का समय जितना अधिक खिंचेगा, उतना अधिक आवरण कहा जाएगा?

दादाश्री : हाँ, जितना आवरण उतना ज्यादा अस्वस्थ रहेगा, परन्तु 'आप' शुद्धात्मा होकर देखते रहोगे तो वह चाहे जितना आवरण हो फिर भी वह तेज़ी से खत्म हो जाएगा। उसका हल आ जाएगा और उसमें खुद हाथ डालने गया तो मारकर झंझट खड़ी होगी।

ज्ञानी का अशाता उदय

प्रश्नकर्ता : वीतराग पुरुषों को शारीरिक दु:ख आते हैं, उदाहरण स्वरूप आपको पैर में 'फ्रेक्चर' हुआ तो उसमें खुद किस तरह मुक्त रहते हैं? वेदना तो सभी को होती है वैसी ही होती होगी न?

दादाश्री : उन्होंने स्वामित्व के जो दस्तावेज हैं, वे फाड़ दिए हैं। 'यह मन मेरा है' ऐसा दस्तावेज फाड़ चुके हैं। 'बुद्धि मेरी है, वाणी मेरी है' ऐसा दस्तावेज फाड़ चुके हैं। वाणी को वे क्या कहते है, 'ओरिजिनल टेपरिकॉर्डर।'

यह देह भी मेरी है, ऐसा दस्तावेज फाड़ चुके होते हैं। इसलिए फिर क्या कहते हैं–'यह पब्लिक ट्रस्ट हैं।' इसलिए हमें यदि अभी दाढ़ दुःखे तो असर होता है, परन्तु उसे 'हम' 'जानते' हैं, उसका वेदन नहीं करते। जब कि कोई हमें गालियाँ दे, अपमान करे, पैसे का नुकसान हो जाए उसका हम पर ज़रा–भी असर नहीं होता। हमें मानसिक असर बिल्कुल नहीं होता। शरीर को लगता है, तो वह उसके धर्म के अनुसार असर दिखाएगा। परन्तु 'हम' खुद उसके 'ज्ञाता–दृष्टा' ही होते हैं। इसलिए हमें दुःख स्पर्श नहीं करता।

प्रश्नकर्ता : इसे वीतराग पुरुष की तादात्म्यपूर्व तटस्थता कही जाएगी, या सिर्फ तटस्थता कही जाएगी?

दादाश्री : हमें तादात्म्य बिल्कुल नहीं होता। हमारा इस देह के साथ भी पड़ोसी जैसा संबंध होता है, इसलिए देह को असर हो तो हमें कुछ भी स्पर्श नहीं करता। मन तो हमारा ऐसा होता ही नहीं। वह कैसा होता है? प्रति क्षण फिरता ही रहता है। एक जगह पर स्थिर नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : यानी कि 'पड़ोसी' के दुःख से खुद दुःखी नहीं होते।

दादाश्री : किसीके भी दुःख से दुःखी नहीं होते। खुद का स्वभाव दुःखवाला है ही नहीं, बल्कि 'इनके' (दादाश्री के) स्पर्श से सामनेवाले को सुख हो जाता है।

जगत् में अध्यात्म जागृति

प्रश्नकर्ता : अंतिम पाँच वर्षो से लोगों में अध्यात्म की तरफ़ प्रगति बढ़ती हुई दिखती है, तो वह क्या सूचित करता है?

दादाश्री : वह क्या सूचित करती है कि पहले आध्यात्मिक वृत्ति बिल्कुल खत्म हो गई थी, इसलिए अब बढ़ती हुई दिखती है। यह सब काल के अनुसार ठीक ही है। दूसरा यह है कि ये दुःख इतने अधिक बढ़ेंगे कि इनमें से लोगों के लिए निकलना मुश्किल हो जाएगा! तब फिर लोगों को वैराग्य आ जाएगा। यों ही तो लोग अपनी मान्यता छोड़ दें, ऐसे नहीं हैं न?

प्रश्नकर्ता : उसे सत्‌यगु कहा जाएगा?

दादाश्री : लोगों को उसे जो युग कहना है वह कहें, परन्तु परिवर्तन होगा। सतयुग तो गया, वह फिर से आएगा नहीं, इसलिए कलियुग में जो नहीं देखा हो वैसे सुंदर-सुंदर विचार दिखेंगे!

आज मनुष्यों की बुद्धि जो 'डेवलप' हो रही है, वैसी दस लाख वर्षो में कभी भी किसी समय हुई नहीं थी। यह बुद्धि विपरीत हो रही है, परन्तु विपरीत बुद्धि भी 'डेवपलप्ड' (विकसित) है, उसे सम्यक् होने में देर नहीं लगेगी। परन्तु पहले तो बुद्धि कुछ खास 'डेवलप' नहीं थी।

प्रश्नकर्ता : इसलिए ही तो पहले के काल में आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने के लिए बहुत लम्बी-लम्बी तपश्चर्या करनी पड़ती थी। उसका कारण यही है न?

दादाश्री : यही था। अभी बहुत तपश्चर्या नहीं करनी पड़ती, सब तपे हुए ही है! एक दियासलाई जलाए उसके पहले तो धमाका हो जाता है। तपे हुए को क्या तपाना? निरंतर तप ही करते रहते हैं बेचारे।

अध्यात्म में इन्वेन्शन

शुद्ध हृदयवाले के पास पूछने का बहुत नहीं होता और वह धर्म की प्राप्ति भी बहुत नहीं करता।

प्रश्नकर्ता : यानी टेढ़े लोगों को लाभ है क्या?

दादाश्री : टेढ़े को ही लाभ है। इनके जैसे हृदयशुद्धिवाले मैंने बहुत सारे देखे हैं। उन्हें मैं कहता हूँ कि आप तो सुखी ही है, तो फिर आपको क्या है? आप सीधे लोग दुनिया का नुकसान नहीं करते, परन्तु आत्मदशा तक पहुँचने में बहुत समय लगेगा, क्योंकि उनका 'इन्वेन्शन' (खोज) बंद रहता है। उनका इंजन धीरे-धीरे चलता रहता है।

यह जो मैं कह रहा हूँ, वैसी बात किसीने की ही नहीं होगी। हर कोई ऐसा कहता है कि ये हृदयशुद्धिवाले ही धर्म को प्राप्त करते हैं, और

इन दूसरों को प्राप्ति नहीं होगी। अब मेरा क्या कहना है कि हृदयशुद्धिवाले को ज़रूरत की चीज़ें मिल जाती हैं तो बस, हो गया। फिर उनका 'इन्वेन्शन' बंद हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : परन्तु दादा, उनकी हृदय की या बुद्धि की जिज्ञासा हो तब होता है?

दादाश्री : नहीं, जिज्ञासा हो फिर भी नहीं होता। वे तो सिर्फ दो-पाँच लोग आते हैं। उन्हें सुधारते हैं, सेवा सबकी करते हैं और खुद का भी चलता रहता है।

प्रश्नकर्ता : अब उन्हें आत्मज्ञान में जाना हो तो क्या होगा?

दादाश्री : वे तो धीरे-धीरे कभी ऐसे संयोग मिलेंगे, तब वापिस हृदय में दूसरा कुछ आ जाएगा, तब मार खाएँगे। तब फिर 'इन्वेन्शन' शुरू होगा। यह मेरा 'इन्वेन्शन' किसलिए हुआ है? मार खाने से हुआ है। मैं ऐसी-ऐसी खाइयों में से निकला हूँ, ऐसे-ऐसे 'हिल स्टेशनों' पर चढ़ा हूँ... दूसरा, मुझे जगत् की कोई चीज़ नहीं चाहिए, जगत् में आप भी चढ़े हुए हो, ये सभी चढ़े हुए हैं, परन्तु इन्हें ज्ञाता-दृष्टापन नहीं है, खुद का निरीक्षण नहीं होता। खाने में-पीने में, मस्ती में तन्मयाकार रहते हैं। इसलिए 'इन्वेन्शन' का सब भूल जाते हैं। हमारा निरीक्षण कितने ही जन्मों का है!

अर्थात् इन मन-वचन-काया की सारी शक्ति किसमें जाती है? सारी स्थूल में खर्च करते हैं। जो काम मज़दूर कर सकते हैं उसमें खर्च हो जाती है। अब ऐसी मेरी शक्ति यदि कभी बग़ीचे में खर्च हो जाए तो मेरी क्या 'वेल्यु' रहेगी? एक घंटे में तो कितना सारा काम हो जाता है? स्थूल में शक्तियाँ खर्च हो जाएँ तो सूक्ष्म में 'इन्वेन्शन' बंद हो जाता है। सेवाभावी हुए इसलिए वहाँ से उस लाइन में उसे 'इन्टरेस्ट' आता जाता है। जहाँ हो वहाँ पर 'आइए पधारिए, पधारिए' ऐसा मिलता रहता है, इसलिए प्रगति बंद हो जाती है। 'इन्वेन्शन' कब होता है? सिर में तीन तमाचे मारें और तब सारी रात जागकर 'इन्वेन्शन' चलता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, सीधे, सरल और सेवाभावी लोगों का विकास खराब लोगों से कम क्यों रह जाता है?

दादाश्री : खराब लोगों का विकास होता ही नहीं। परन्तु खराब व्यक्ति की खराबी बढ़ती जाए, तब उसे मार पड़ती है। तब उसका 'इन्वेन्शन' चलता है। उसके बाद खराब व्यक्ति उस सीधे व्यक्ति से भी आगे बढ़ जाता है जबकि वह सीधा व्यक्ति धीरे-धीरे आगे बढ़ता रहता है। उसका तो दो घंटे में भी बोरसद (बड़ौदा के पास एक गाँव) नहीं आता! उसे कोई अड़चन भी नहीं आती। खो गया, कुछ नहीं मिला, तब 'इन्वेन्शन' होता है।

कुदरत का नियम ऐसा है कि जितने मोक्ष में गए, उनमें से अस्सी प्रतिशत नर्क में जाने के बाद ही मोक्ष में जाते हैं! नर्क में नहीं गया हो तो मोक्ष में नहीं जाने देते! मार पड़नी ही चाहिए। खाना-पीना सबकुछ मिलता रहे, 'आइए पधारिए, पधारिए' ऐसा सभी करे तो 'इन्वेन्शन' रुक जाता है।

प्रश्नकर्ता : कई लोगों को ऐसा लगता है कि 'मैं धर्म के रास्ते पर ही जा रहा हूँ। मुझे और कुछ भी जानने की ज़रूरत नहीं है।' वह क्या है?

दादाश्री : हर एक अपनी-अपनी भाषा में आगे जा ही रहा है। परन्तु धर्म किसे कहें वह समझना बहुत मुश्किल है। इस जगत् में जो चल रहा है वह धर्म 'रियल' धर्म नहीं है, 'रिलेटिव' धर्म है। वे रिलेटिव धर्म में जा रहे हैं। पूरे दिन धर्म ही करते रहते हैं न?

सीधे व्यक्ति को सेवाभाव ही धर्म लगता है। सेवाभाव अर्थात् किसीको सुख देना, किसीकी अड़चन दूर करना, वही धर्म है। परन्तु वह वास्तविक धर्म नहीं माना जाता।

जहाँ 'मैं कर रहा हूँ, मैं कर्त्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ', जब तक यह 'मैं-पन' है, तब तक सत्‌धर्म उत्पन्न नहीं होता। ये लौकिक धर्म उत्पन्न होता है। अलौकिक धर्म तो जब मार खाए न तभी भीतर 'इन्वेन्शन' होता है।

नहीं तो 'इन्वेन्शन' किस तरह होगा?

आत्मा किसीको मिल सके, ऐसा है ही नहीं, सिर्फ तीर्थंकर भगवंतों को मिला है! जगत् ने जिसे आत्मा माना है, आत्मा वैसा नहीं है। आत्मा संबंधी जो-जो कल्पनाएँ की हुई हैं, वे सभी कल्पित हैं। परन्तु उनकी भाषा में जो है, वह उनके लिए सही है। कुदरत ने उनके लिए हिसाब प्रबंधित किया है, उस अनुसार भोगते हैं। शास्त्रों में आत्मा का शब्दज्ञान दिया हुआ है, वह संज्ञा ज्ञान है। यदि संज्ञा ज्ञानी के पास से समझ जाए तो आत्मा की प्रतीति होती है और अंत में केवळज्ञान होता है।

मोक्ष के अधिकारी

प्रश्नकर्ता : मोक्ष प्राप्ति प्रत्येक मनुष्य का हक़ है?

दादाश्री : मोक्ष प्राप्ति का हर एक मनुष्य का नहीं, हर एक जीव का हक़ है, क्योंकि हर एक जीव सुख ढूँढ़ रहा है। वह सुख 'इसमें मिलेगा, इसमें मिलेगा' ऐसी आशा में ही अनंत जन्मों से भटक रहा है। वह शाश्वत सुख ढूँढ रहा है। शाश्वत सुख, वही मोक्ष। ये 'टेम्परेरी' सुख, सुख ही नहीं कहलाते। यह तो सब भ्रांति है, आरोपित भाव है। यदि श्रीखंड में सुख होता और आप श्रीखंड खाकर आए हों, तो आप उसे वापिस खाओगे? आपके लिए वह दु:खदायी हो पड़ेगा न? इसलिए उसमें सुख नहीं है। जैसा आरोपण करो वैसा सुख मिलता है। इसलिए मोक्षप्राप्ति का हर एक जीव को अधिकार है।

प्रश्नकर्ता : इस मार्ग पर जाने के लिए ज्ञानी के चरणों में बैठना चाहिए, वह रास्ता है?

दादाश्री : ज्ञानी स्वयं मुक्त हैं, इसलिए आपको भी मुक्त कर सकते हैं। संसार की किसी चीज़ में वे नहीं रहते, इसलिए आपको भी सर्व प्रकार से मुक्त कर सकते हैं। जिन-जिन को भजते हैं, उस रूप होते हैं।

जहाँ अहंकार नहीं होता है, वहाँ पर आप बैठे रहो तो आपका अहंकार चला जाता है। अभी आपके मन में ऐसा है कि लाओ, 'दादा के

पास बैठा रहूँ', परन्तु पिछले जो संस्कार है, 'डिस्चार्ज' संस्कार हैं, उनका निबेड़ा तो लाना पड़ेगा न? जैसे-जैसे उनका निबेड़ा आता जाएगा, वैसे-वैसे यह प्राप्ति होती जाएगी। भावना तो यही रखनी चाहिए कि निरंतर ज्ञानी के चरणों में ही रहना है। फिर संपूर्ण मुक्ति होती है। अहंकार की मुक्ति ही हो जाती है!

मत चूको यह अंतिम मौका

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी' नहीं मिलें तब क्या करना चाहिए? सिर फोड़कर मर जाएँ?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कोई मरने को नहीं कहता है और मरना चाहें तब मरा जाए ऐसा है भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर जगत् को क्या करना चाहिए?

दादाश्री : कुछ नहीं करना है। जो करते आए हैं, वही करते रहना है।

प्रश्नकर्ता : ऐसे कोई उपदेशक नहीं निकले हैं कि जो बताएँ, ज्ञानी नहीं हों, तब इतना करना, ऐसा बताएँ?

दादाश्री : अभी किसलिए उपदेशक ढूँढ रहे हो? यह कलियुग आया है। अब तो लुट जाने का समय आया है, तब उपदेशक ढूँढ रहे हो? अब तो घोर अँधेरा होने का समय आया। अभी अब सुनार की दुकान खुली हुई होगी? जब सुनार की दुकान खुली हुई थी, तब माल नहीं लिया। अब जगत् को माल दिलवाने निकले हो? अब तो भयंकर यातनाएँ और भयंकर पीड़ा में से संसार गुज़रेगा। यह तो अंतिम उजाला इस 'अक्रम विज्ञान' का है। उसमें जिसका काम हो गया उसका हो गया। बाकी राम तेरी माया!

आयुष्य का एक्सटेन्शन

प्रश्नकर्ता : 'सच्चिदानंद स्वरूप' कोई महात्मा हों, ब्रह्मनिष्ठ कोई महात्मा हों, तो वे खुद का आयुष्य बढ़ा सकते हैं क्या?

दादाश्री : 'आयुष्य बढ़ा सकता हूँ', ऐसा यदि कहता है तो वह एक प्रकार का अहंकार है। कुदरत में उसके आयुष्य की जो लंबाई है, उसके आधार पर उसको खुद को ऐसा लगता है कि मैं आयुष्य बढ़ाऊँगा तो बढ़ जाएगा। आयुष्य बढ़नेवाला है, इसलिए उसको इस प्रकार का अहंकार खड़ा हो जाता है। वर्ना कोई कुछ भी बढ़ा नहीं सकता। इस जगत् में किसीके हाथ में संडास जाने की शक्ति भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : विधाता (विधि का लेख) को 'सत्पुरुष' बदल सकते हैं?

दादाश्री : कुछ भी नहीं बदल सकते। विधाता (विधि का लेख) इन्हें बदलते हैं! कोई कुछ भी नहीं बदल सकता। सिर्फ इगोइज़म है यह सारा! ऐसा तो चलता रहता है। आप तो किसीको गलत मत कहना, क्योंकि वह आप पर चिढ़ेगा तो उल्टा खेल करेगा और बैर बाँधेगा। इसलिए उन्हें तो कह देना कि 'साहब, आप ठीक हैं, आपकी बात हमें पसंद आई!' ऐसा करके हमें आगे चले जाना है। इसका तो अंत ही नहीं आएगा। आप उन्हें 'अच्छे हो, गलत हो', कहोगे, तो वे आपको छोड़ेंगे नहीं। आपके साथ ही साथ घूमते रहेंगे।

प्रश्नकर्ता : ईश्वर की प्राप्ति सत्पुरुष की कृपा के बिना हो सके, ऐसा नहीं है। वे सत्पुरुष हैं, तो फिर वे विधाता (विधि का लेख) को टाल क्यों नहीं सकते?

दादाश्री : यदि वे विधाता (विधि का लेख) को टाल सकें ऐसा हो, तब तो उनका सत्-पुरुषपन भी चला जाएगा। सिद्धियाँ खर्च हो जाएँगी। सत्पुरुष की बहुत सारी, अपार सिद्धियाँ होती हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर उन्हें उनकी स्थिति भोगनी पड़ती है क्या?

दादाश्री : भोगे बिना चारा ही नहीं। भगवान महावीर के शिष्य गोशाला ने उनके दो शिष्यों पर तेजोलेश्या फेंककर जला दिया था। तब उनके दूसरे शिष्यों ने कहा कि, 'साहब! इनका ज़रा ध्यान तो रखिए।' तब भगवान महावीर ने कहा, 'मैं मोक्ष का दाता हूँ। जीवन का दाता नहीं

हूँ। मैं किसीका रक्षक नहीं हूँ।'

प्रश्नकर्ता : कुछ महापुरुषों ने कुछ मृत मनुष्यों में जीव डालकर चिता पर से खड़ा किया है, तो वह कौन-सी शक्ति है?

दादाश्री : ऐसा है न कि जीव डालकर खड़ा कर सके तो खुद मरेंगे ही नहीं न कभी! इस दुनिया में जीव डालनेवाला कोई पैदा ही नहीं हुआ। जो डालता है, वह नैमित्तिक है। ऐसा मेरे निमित्त से बहुत होता है। मैं कबूल करता हूँ कि मैं निमित्त हूँ। इसमें गलत मत मान लेना।

प्रश्नकर्ता : तो उसका अर्थ यह कि हक़ीक़त में वह मरा ही नहीं था ऐसा न?

दादाश्री : हाँ, सही है। वह मरा ही नहीं था। भय के कारण या ऐसे किसी कारण से यहाँ इतने भाग (ब्रह्मरंध्र) में कुछ हो जाता है, उसे वे लोग उतार सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : जिन महात्माओं को निर्विकल्प समाधि होती है, तो वह आत्मा किस तरह देह में से बाहर जाता है?

दादाश्री : निर्विकल्प समाधि हो, उसका आत्मा इस देह में से मुक्त होता है, तब पूरे ब्रह्मांड में प्रकाश देकर जाता है। पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशित करता है।

प्रश्नकर्ता : निर्विकल्प समाधि में पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशित करके यह आत्मा गया, उसके चिह्न क्या हैं? उसका पता किस तरह चलता है?

दादाश्री : वह तो 'ज्ञानी पुरुष' पहचानते हैं या उसे महावीर पहचानते हैं।

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी पुरुष' उसे किस तरह पहचानते हैं?

दादाश्री : 'ज्ञानी' तो तुरन्त ही, उसे देखते ही पहचान लेते हैं। उनके लिए तो वह स्वाभाविक है। हर कोई अपने-अपने स्वभाव को तुरन्त ही पहचान लेता है।

मृत्यु समय की अवस्थाएँ.....

प्रश्नकर्ता : मृत्यु के समय की अवस्था समझाइए। किसीकी आंखें खुली रहती है, किसीको शौच और पेशाब हो जाता है।

दादाश्री : अंतिम समय में 'ज्ञानी' को ऐसा कुछ भी नहीं होता। ज्ञानी का आत्मा इन्द्रियों में से नहीं जाता है। वह अलग ही प्रकार से बाहर जाता है। वर्ना जो संसारी लोग हैं, जिन्हें फिर से भटकना है, उनका आत्मा इन्द्रियों में से होकर निकलता है। किसीका आँख से, किसीका मुँह से, चाहे किसी भी छेद में से निकल जाता है। पवित्र छेद में से निकले तो बहुत अच्छा और जगत् जिसे अपवित्र कहता है, वैसे छेद में से निकले तो बुरा कहलाता है। अधोगति में ले जानेवाला होता है, और कुछ संत पहले सिर पर नारियल फुड़वाते थे। शिष्यों से कहकर रखते हैं कि मैं अब बीमार हूँ, इसलिए नारियल मेरे सिर पर फोड़ना। वह तो बहुत अधोगतिवाला कहलाता है। यहाँ रहकर आत्मा निकालने के लिए प्रयत्न किया। यह सिर तो दशम स्थान कहलाता है। वहाँ से सहज स्वभाव से आत्मा निकले तो उसका प्रकाश भी अलग ही प्रकार का होता है। पूरे ब्रह्मांड में वह प्रकाश फैल जाता है।

प्रश्नकर्ता : अज्ञानियों को भी वह प्रकाश दिखता है क्या?

दादाश्री : नहीं, नहीं। अज्ञानियों को वह नहीं दिखता। ज्ञानियों को वह सब दिखता है। अज्ञानी को तो यही दिखता है, 'मेरी वाइफ, मेरी सास, मेरा मामा', यह जलेबी-लड्डू, सबकुछ दिखता है।

प्रश्नकर्ता : समाधिमरण में शरीर को पीड़ा नहीं होती न?

दादाश्री : इस शरीर की पीड़ा हो, फिर भी समाधिमरण होता है। पक्षाघात हो गया हो फिर भी मनुष्य को समाधिमरण होता है। समाधिमरण मतलब क्या कि अंतिम घंटे में ये दादा दिखने लगते हैं या फिर 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा भान रहे, वह उसका लेखाजोखा आकर खड़ा रहा।

प्रश्नकर्ता : तो उस अवस्था में दु:ख नहीं बरतता न?

दादाश्री : समाधि मरण में खुद को किसी प्रकार का दु:ख ही नहीं होता। अंतिम एक घंटे में समाधि ही रहती है। अपने यहाँ 'ज्ञान' लेकर जितने लोग अभी तक मरे हैं, उनके समाधिमरण हुए हैं, प्रमाण सहित।

प्रश्नकर्ता : अंतिम घंटे में यदि रौद्रध्यान हो तो मनुष्य सबकुछ चूक जाता है?

दादाश्री : तब तो फिर सब खत्म हो गया कहा जाएगा। रौद्रध्यान तो क्या, परन्तु आर्तध्यान हो तब भी खत्म हो गया। 'मेरी पाँचवी बेटी का विवाह करना रह गया' ऐसा हो तो वह आर्तध्यान हुआ कहलाएगा। उससे जानवर योनि में जाता है।

प्रेतयोनि

प्रश्नकर्ता : ये अवगतिवाले जीव दूसरे में जाते हैं और खुद की इच्छा पूरी करते हैं वह क्या है?

दादाश्री : ऐसा है, ये भूत परेशान नहीं करते। भूत तो देवयोनिवाले होते हैं। उनके साथ आपका अच्छा ऋणानुबंध हो तो फायदा कर देते हैं, और उल्टा हो तो परेशान कर देते हैं। और जिन जीवों को मृत्यु के बाद तुरन्त ही दूसरी स्थूल देह नहीं मिलती, उन्हें फिर भटकते रहना पड़ता है। जब तक दूसरी देह नहीं मिले तब तक प्रेतयोनि कहलाती है। अब खुराक के बिना तो चलता नहीं, इसलिए उसे किसी और के देह में घुसकर खुराक लेनी पड़ती है।

प्रश्नकर्ता : कोई जप-तप, माला ऐसा-वैसा करते हों, फिर भी उन्हें भूत लग सकते हैं?

दादाश्री : ऐसा नियम नहीं है, परन्तु आपका हिसाब हो, आपने किसीको परेशान किया हो और वही जीव अवगतिवाला हो जाए तो वह आपसे बदला लिए बगैर रहेगा ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : कोई हनुमानचालीसा, गायत्री या दूसरा कोई जप कर रहा हो, तो उसका क्या असर होता है उस पर?

दादाश्री : हाँ, उससे फायदा होता है। उससे वे दूर रहते हैं। यह नवकारमंत्र भी यदि पद्धतिपूर्वक बोले तो भी वे हट जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : हमें देवलोक दिखाइए न?

दादाश्री : उससे क्या फायदा? आप अपने आत्मा का कर लो न? वह देखने में मज़ा नहीं है। अनंत जन्मों से भटक रहे हैं। वहाँ भी जाकर आए हैं और यहाँ भी आए हैं। उसमें क्या देखना? देव-देवियों के पास इन्द्रियसुख अपार होते हैं। उससे वे लोग भी ऊब गए हैं। वे लोग भी राह देखते रहते हैं कि कब उनकी देह छूटे। लाख-लाख वर्षों का उनका आयुष्य होता है तो किस तरह से देह छूटे? आपको यहाँ एक महीना विवाह के समारोह में रखें और रोज़ पकवान दें तो वह आपको ठीक लगेगा क्या? आप वहाँ से भाग जाओगे न? वैसे ही देवी-देवताओं को भी वहाँ पर अच्छा नहीं लगता।

सिद्धात्मा और सिद्धपुरुष

प्रश्नकर्ता : जो सिद्धपुरुष होते हैं उनका एक खास सर्कल होता है। वे पृथ्वी पर हों या नज़दीक के ग्रह पर हों तो वे पृथ्वी के लोगों को मार्गदर्शन देते हैं, यह बात सही है क्या?

दादाश्री : सिद्ध मार्गदर्शन नहीं देते। मार्गदर्शन देनेवाले संसारी हैं। उन्हें संसारी सिद्ध कहा जाता है-लौकिक भाषा में।

प्रश्नकर्ता : उन्हें कुछ भी नहीं करना होता?

दादाश्री : सिद्ध तो संपूर्ण भगवान बन चुके होते हैं, वे हैं। वे यहाँ पर नहीं होते हैं। यहाँ पर देहधारी रूप में कोई सिद्ध होते नहीं हैं। यह जो सिद्धों की बात है, वह तो लौकिक बात है।

प्रश्नकर्ता : सिद्ध लोगों का भी संसार है न?

दादाश्री : उनका सिद्धक्षेत्र है। वे यहाँ पर कभी भी होते ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : वे सिद्ध देहधारी नहीं होते?

दादाश्री : वे देहधारी नहीं होते हैं। वे तो परमात्मा कहलाते हैं और ये सिद्ध तो मनुष्य कहलाते हैं। आप उन्हें गालियाँ दो तो वे घेर लेंगे, नहीं तो आपको श्राप देंगे।

प्रश्नकर्ता : सिद्ध की जो बात है, वह तो प्रकाश अथवा तेज स्वरूप से है न?

दादाश्री : हाँ। तेज स्वरूप से होते हैं। उन्हें एक ही शब्द, 'केवळ' (एब्सोल्यूट, कैवल्य) होता है। उनका स्वरूप तो केवळ-दर्शन, केवळ-ज्ञान, अनंत-सुख और परम ज्योति स्वरूप होता है, स्व-पर प्रकाशक होता है। वे खुद को प्रकाशित करते हैं और पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशित करते हैं।

शुद्धात्मा का दर्शन

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा को किस प्रकार देख सकते हैं?

दादाश्री : ऐसा है न कि शुद्धात्मा देखना, उसका अर्थ क्या है? यह सोने की डिबिया है, उसके अंदर रखा हुआ हीरा एक बार खोलकर मैं दिखा देता हूँ, फिर डिब्बी बंद कर देता हूँ, उससे हीरा चला नहीं जाता। आपके लक्ष्य में रहता है कि इसमें हीरा ही है, क्योंकि आपने उसे देखा था। अरे, आपकी बुद्धि ने उस दिन 'एक्सेप्ट' किया था। हमने 'ज्ञान' दिया, उस घड़ी आपके मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार सभी 'एक्सेप्ट' किया। उसके बाद शंका खड़ी ही नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : आपने रास्ता बताया, परन्तु उस रास्ते पर हम नहीं चलें तो क्या होगा?

दादाश्री : नहीं चलें, ऐसा हो सकता है, परन्तु जाने के लिए खुद की इच्छा चाहिए। खुद को नहीं जाना हो तो वह उल्टे रास्ते जाएगा, परन्तु खुद को जाना ही है और दूसरे कर्म अंतराय डालते हों, तो उसमें आपत्ति नहीं है। खुद को जाना है, ऐसा नक्की हो तो 'ज्ञानी पुरुष' के आशीर्वाद काम करते हैं। कर्म लाख आएँ फिर भी 'ज्ञानी पुरुष' की कृपा से वे उखड़ जाएँगे, परन्तु जिन्हें खुद को ही टेढ़ा करना हो, उसका उपाय नहीं है।

प्रश्नकर्ता : 'शुद्धात्मा' का लक्ष्य नहीं जाए तो वह 'समभाव से *निकाल*' किया कहा जाएगा?

दादाश्री : दूसरी चीज़ों में 'इन्टरेस्ट' हो तो शुद्धात्मा का लक्ष्य चूक जाते हैं। हमें जिस चीज़ में रुचि हो तो वह चीज़ मिले बगैर तो रहेगी ही नहीं न! कढ़ी ढुल गई हो, तो भी शोर मचा देते हैं। क्योंकि उसको उसमें 'इन्टरेस्ट' हैं। अंत में ये रुचियाँ ही निकाल देनी हैं। चीज़ें नहीं निकालनी हैं। चीज़ें निकालने से जाएँगी नहीं। पूरा जगत् चीज़ें निकालने के लिए माथापच्ची करता है। अरे, चीज़ें नहीं जाएँगी, वे तो नसीब में लिखी हुई हैं। चीज़ों के प्रति रुचि निकाल देनी है।

प्रश्नकर्ता : क्रमिक और अक्रम में फर्क तो गुरुकृपा का ही है न?

दादाश्री : हाँ, गुरुकृपा ही है बस। यहाँ तो गुरु जैसी कोई वस्तु ही नहीं होती। गुरु अर्थात् कौन? गुरु किसे कहते हैं? कि जो गुरुकिल्ली सहित हों। वे गुरु आपको तार सकेंगे और बिना गुरुकिल्लीवाले हों तो वे गुरु भारी कहलाते हैं। भारी अर्थात् खुद डूबते हैं और हमें भी डूबो देते हैं। वर्ना, यहाँ तो गुरु की ज़रूरत ही नहीं है। मुझे कुछ लोग पूछते हैं कि, 'हमने पहले गुरु बनाए हुए हैं तो क्या हमें उन्हें छोड़ देना है?' तब उनसे कहता हूँ, 'नहीं, उन्हें रखना।' व्यवहार के गुरु तो चाहिए ही न? और यहाँ तो अक्रम में भगवान की सीधी ही कृपा उतरती है! चौदह लोक के नाथ की सीधी ही कृपा उतरती है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान प्रकट होता है, तब क्या होता है?

दादाश्री : ज्ञान प्रकट होता है, फिर किसी जगह पर ठोकर नहीं लगती (चिंता, कषाय, मतभेद नहीं होते)!

प्रश्नकर्ता : और अंदर क्या फ़र्क पड़ता है?

दादाश्री : अंदर अपार सुख बरतता है, दु:ख ही नहीं होता। दु:ख, चिंता कुछ भी स्पर्श नहीं करता!

प्रश्नकर्ता : जिस जीव को आत्मसाक्षात्कार हुआ हो, वह जीव दूसरे जीव को आत्मसाक्षात्कार हुआ है या नहीं वह परख सकता है या नहीं?

दादाश्री : परख सकता है न! ऐसा है न, हम सब्ज़ी बाज़ार में सब्ज़ी लेने जाते हैं तब 'कौन-सी सब्ज़ी अच्छी है', ऐसा परख लेते हैं न, वैसे ही इसका भी पता चल जाता है।

प्रश्नकर्ता : आप जब भगवान कहते हैं, तब किसे संबोधित करते हैं? महावीर को?

दादाश्री : नहीं, महावीर को नहीं। भगवान अर्थात् जो अंदर आत्मा है, परमात्म स्वरूप है। जिस आत्मा को हम परमात्मा कहते हैं, महावीर भी वे ही हैं। महावीर नामधारी हैं। नामधारी के बारे में मैं नहीं कहना चाहता। नामधारी आएँ तो एक को पसंद आएगा और दूसरे का सिर दुखने लगेगा। मूल भगवान से सिर नहीं दुखता!

प्रश्नकर्ता : 'पंचम दीवो शुद्धात्मा साधार', वे कैसा साधार कहना चाहते हैं?

दादाश्री : अभी तक चेतन का आधार '*पुद्गल*' था, अब चेतन का आधार 'शुद्धात्मा' हो गया। इसलिए खुद अपना ही आधार बन गया, अब *पुद्गल* के आधार पर नहीं है। पूरी दुनिया *पुद्गल* के आधार पर है।

बर्तन में घी भरा हो और उस पंडित को विचार आए कि पात्र के आधार पर घी है या घी के आधार पर पात्र है। ऐसा विचार पंडित को आता है, दूसरे अबुध लोगों को नहीं आता। पंडित का दिमाग़ तेज़ होता है न! उस पंडित ने पता लगाने के लिए बर्तन को उल्टा किया, तब उसे समझ में आया कि अरे, यह तो बर्तन के आधार पर घी था। उसी प्रकार इन लोगों में *पुद्गल* के आधार पर आत्मा रहा हुआ है। खुद, खुद पर आधारित हो, 'मैं' *पुद्गल* के आधार पर नहीं, ऐसा समझ में आ जाए तब शुद्धात्मा 'साधार' होता है! *पुद्गल* के आधारी को भगवान ने निराधार कहा है, अनाथ कहा है और आत्मा के आधारी को सनाथ कहा है। साधार हो जाने के बाद कुछ भी बाकी ही नहीं रहा न!

अब चंदूलाल को कोई गालियाँ दें, तब आपको 'चंदूलाल' से कहना चाहिए कि, 'चंदूलाल, आपको गालियाँ दे रहे हैं, परन्तु हम आपकी मदद करेंगे।' ऐसी 'प्रेक्टिस' डाल देनी चाहिए। ये पटाखे फोड़ने हों, रोकेट फोड़ने हों तो 'प्रेक्टिस' नहीं करनी पड़ेगी? नहीं तो जल मरेंगे न! हर एक चीज़ की प्रेक्टिस करनी पड़ती है।

अब कोई आपको झिड़के तो वह 'चंदूलाल' को झिड़क रहा है। 'आपको' तो कोई पहचानता ही नहीं न?

प्रश्नकर्ता : 'माइ' आत्मा कहते हैं, तो वह 'प्रतिष्ठित आत्मा' कहलाता है न?

दादाश्री : नहीं, 'ज्ञान' लेने के बाद 'प्रतिष्ठित आत्मा' कहलाता है। हम 'ज्ञान' देते हैं तब 'शुद्धात्मा' और 'प्रतिष्ठित आत्मा', इस प्रकार दो विभाग हो जाते हैं। हम 'शुद्धात्मा' हो गए और दूसरा भाग क्या रहा? 'प्रतिष्ठित आत्मा।' हमने प्रतिष्ठा करके खड़ा किया है कि, 'यह मैं हूँ, यह मैं हूँ।' उससे प्रतिष्ठित आत्मा खड़ा हो गया। वह अब 'डिस्चार्ज' स्वरूप में रहता है। जिसे 'ज्ञान' नहीं हो, वह भी 'मेरा आत्मा-मेरा आत्मा पापी है' ऐसा-वैसा सब बोलता है, वह भी प्रतिष्ठित आत्मा है। परन्तु उनमें 'शुद्धात्मा' और 'प्रतिष्ठित आत्मा' के बीच का भेद पड़ा हुआ नहीं होता है।

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञान' प्राप्त होने के बाद 'अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ है', ऐसा भान होता है। तो उस अपूर्व अवसर को विस्तार से समझाइए।

दादाश्री : अपूर्व अवसर अर्थात् पूर्व में किसी काल में नहीं आया हो, ऐसा अवसर। जिसमें खुद अपने आप का भान प्रकट होता है, वह अपूर्व अवसर कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : ये जीव कहाँ से पैदा हुए?

दादाश्री : ये पैदा हुए ही नहीं। आत्मा अविनाशी है, शाश्वत है। अविनाशी पैदा होते ही नहीं। जिसका नाश ही नहीं होता, वह पैदा भी नहीं

होता। यह जो दिखता है वह सब भ्रांति है। ये अवस्थाएँ हैं, अवस्थाओं का नाश होता है। बुढ़ापे की अवस्था, युवावस्था, उन सबका नाश होता रहता है, उनमें जो आत्मा था, वह वैसे का वैसा ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : जीवात्मा मरने के बाद वापिस आता है न?

दादाश्री : ऐसा है कि इन 'फ़ॉरेन'वालों का, मुस्लिम का वापिस नहीं आता, परन्तु आपका वापिस आता है! यानी आपके ऊपर भगवान की कृपा है! यहाँ मर गया, तब वहाँ दूसरी योनि में प्रविष्ट हो जाता है। 'फ़ॉरेन'वालों का आत्मा वापिस नहीं आता, वास्तव में वह वैसा नहीं है। वह तो उनकी मान्यता ऐसी है कि यहाँ से मरा तो मर गया! वास्तव में वापिस ही आता है परन्तु उन्हें समझ में नहीं आता। वे लोग पुनर्जन्म को समझते ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यदि ऐसी कोई घटना हो कि अपनी बहन या पत्नी को कोई उठाकर ले जा रहा हो, तब हमें क्या करना चाहिए? वीतराग रहना चाहिए? ज्ञाता-दृष्टा रहना चाहिए?

दादाश्री : आपके हाथ में है ही क्या? यह 'डिस्चार्ज' है। उस समय क्या से क्या हो जाएगा! क्या-क्या गालियाँ दे दोगे! वह तो यदि हमारा उठा ले जाए तो हम वीतरागभाव से रहेंगे। आपका तो सामर्थ्य ही नहीं है न? आप तो हिल उठोगे।

प्रश्नकर्ता : हमारे पास 'टाइम' होता है, इच्छा होती है फिर भी आलस्य रहता है, ऐसा क्यों?

दादाश्री : दो प्रकार के लोग होते हैं। काम में आलस करें, वैसे लोग होते हैं और काम में जल्दबाज़ी करें, ऐसे लोग होते हैं। जल्दबाज़ीवालों में भी कुछ ठीक से नहीं हो पाता। 'नॉर्मेलिटी' में रहे वह अच्छा है।

आपको तो 'चंदूलाल' को टोकना चाहिए : 'आप ऐसा आलस्य क्यों करते हो? बिना काम के टाइम बिगाड़ते हो।' हम 'चंदूलाल' को टोकें,

उसे जेल में नहीं डाल देना है न ही उपवास करवाना है। खाओ–पीओ परन्तु थोड़ा टोकना।

प्रश्नकर्ता : हमारे सामने जो काम आए वह करना तो पड़ेगा न?

दादाश्री : वे बातें अपने आप ही हो जाती हैं। उन्हें सहलाने (बहुत महत्व देने) की ज़रूरत नहीं है। हम मुश्किलों को महत्व दे देते हैं कि, 'नहीं, मुझे तो देखना ही पड़ेगा न', तो वे चढ़ बैठती हैं! काम तो आपका हो ही जाएगा। आप उसे 'देखते' रहो, और वह तो नियम से हो ही जाएगा। इतने सारे 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल ऐविडेन्स' (वैज्ञानिक सांयोगिक प्रमाण) हैं कि आपको कुछ भी मेहनत नहीं करनी पड़ती। आपको सिर्फ ऐसी भावना रखनी है कि मुझे व्यवहार में आदर्श रहना है। व्यवहार नहीं बिगड़ना चाहिए। फिर जो बिगड़ गया उसका 'समभाव से *निकाल*' कर देना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यह 'ज्ञान' का अपच अर्थात् क्या? उसके लक्षण क्या हैं?

दादाश्री : अपच अर्थात् अजीर्ण।

प्रश्नकर्ता : उसे रोकने के उपाय क्या हैं? उसके लक्षण क्या हैं? यह 'ज्ञान' लेने के बाद अपच होता है क्या?

दादाश्री : किसी किसीको ही होता है। सबको नहीं होता। 'ज्ञान' का अजीर्ण हुआ किसे कहते है कि एक पक्ष में पड़ जाता है। व्यवहार में कच्चा पड़ जाता है। कॉलेज में नहीं जाता, जाए तो ध्यान नहीं देता। 'हम तो आत्मा हैं, आत्मा हैं' ऐसे करता रहता है। इसलिए हम समझ जाते हैं कि अजीर्ण हुआ है। किसे अजीर्ण हुआ नहीं कहते हैं? व्यवहार में 'कम्प्लीट' होता है। खुद के सभी फर्ज़ पूरे करने पड़ेंगे और वे सभी फर्ज़ अनिवार्य हैं। उनमें ऐसे उल्टे भाव करो तो वैसा नहीं चलेगा।

प्रश्नकर्ता : सर्व जीव शुद्धात्मा हों, तो इस विश्व संचालन में विक्षेप नहीं होगा?

दादाश्री : सर्व शुद्धात्मा हो तो संचालन होगा ही नहीं। इसमें से सिद्ध होना है। इन मनुष्यों में से धीरे-धीरे सिद्ध होना है। उसमें कोई पूरी दुनिया में से एक-दो सिद्ध होते हैं। फिर वापिस थोड़े समय बाद एकाध-दो सिद्ध होते हैं। यानी कि सिद्ध होना इतना आसान नहीं होता। सिद्ध हुआ जा सकता है। मनुष्य परमात्मा बन सकता है! परन्तु 'खुद का' ज्ञान होने से, आत्मा को व्यक्त करने से, वह हो सकता है! आत्मा ही परमात्मा बन सकता है!

प्रश्नकर्ता : हमारे यहाँ एक संत आए थे वे 'ओहम् और सोहम्' बोल रहे थे, वह क्या है?

दादाश्री : ॐ और सोहम्, दो शब्द हैं। ओहम् नामका कोई शब्द नहीं है। अपना जो ॐ हैं न, वह उच्चतम मंत्र है। उसे बोलने से बहुत लाभ होता है ऐसा है और सोहम् का अर्थ क्या है कि 'वह मैं हूँ, जो भीतर है वह मैं हूँ।' ये दोनों मंत्र लाभदायक हैं।

ज़िन्दगी क्या है?

प्रश्नकर्ता : आपके हिसाब से ज़िन्दगी क्या है?

दादाश्री : मेरे हिसाब से ज़िन्दगी जेल है, जेल! ऐसी चार प्रकार की जेलें हैं। देव-देवी नज़रकैद में हैं। ये मनुष्य सादी कैद में हैं। फिर इन मनुष्यों के अलावा दूसरे जो धरती पर दिखते हैं, जिन्हें तिर्यंच कहते हैं, वे सभी सख़्त मज़दूरी की कैद में हैं और चौथा आजीवन कैद। वह नर्कगति के लोगों को है। तुझे इस जेल में अच्छा लगता है क्या?

प्रश्नकर्ता : अच्छा तो नहीं लगता, परन्तु अच्छा लगाना पड़ता है।

दादाश्री : हाँ, क्या करे? कहाँ जाए फिर? आ फँसे फिर कहाँ जाए वह? और तुझे अकेले को नहीं, साधु, आचार्य, महाराज सभी फँसे हुए हैं। वे अब कहाँ जाएँ? दरिया में डूबें, तो वहाँ भी पुलिसवाले पकड़ते हैं! 'क्यों आत्महत्या कर रहे हो?' ऐसा कहते हैं। तो आत्महत्या भी नहीं करने देते! यह सरकार इतनी अच्छी आई है कि आत्महत्या करनी हो,

तब भी दूसरा गुनाह लगता है। 'यहाँ करम पूरे भोग लो' ऐसा कहते है।

प्रश्नकर्ता : ज़िन्दगी में सुखी होने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : तुझे कैसा सुख चाहिए? विनाशी चाहिए या 'इटरनल' चाहिए?

प्रश्नकर्ता : 'इटरनल' (शाश्वत)।

दादाश्री : यदि 'इटरनल' सुख चाहिए तो तू यहाँ पर आना और विनाशी सुख चाहिए तो उसका मैं तुझे रास्ता बता दूँगा। यहाँ कभी-कभी आते रहना और दर्शन कर जाना। मैं आशीर्वाद देता रहूँगा। तेरा विनाशी सुख बढ़ता जाएगा और यदि 'इटरनल' सुख चाहिए तो उसके लिए मेरे पास आना। जिसके मिलने के बाद तेरे पास से वह सुख जाएगा ही नहीं। तुझे 'इटरनल' सुख नहीं चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : शाश्वत सुख चाहिए। मैं आऊँगा आपके पास।

मोक्षमार्ग

अभी इस काल में मोक्षमार्ग रहा ही नहीं। एक रत्तीभर भी नहीं। जैसे कि अलोप हो गया है। अभी तो संसारमार्ग भी सच्चा नहीं रहा।

प्रश्नकर्ता : मोक्षमार्ग में क्रिया की ज़रूरत है?

दादाश्री : मोक्षमार्ग में ऐसी क्रिया नहीं होती है, वहाँ तो ज्ञानक्रिया की जाए, तब मोक्ष में जाया जाएगा। अज्ञानक्रिया से मोक्ष नहीं होता। पूरा दिन सामायिक करे फिर भी मोक्ष नहीं होता, क्योंकि क्रिया 'मैं करता हूँ' ऐसा कहता है। 'मैं कर रहा हूँ' वह बंधन है। इस काल में तो फिर से मनुष्य जन्म मिले तो भी बहुत अच्छा। रौद्रध्यान और आर्तध्यान के अलावा और कुछ किया ही नहीं है। नर्कगति के जीव भी कम है। सिर्फ 'रौद्रध्यानवाले' ही नर्कगति में जाएँगे। थोड़ा आर्तध्यान और धर्मध्यान होगा, तब भी मनुष्य में आ पाएँगे। यह तो धर्मध्यान भी नहीं जानता है। धर्मध्यान को समझ ले तो भी काम हो जाए।

प्रश्नकर्ता : सुबह उठें तब से दुकान और ग्राहक याद आते हैं, उसमें धर्मध्यान में किस तरह रहें?

दादाश्री : उसमें किसीका दोष नहीं है। बरबस करना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : इसमें से छूटें किस तरह?

दादाश्री : पुस्तक में आपने नहीं पढ़ा?

प्रश्नकर्ता : पूरा नहीं पढ़ा है।

दादाश्री : अपने आप छूटा जा सके ऐसा नहीं है। जो बंधनों में से मुक्त हो चुके हैं, वे छुड़वा सकते हैं। जो खुद ही यदि डूब रहा हो, वह दूसरों को नहीं तार सकेगा। जिसे मोक्ष प्राप्त हो गया हो, वह दूसरों को मोक्ष दे सकता है।

अभी लगभग दस प्रतिशत लोग मनुष्य गति में वापिस आएँगे। दूसरे सब तिर्यंचगति के मेहमान हैं।

प्रश्नकर्ता : जैन धर्म और मनुष्यगति मिले, वैसा निश्चय किया हो तो?

दादाश्री : वह तो किसका निश्चय नहीं होगा? परन्तु आर्तध्यान और रौद्रध्यान हों तो तिर्यंच में ही जाएगा न? रौद्रध्यान मतलब क्या कि सामनेवाले को किसी भी प्रकार का दुःख पहुँचाना और आर्तध्यान अर्थात् खुद को ही पीड़ा होती है। दूसरे को किंचित् मात्र दुःखी नहीं करता।

कितने भी निश्चय करे, कितना भी करे, भटकता रहे, फिर भी कुछ नहीं होगा। अनंत जन्मों से भटक ही रहा है न? जब 'मुक्त पुरुष' मिले तब सुनता रहा, परन्तु उनकी आज्ञावश नहीं रहा। आज्ञावश रहना, वही धर्म है। 'मुक्त पुरुष' स्वयं मोक्ष में ले जा सकते हैं। वे 'लाइसेन्स सहित' हैं। 'ज्ञानी पुरुष' के पास से बात को समझ लेना है।

अपने यहाँ पर दो मार्ग हैं : 'रिलेटिव' मार्ग और 'रियल' मार्ग। कई लोग धर्मध्यान सिखलाते हैं परन्तु किसीको आता नहीं है। इसलिए हम

यहाँ पर धर्मध्यान सिखलाते हैं, परन्तु वह बहुत ऊँचे प्रकार का है। कोई उसे हमारे पास से धारण कर ले तो अपना काम निकाल ले।

प्रश्नकर्ता : धर्मध्यान में जाने के बाद उसमें आगे बढ़े, वैसे-वैसे शुक्लध्यान की ओर बढ़ता है न?

दादाश्री : नहीं। धर्मध्यान की ओर गया, यानी शुक्लध्यान की ओर खुद नहीं जा सकता। शुक्लध्यान ऐसा नहीं है कि खुद अपने आप प्रकट हो जाए। 'ज्ञानी पुरुष' या 'केवळज्ञानी' के दर्शन किए बिना शुक्लध्यान प्रकट नहीं होता। वह निर्विकल्प पद है। अतीन्द्रिय पद है। यानी और किसी भी प्रकार से होगा नहीं। हम आपको धर्मध्यान भी देते हैं और शुक्लध्यान भी देते हैं।

ज्ञानी की विराधना

प्रश्नकर्ता : यह बोलने-करने में, आपको प्रश्न पूछने में कहीं पर अविनय हो जाता है। अंतर में ऐसा अविनय करने का कोई भाव नहीं होता, फिर भी बोलने-करने में अविनय हो जाता हो तो वह हम विराधना तो नहीं करते हैं न?

दादाश्री : बात करते हुए आप विराधक बनो तो हम बात बंद कर देते हैं। क्योंकि हम जानते हैं कि यह तो उल्टे रास्ते चला।

प्रश्नकर्ता : परन्तु हमसे आपकी विराधना हो जाए तो?

दादाश्री : हमारी विराधना करने के आपमें परमाणु ही नहीं हैं। ऐसी तो हमें शंका ही उत्पन्न नहीं होती। पूरा दिन जिनकी आराधना करते हो, उसकी विराधना होगी ही नहीं न! 'दादा' की आराधना की, वही 'शुद्धात्मा' की आराधना करने के बराबर है और वही परमात्मा की आराधना है और वही मोक्ष का कारण है।

आत्मसुख का लक्षण

दादाश्री : सुख आत्मा में से आता है या *पुद्गल* में से?

प्रश्नकर्ता : आत्मा में से।

दादाश्री : वह आत्मा का सुख है या *पुद्‌गल* का सुख है, वह कैसे पता चलेगा?

प्रश्नकर्ता : अतीन्द्रिय अनुभव होगा न?

दादाश्री : वह सबको पता नहीं होता। आत्मा के सुख का लक्षण अर्थात् निराकुलता रहती है। थोड़ी भी आकुलता-व्याकुलता हो तो समझना की दूसरी जगह पर उपयोग है। मार्ग भूल गए। बाहर से बेचैन होकर आया और पंखा चलाए तो बहुत अच्छा लगता है। उसे शुद्ध उपयोग नहीं कहते। उसे भी जानना चाहिए। *अशाता* (दु:ख-परिणाम) वेदनीय हो, उसे भी जानना चाहिए और निराकुलता भी रहनी चाहिए। दोनों को जानना चाहिए। *शाता* (सुख-परिणाम) वेदनीय के साथ एकाकार हो जाए, वह भूल कहलाती है।

वेदनीय उदय-ज्ञानजागृति

प्रश्नकर्ता : *शाता* वेदनीय में मिठास तो आती है न?

दादाश्री : मिठास तो आती है परन्तु मिठास को जानना चाहिए। उस घड़ी ज्ञान हाज़िर रहना चाहिए कि यह *शाता* वेदनीय है और यह निराकुलता है। *अशाता* वेदनीय आए, तो *अशाता* वेदनीय है ऐसा जानता है। बाह्य में *अशाता* होती है और अंतर में निराकुलता होती है!

सुखी होना, दु:खी होना अर्थात् भोक्ता बनना। कर्त्ता और भोक्ता सभी में कर्म बँधते हैं और ज्ञाता में कर्म नहीं बँधते। हम जानते हैं कि अभी 'चंदूभाई' को *अशाता* बरत रही है। सुखी या दु:खी होने का अर्थ क्या है?

आज मरण आए या पच्चीस साल बाद आए, उसमें हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मृत्यु का भय नहीं है, परन्तु मृत्यु के समय जो दु:ख होता है, उसका डर लगता है।

दादाश्री : दु:ख कैसा?

प्रश्नकर्ता : शारीरिक व्याधि।

दादाश्री : उसमें डर कैसा? 'व्यवस्थित' है न? 'व्यवस्थित' में अँधे होना होगा तो अंधा हो जाएगा, फिर उसका डर कैसा? 'व्यवस्थित' हमने 'एक्सेप्ट' किया है, फिर कभी कुछ स्पर्श नहीं करेगा, कोई भय रखने जैसा नहीं है। निर्भय होकर घूमो।

प्रश्नकर्ता : वेदना का भय रहा करता है।

दादाश्री : वेदना होती ही नहीं तो वहाँ वेदना का भय कहाँ से होगा? वेदना तो उसे होती है कि जिसे भय हो! जिसे भय नहीं उसे वेदना कैसी? यह तो आपका 'वणिक माल' भरा हुआ है न? वह एकदम नरम होता है।

यह सेब खाएँ और दूसरा अमरूद खाएँ, तो उन दोनों में फ़र्क नहीं है? अमरूद ज़रा सख़्त होता है और सेब नरम लगता है। इसलिए आपको 'चंदूभाई' से कहना चाहिए कि 'दादा' ने कहा है : 'व्यवस्थित'। 'व्यवस्थित' कहने के बाद भय कैसा?

प्रश्नकर्ता : दो दिन से सिर दु:ख रहा था। वह ज़रा भी सहन नहीं हो रहा था।

दादाश्री : 'मुझसे सहन नहीं होता।' ऐसा कहा कि वह पकड़ लेगा! परन्तु 'हमें' तो कहना चाहिए, 'चंदूभाई, बहुत सिर दु:ख रहा है? मैं हाथ फेर देता हूँ। कम हो जाएगा।' परन्तु 'मुझे दु:ख रहा है' कहा कि पकड़ लेगा! यह तो बहुत बड़ा भूत है!

प्रश्नकर्ता : *शाता* मीठी लगती है और *अशाता* अप्रिय लगती है।

दादाश्री : वह 'चंदूभाई' को लगती है न? 'चंदूभाई' से 'हम' कहें कि डिक्शनरी अब बदल डालो। *अशाता* सुखदायी और *शाता* दु:खदायी। सुख-दु:ख तो सारे कल्पित हैं। मेरा यह एक शब्द सेट करके देखना,

उपयोग करके देखना। यदि आपको ज़रा भी असर हो तो कहना।

प्रश्नकर्ता : कुछ रास्ता निकालने के लिए ही तो यह प्रश्न पूछ रहा हूँ।

दादाश्री : आप मुझसे पूछिए। मैं कहूँ उस अनुसार करना। रास्ता तो यही है। और सिर पर तो ऐसा लेना ही नहीं है कि मुझे दु:ख रहा है। कोई कहेगा कि 'क्यों, आपको क्या हो रहा है?' तब कहना कि 'पड़ोसी का सिर दु:ख रहा है, उसे मैं जानता हूँ।' और 'यह' पड़ोसी है, ऐसा 'आपको' विश्वास हो गया है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तो फिर दु:ख किसलिए? पड़ोसी रो रहा हो तो हम भी क्या रोने लगें? पड़ोसी के यहाँ तो लड़ाइयाँ होती ही रहेंगी और पत्नी के साथ किसकी लड़ाई नहीं होती? 'हम' अविवाहित हैं, 'हम' किसलिए रोएँ? जो विवाहित है, वह रोए। 'हम' ने विवाह नहीं किया है! विधुर भी नहीं हुए! 'हम' किसलिए रोएँ? हमें तो पड़ोसी को चुप करवाना चाहिए कि, 'भाई, रोना नहीं, हम हैं आपके साथ। डोन्ट वरी, घबराना नहीं।' ऐसा कहना।

प्रकृति का सताना

यह 'वणिक-माल', वह परेशानी आने से पहले ही घबरा जाता है। हमें तो चंदूभाई से कहना है कि, 'आपको कुछ भी नहीं होगा।' भीतर ऐसा विचार आएगा कि 'उस व्यक्ति से चला नहीं जा रहा, और मुझे भी ऐसा हो जाएगा तो?' ऐसे विचार आएँ तो आप कहना, 'चंदूभाई, हम बैठे हैं न! कुछ भी नहीं होगा।' 'आप' जुदापना के व्यवहार से बोलो न। यह तो साइन्स है। 'मुझे हुआ' कहा कि भूत पकड़ लेगा। इसलिए जगत् को सारे भूतों ने पकड़ा हुआ है!

खुद परमात्मा है फिर किसलिए यह सब है? परमात्मापन की शक्ति थोड़ी-बहुत आपको दिखी है या नहीं? आपको ऐसा भान है कि आप

'परमात्मा हो', ऐसी शक्ति उत्पन्न हुई है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : फिर क्या हर्ज है? जिसे थोड़ी शक्ति उत्पन्न हो गई उसे सर्व शक्ति है, वह पक्का हो गया। आपका कोई अपमान करे तो परिणाम बदलेंगे नहीं, तब जानो कि 'ओहोहो! इतनी सारी शक्ति!!' वह तो अभी थोड़ी ही निकली है। अभी तो और निकलेगी। अनंत शक्तियों का धीरे-धीरे अनुभव होगा!

ये 'ए. एम. पटेल', ये व्यक्ति ही हैं न? आपके जैसे नहीं हैं ये? मनुष्य को सबकुछ होता है। क्या नहीं होता? परन्तु हम तो दुःख के आने से पहले ही आधार दे देते हैं, 'हम हैं न फिर आपको क्या हर्ज है?' हम तो पड़ोसी के पड़ोसी को भी कह देते हैं कि 'हम हैं न आपके साथ!' जहाँ भगवान हैं, वहाँ क्या कमी रहेगी?

आप जुदापन से बोलो तो सही। क्षत्रियों की तरह हिम्मत रखनी चाहिए। अभी तक आप निराधार थे। शास्त्रकारों ने उसे अनाथ कहा है। वही आप अब सनाथ हो गए हैं। अब आप इस तरह आधार मत देना कि 'मुझे हुआ।' ऐसे आधार दोगे तो वह दुःख खत्म नहीं होगा। मेरा सिर दुःखा ऐसा आधार आप दोगे तो वह वस्तु गिर जाएगी या रहेगी।

प्रश्नकर्ता : रहेगी।

दादाश्री : आधार दो तो रहेगी। पूरा साइन्स ही है। उसका उपयोग करना आ गया तो काम हो जाएगा। थोड़ा भी चूकोगे तो उसका असर होगा, और कुछ भी नुकसान नहीं होगा, मगर आपको असर भुगतना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : ऐसे भाव से, *अशाता*भाव से *निर्जरा* (आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना)होगी न?

दादाश्री : वह *निर्जरा* होने के लिए ही आया है, परन्तु ऐसा है न कि उतना हमारा सुख आना बंद हो गया न? हमारे सुख का वेदन बंद हो जाता है। *अशाता* वेदनीय का हर्ज नहीं है। उसकी तो *निर्जरा* ही हो रही है।

तरीका बदलो, वेदन का

इसलिए अब आप तरीका बदलो तो वेदना कम होगी, वैसे-वैसे अंदर से अधिक सुख आएगा, क्योंकि बाहर उलझता है तो अंदर से सुख आना कम हो जाता है। आप 'चंदूभाई' को दर्पण दिखाओ, ऐसे हाथ-वाथ फेरकर कहो, 'हम हैं और आप हो। दो हैं, वह तो पक्का है न? उसमें बनावट नहीं है न?'

प्रश्नकर्ता : नहीं, दो ही हैं।

दादाश्री : ये 'पड़ोसी' कुछ जानते नहीं हैं, वह बात भी पक्की है न? और आप जानकार हो। पड़ोसी को कुछ मालूम नहीं कि सिर दुखा। मालूम आपको है। इसलिए आप कहना कि, 'सिर दुखा वह हम जानते हैं। वह अभी ठीक हो जाएगा, शांति रखो!' फिर कंधा थपथपा देना। पड़ोसी को तो हमें सँभालना ही चाहिए न? और पूरणपूरी अच्छी हो, शुद्ध घी हो, तो दो खिला भी देना! 'खाकर सो जाओ', कहना। *पाडाने वांके पखाली ने डाम* (भैंसे की भूल की सज़ा चरवाहे को) किसलिए?

प्रश्नकर्ता : इसमें भैंसा कौन है?

दादाश्री : सारा मन का दोष है इसमें। मन की चंचलता के कारण पेट बेचारे को भूखे मरना पड़ता है। मन भैंसा है इसमें, पेट चरवाहा है। दोष मन का है और लोग पेट को दंड देते हैं। पकौड़े-जलेबी देखी तो मन आउट ऑफ कंट्रोल हो जाता है। इसलिए पेट में गैस हो जाती है। फिर दूसरे दिन तबियत बिगड़े, तब फिर उपवास करना पड़ेगा। फिर धर्म के नाम पर उपवास करे या चाहे जिस नाम पर, परन्तु उपवास तो करना पड़ेगा न!

सम्यक् तप

भगवान ने उणोदरी तप कितना अच्छा बताया है! दो भाग भोजन, एक भाग पानी का और एक भाग हवा का, इस तरह चार भाग करके खा लेना चाहिए।

भगवान ने ज्ञान-दर्शन-चारित्र इस प्रकार तीन नहीं बताए, चार बताए हैं। चौथा तप बताया है। मोक्ष के चार आधारस्तंभ हैं। क्रमिक मार्ग में भी चार आधारस्तंभ हैं और यहाँ 'अक्रम' में भी चार आधारस्तंभ हैं। तप कौन-सा? जब वेदना हो रही हो। आपका सिर दुःखना, वह वेदना है। वास्तव में वह वेदना मानी ही नहीं जाती। उसे तो जानता ही रहता है। परन्तु दूसरी वेदना ऐसी कि ऐसे हाथ काट रहे हों, रगड़-रगड़कर काट रहे हों, ऐसे संयोगों में आ फँसे हों, तब उसे वेदना कहा जाता है। उस घड़ी तप करना है। भगवान ने कहा है कि कौन-सा तप? तू 'होम डिपार्टमेन्ट' में है। स्वपरिणति में है तब परपरिणति उत्पन्न नहीं हो, ऐसा तप करना है। ये परपरिणाम हैं और ये मेरे परिणाम नहीं है, इस तरह स्वपरिणाम में मज़बूत रहना, वही तप है।

ऐसा तप गजसुकुमार ने किया था। वे शुद्धात्मा के ध्यान में थे, तब उनके ससुर ने उनके सिर पर मिट्टी की सिगड़ी बनाकर आराम से अंगारे भरे थे। उन्होंने देखा कि 'अरे वाह! ये ससुरजी तो मोक्ष की पगड़ी बाँध रहे हैं।' वे शुद्धात्मा के ध्यान में श्रेणियाँ चढ़ते-चढ़ते केवळज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में गए!

मोक्ष का मार्ग है शूरवीरों का...

इस शरीर से हमें कहना चाहिए कि 'हे शरीर! हे मन! हे वाणी! आपको कभी न कभी तो लोग जलाएँगे तो उसके बदले हम ही जला दें तो क्या बुरा है?'

यानी क्षत्रिय बन जाओ। जो स्वरूप अपना नहीं है, वहाँ क्या पीड़ा? यह स्वरूप अपना नहीं है ऐसा 'ज्ञानी पुरुष' ने आपको बताया है, वह आपको बुद्धि से समझ में आ गया, फिर कैसी पीड़ा?

आपका सिर्फ एक ही मकान हो, उसे तोड़ना अच्छा नहीं लगता, परन्तु कर्ज़ा बहुत हो गया हो इसलिए उसे बेच देते हो, उसके दस्तावेज भी हो जाते हैं, फिर वह घर टूटे, तब आप शोर मचाओ कि, 'यह घर मेरा है, यह घर मेरा है', तो वह कितना ख़राब लगेगा!

प्रश्नकर्ता : शब्दों में कहने में परेशानी नहीं आती, परन्तु जब वेदनीय हाज़िर होती है तब अपने तेवर दिखाती है।

दादाश्री : वेदनीय तो आपको क्या हुई है? वेदनीय तो जब पक्षाघात हो, तब वेदनीय कहलाती है। इसे वेदनीय कैसे कहेंगे? पेट में दुःखा, सिर में दुःखा या टीस उठी तो उसे वेदनीय कैसे कहेंगे? अपने एक महात्मा को पक्षाघात हुआ था। उन्होंने कहा कि, ''दादा, इस 'मंगलदास' को सभी मिलने आते है, उसे मैं भी देखता हूँ!''

प्रश्नकर्ता : जब तक आत्मा का स्पष्ट वेदन नहीं होता, अनंत स्वरूप का वेदन नहीं होता, तब तक दूसरा कुछ न कुछ तो वेदन होता है न? जैसे कि *शाता-अशाता*।

दादाश्री : ऐसा है न वेदना का स्वभाव कैसा है कि यदि उसे पराई जानो तो वह जानता ही है कि यह पराई है। फिर सिर्फ जानता ही रहता है उसे, वेदता नहीं। परन्तु यह वेदना 'मुझे हुई' कहे तो वेदन करता है और यह 'सहन नहीं होती' ऐसा बोले तो वह वेदना दस गुना लगेगी। यह 'सहन नहीं होती', ऐसा तो बोलना ही नहीं चाहिए।

यह पैर तो टूट रहा हो तो दूसरे पैर से कहें कि तू भी टूट। दिवालिया ही निकालना है। अब मोक्षमार्ग हाथ में आया है इसलिए ज़रा हिम्मत दिखानी पड़ेगी। जुएँ पड़ जाएँ तो धोती किसलिए निकालनी? उन्हें तो बीनकर फेंक दे।

कोई कषायी वाणी बोले आपके साथ, तो वह आपसे सहन होगा क्या?

प्रश्नकर्ता : वह ज़रा दूर है इसलिए बहुत बुरा नहीं लगता।

दादाश्री : सामान्य रूप से इन मनुष्यों का स्वभाव कैसा होता है? शारीरिक दुःख सहन करते हैं, लेकिन कषायी वाणी सहन नहीं कर सकते! मान बैठे हैं कि यह मुझसे सटा हुआ ही है। अब इतना सटा हुआ भी नहीं है वहाँ पर। सिर्फ स्पर्श ही है। सिर्फ आत्मा का और *पुद्गल* का,

दोनों का स्पर्श होता है। एकाकार कभी भी हुआ ही नहीं। अब आत्मा का ऐसा गुण है कि बोलते ही, जैसा बोले वैसा असर हो जाता है। इसलिए क्षत्रियता का उपयोग करना पड़ेगा। थोड़े समय हमारे टच में रहना पड़ेगा।

आत्मा का स्वभाव कैसा है? जैसा चिंतन करे, तुरन्त ही वैसा हो जाता है। सुखमय चिंतन किया तो सुखमय बन जाता है और दु:खमय चिंतन किया तो वैसा हो जाता है। इसलिए बहुत जागृत रहना है। इसमें दूसरी कोई चिंतना नहीं होती। जैसे कि, मेरा सिर दु:ख रहा है!

प्रश्नकर्ता : चिंतना नहीं होती, परन्तु माहौल बिगड़ जाता है।

दादाश्री : माहौल का असर होता है, परन्तु हमें बोलना नहीं चाहिए कि मुझे दु:खा। हमें तो ऐसा कहना चाहिए कि, 'चंदूभाई' का सिर दु:ख रहा है।

यह तो एक घबराहट है। एक मनुष्य से कड़वी दवाई नहीं पी जाती थी, तब मैंने उसके उपस्थिति में चाय और भाखरी (गुजराती रोटी) खाते हैं, उस तरह कड़वी दवाई और भाखरी आराम से खाई। वह मनुष्य तो चौंक गया कि यह तो आप चाय की तरह पी रहे हैं। अरे, चाय की तरह ही पीते हैं। यह तो तुझमें सिर्फ डर घुस गया है। उसके बाद वह व्यक्ति उसी तरह कड़वी दवाई पीने लग गया। सामनेवाला दिखाए तो हो सकता है। कोई दिखानेवाला चाहिए। एक बार मैं अग्नि में उँगली रखकर बताऊँ तो आप भी रखोगे। बतानेवाला चाहिए। आत्मा को कुछ भी स्पर्श नहीं करता और कुछ भी बाधक भी नहीं है। इसलिए उस रूप से रहना। निर्लेप, असंग, अग्नि का भी संग उसे स्पर्श नहीं करता, तो इस दु:ख का, शरीर का किस तरह से स्पर्श करेगा? इसलिए अपना वह स्वभाव पकड़कर रखना है।

और परभाव में परपरिणति उत्पन्न नहीं हो, वह देखते रहना। परपरिणति किसे कहा जाता है? परपरिणाम को खुद के परिणाम माने, वह परपरिणति कहलाता है। सिर दु:खता है, वह परपरिणाम कहलाता है, और उसे 'मुझे दुख रहा है' ऐसा कहा उसे परपरिणति कहते हैं। जिसने स्वपरिणति, स्वपरिणाम नहीं देखे हैं, वह परपरिणति के अलावा और क्या

देखेगा? 'स्व' तो समकित होने के बाद ही हाथ में आता है। 'स्व' हाथ में हो तो क्रोध-मान-माया-लोभ की दशा मृतप्राय हो जाती है। क्रोध-मान-माया-लोभ कषाय कहलाते हैं।

मोक्ष चाहिए तो जान की बाज़ी लगाने का खेल है। शूरवीरता अर्थात् शूरवीरता! ऊपर से एटमबोम्ब गिरे परन्तु बिल्कुल भी विचलित नहीं हो, वह शूरवीरता कहलाती है। और यदि आप शुद्धात्मा स्वरूप हो, मैंने जो स्वरूप आपको दिया है उस स्वरूप में रहो तो पानी भी छू सके, ऐसा नहीं है।

आप अब निःशंक हुए। अब आज्ञा में रहो और बुढ़ापा निकाल दो। यह देह चली जाए तो भले ही चली जाए, कान काट ले तो भले ही काट ले, *पुद्गल* दे देना है। *पुद्गल* पराया है। पराई वस्तु हमारे पास रहेगी नहीं। वह तो 'व्यवस्थित' का टाइम होगा, उस दिन चली जाएगी। इसलिए 'जब लेना हो तब ले लो' ऐसे कहना चाहिए। भय नहीं रखना है। कोई लेगा नहीं। कोई फालतू भी नहीं है। हम कहें कि 'ले लो', तो कोई लेगा नहीं, परन्तु उससे हमें निर्भयता रहती है। 'जो होना हो वह हो', ऐसा कहें।

प्रश्नकर्ता : बाहर की फाइलें इतनी अधिक परेशान नहीं करतीं, परन्तु अंदर की *शाता-अशाता* में एकाकार हो जाते हैं।

दादाश्री : *शाता-अशाता* को तो एक ओर ही रख देना चाहिए। *शाता* में प्रमाद हो जाता है, अजागृति रहती है। *शाता-अशाता* की तो बहुत परवाह नहीं करनी चाहिए। *अशाता* आए, हाथ में जलन हो रही हो तो हमें कहना चाहिए कि, ''हे हाथ! 'व्यवस्थित' में हो तो जलो या स्वस्थ रहो।'' तो जलन हो रही होगी तो बंद हो जाएगी, क्योंकि हम जला देने की बात करें, फिर क्या होगा? कभी भी सहलाना नहीं चाहिए। यह *पुद्गल* है। 'व्यवस्थित' के ताबे में है। उसकी *अशाता* वेदनीय जितनी आनी हो उतनी आए। शूरवीरता तो चाहिए न? नहीं तो फिर भी रो-रोकर तो भुगतना ही है, इसके बदले हँसकर भोगें तो क्या बुरा है? इसीलिए तो कहा है न, ''ज्ञानी वेदें धैर्य से, अज्ञानी वेदे रोकर।''

आधा पैर टूट गया हो तो हम कहें, चलो डेढ़ तो रहा न! फिर आधा चला जाए, तब हम कहें कि दो के बदले एक तो रहा न? ऐसे करते-करते अंत में सभी पार्ट्स टूट जाएँ, तब अंत में हम आत्मा तो हैं न? अंत में तो सभी पाट्र्स टूट ही जाएँगे न? पेट्रोल छिड़ककर आग लगा दो तो भी हम आत्म स्वरूप हैं! कभी न कभी जलेगा ही न! नहीं जलेगा? थोड़ा अभ्यास ही करने की ज़रूरत है। नंगे पैर महाराज किस तरह चलते हैं? किसान किस तरह चलते हैं? दो-चार बार हम जल जाएँ तो सभी अपने आप रास्ते पर आ जाता है। वर्ना एक (दवाई की) गोली से वेदना शांत हो जाए, उसे वेदना ही कैसे कहेंगे? सौ-सौ गोलियाँ खाए तो भी वेदना शांत नहीं हो, उसे वेदना कहते हैं।

अब तो अपना कुछ नहीं है। 'ज्ञानी पुरुष' को सबकुछ समर्पित कर दिया। मन-वचन-काया और सर्व माया, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म सबकुछ ही अर्पण कर दिया। फिर आपके पास कुछ भी बाकी नहीं रहता।

महावीर का वेदन-स्वसंवेदन

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी वेदें धैर्य से, अज्ञानी वेदे रोई।' तो ज्ञानी भी वेदते तो हैं न?

दादाश्री : वेदना तो जाती ही नहीं न! परन्तु वे वेदना को धैर्य से वेदते हैं, हर एक व्यक्ति का अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार धैर्य होता है। हालाँकि भगवान महावीर सिर्फ जानते ही थे। एक खटमल उन्हें काटे तो उसे वे सिर्फ 'जानते' ही थे, वेदते नहीं थे। जितना अज्ञान भाग है, उतना वेदते हैं। आप श्रद्धा से शुद्धात्मा हुए हो, अब 'ज्ञान' के अनुभव से आत्मा हो जाओगे, तब सिर्फ 'जानना' ही रहेगा। तब तक वेदन है ही। वेदन के समय तो हम आपसे कहते हैं न कि दूर बैठना, अपने 'होम डिपार्टमेन्ट में!' ज़रा-सा भी हिलना-डुलना नहीं, चाहे जितनी घंटियाँ बजाए फिर भी 'होम डिपार्टमेन्ट' मत छोड़ना। भले ही घंटियाँ मारे! बारह सौ घंटियाँ मारे तो भी हम किस लिए अपना 'ऑफिस' छोड़ दें?

शाता वेदनीय और *अशाता* वेदनीय तो तीर्थंकरों को भी आते हैं,

परन्तु वे ज्ञान के अनुभव से, केवळज्ञान से 'जानते' हैं।

मन को यदि डिस्चार्ज नहीं करे तो वह वापिस साथ में आएगा, माल-सामान साथ में आएगा। इसके बदले तो खाली हो जाने दो न। एक नियम ऐसा है कि वह खाली हो ही जाएगा। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, वे चार इकट्‌ठे हो जाएँ, तो वह खाली हो ही जाएगा, नियम से ही।

आत्मा परम सुखी है। *अशाता* तो देह देती है, मन देता है, वाणी देती है। कोई कुछ कह जाए तो भी *अशाता* वेदनीय होती है।

प्रश्नकर्ता : देह की वेदनीय हो, तब चित्त उसमें अधिक चला जाता है।

दादाश्री : हाँ। चित्त वहीं के वहीं मंडराता रहता है। हम उसे कहें कि बाहर ज़रा घूमकर आ जा, फिर भी नहीं जाता। घर में ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : उससे फिर बंध नहीं पड़ता?

दादाश्री : नहीं। वेदना भोग लेनी है। भोगे बिना चारा ही नहीं। बंध तो कर्त्ता बन जाए, तब पड़ता है। कर्त्ता मिटे तो छूटें कर्म।

चित्त की शुद्धता - सनातन वस्तु में एकता

पुलिसवाला चिल्लाता हुआ आए, हथकड़ी लेकर आए, फिर भी हमें कुछ भी असर नहीं हो, वह विज्ञान!

प्रश्नकर्ता : तो फिर चित्त किसमें रखना चाहिए?

दादाश्री : चित्त स्वयं के स्वरूप में रखना है। जो शाश्वत हो उसमें चित्त रखो। चित्त सनातन वस्तु में रखना है। मंत्र सनातन वस्तु नहीं हैं। एक आत्मा के अलावा इस जगत् में कोई भी वस्तु सनातन नहीं है। दूसरा सबकुछ टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट है! ऑल दीज़ रिलेटिव्स आर टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट्स!

सिर्फ आत्मा अकेला ही परमानेन्ट है। सनातन वस्तु में चित्त स्थिर हो गया, फिर वह भटकता नहीं है और तब उसकी मुक्ति होती है। मंत्रों

के जाप करें, उसमें चित्त कब तक रहेगा? जब तक पुलिसवाला नहीं आया तब तक। पुलिसवाला आया कि जप भी खत्म हो जाएगा और चित्त भी खत्म हो जाएगा। इसलिए वह टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट हैं। रिलीफ़ देता है, शांति देने में मदद करता है, परन्तु हमेशा के लिए काम नहीं करता। इस जपयोग की ज़रूरत है ज़रूर, परन्तु जब तक सनातन वस्तु नहीं मिले, तब तक। जो चित्त सनातन में मिल गया, वह शुद्ध चित्त हो गया, और शुद्धात्मा हो गया, तब विदेही हो गया। और विदेही हो गया अर्थात् मुक्ति हो गई। यानी विदेही होने की ज़रूरत है। ये तो देही कहलाते हैं। 'मैं चंदूभाई हूँ' तब से ही भ्रांति। 'ज्ञानी पुरुष' हमारी नींद उड़ा देते हैं। पूरा जगत् खुली आँखों से सो रहा है, सोना अर्थात् 'मैं यह कर रहा हूँ', 'मैं कर्त्ता हूँ' ऐसा भान रहता है। इस वर्ल्ड में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं जन्मा है कि जिसे संडास जाने की स्वतंत्र शक्ति हो और खुद की जो शक्ति है, उसे खुद जानता नहीं है। खुद की शक्ति स्वक्षेत्र में है। खुद की शक्ति क्षेत्रज्ञ है। वह क्षेत्रज्ञ शक्ति उत्पन्न हो गई तो काम हो गया। क्षेत्रज्ञ संपूर्ण शक्ति है। बाकी सब भ्रांति है।

यह जपयज्ञ बहुत सुंदर साधन है, परन्तु जब तक निष्पक्षपाती भाव उत्पन्न नहीं होगा तब तक के लिए वह साधन है। वह साध्य वस्तु नहीं है। साध्य क्षेत्रज्ञ है। खुद का स्वभाव क्षेत्रज्ञ है। वैसा स्वभाव उत्पन्न हो जाए, वह साध्य है।

जब तक पक्ष में पड़ा है, तब तक भगवान नहीं मिलेंगे। कोई वैष्णव पक्ष में, कोई शिव पक्ष में, कोई मुस्लिम पक्ष में, कोई जैन पक्ष में है, तब तक भगवान कभी भी नहीं मिलेंगे। यह नियम ही है। भगवान का नियम ऐसा है कि पक्ष में पड़े हुए के साथ मिलना नहीं हैं। भगवान खुद ही निष्पक्षपाती हैं। वैसा निष्पक्षपाती भाव उत्पन्न होगा तब वह बात समझ में आएगी। पक्ष में पड़ा हुआ और संसार में पड़ा हुआ, उन दोनों में फर्क क्या है?

आड़ाईयाँ

प्रश्नकर्ता : *आड़ाई* (अहंकार का टेढ़ापन) किसे कहते हैं?

दादाश्री : अज्ञानता में खुद की भूल हो गई हो, उसका खुद को पता चल जाए कि यह भूल हो गई है, फिर भी दूसरा कोई पूछे कि ऐसा क्यों किया, तो ऐसे कहता है कि ऐसा ही करने जैसा था। इतना अधिक आड़ा होता है कि पूछो मत। लोग कहते भी हैं कि आप तो आड़े हो। लोग ऐसा कहते हैं या नहीं कहते कि 'आप आड़ा बोलते हो?'

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : वही सारी *आड़ाई* हैं। भूल की खबर नहीं हो और उसे ढँके, वह बात अलग है। खबर हो और ढँके वह सबसे बड़ी *आड़ाई*। दूसरी *आड़ाई* वह कि रात को किसीके साथ हमारा झगड़ा हो गया हो और सुबह वह चाय देने आए तो कहे, 'मुझे तेरी चाय नहीं चाहिए और कुछ भी नहीं चाहिए।' वापिस आड़ा होता है। अरे, रात की बात रात को गई। कल शनिवार था, आज तो रविवार है। परन्तु शनिवार की बात रविवार को खींच लाता है। शनिवार की बात शनिवार में गई। रविवार की बात फिर से नई।

प्रश्नकर्ता : शनिवार की बात रविवार तक रही यानी उसका जो तंत रहा उस *आड़ाई* को तोड़ने का रास्ता क्या है?

दादाश्री : *आड़ाई* को तोड़ने की ज़रूरत नहीं है। हमें दादा की आज्ञा पालनी है। 'व्यवस्थित' को जाना तो कुछ बोलने-करने का रहा ही नहीं। 'व्यवस्थित' का अर्थ क्या? हमारी उसके साथ तकरार, झगड़ा कुछ भी नहीं रहा, वह 'व्यवस्थित'। 'व्यवस्थित' अर्थात् 'व्यवस्थित'! 'व्यवस्थित' को पूरा-पूरा समझना पड़ेगा और इस जगत् में औरों की तो भूल है ही नहीं। जितनी भूलें हैं वे सभी खुद की ही भूलों का परिणाम है। नहीं तो जेब काटनेवाला इतने लोगों में से किसीको नहीं मिला और मुझे किस तरह मिल गया? हमारी भूल के बिना मिलेगा नहीं।

दो प्रकार के इनाम हैं। एक तो लॉटरी में लाख रुपये का इनाम आए वह इनाम है, और सिर्फ हमारी ही जेब कट गई, वह भी इनाम है। सभी 'व्यवस्थित' है।

आत्मा - एक या प्रत्येक?

ब्रह्मस्वरूप हुआ कब कहलाता है कि किसी प्रकार का मतभेद नहीं रहा। पहले ब्रह्मस्वरूप का दरवाज़ा आता है। ये सभी मत वहाँ पर मिल जाते हैं। वहाँ बड़ा दरवाज़ा है। ब्रह्मस्वरूप हुआ किसे कहते हैं कि जिसकी वाणी मत वाली नहीं होती, गच्छवाली नहीं होती, सिर्फ आत्मा संबंधी वाणी ही होती है, जुदाई नहीं होती। वह ब्रह्मस्वरूप हुए कहलाते हैं। ब्रह्मस्वरूप होने के बाद तो आत्मा, परमात्मा ही है। वहाँ शुद्धात्मा की बात ही क्या करनी?

प्रश्नकर्ता : ब्रह्मस्वरूप एक है या अनेक भासित होते हैं?

दादाश्री : एक और अनेक दोनों हैं। कुछ अपेक्षा से एक है और कुछ अपेक्षा से अनेक है। वह तो ब्रह्मस्वरूप की बात है। ब्रह्मस्वरूप की आप शुद्धात्मा के साथ तुलना करते हो? वास्तव में आत्मा प्रत्येक है। यानी कि जो आत्मा वहाँ मोक्ष में गए, उन्हें मोक्ष का सुख बरतता है, और जो बँधे हुए हैं, उन्हें बंधन का सुख बरतता है। आत्मा यदि एक होता न तो वहाँवाले को मोक्ष का सुख और यहाँवाले को भी मोक्ष का सुख बरतता! इसलिए आत्मा प्रत्येक है, अलग-अलग हैं। और वहाँ पर भी अलग-अलग हैं। वहाँ एक ही होता न तो वहाँ जाकर हमें क्या फायदा? हमारी सारी मिल्कियत उन्हें दे दें? वहाँ सिद्धगति में जाकर तो खुद के स्वयं-सुख में रहना है। वहाँ जाकर एक हो जाना होता, उससे तो यहाँ क्या बुरा है? पत्नी पकौड़ी-वकौड़ी बनाकर तो खिलाती है! बहुत हुआ तो पत्नी झिड़केगी उतना ही न? दूसरा यहाँ क्या दुःख है?

गलन का रहस्य

'ज्ञानी पुरुष' क्या कहना चाहते हैं कि यह खाते हैं, पीते हैं, वह सब *गलन* है। जगत् उसे *पूरण* समझता है, क्योंकि जगत् को इन्द्रियज्ञान से जो दिखता है, उसे सत्य मानता है और वह यथार्थ सत्य से भिन्न है। *पूरण* कुछ अंश तक आपके हाथ में है, सर्वांश रूप से नहीं। स्वरूपज्ञान मिले तो खुद स्वसत्ता में आता है, नहीं तो नहीं आता। या फिर मतिज्ञान

मिला हो, तब भी उतनी स्वसत्ता प्राप्त होती है और मतिज्ञान भी स्वसत्ता का आधार है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, वे सब भी स्वसत्ता के आधार हैं।

पैसे कमाए, उसे जगत् *पूरण* कहता है और नुकसान जाए या खर्च हो जाए, तब *गलन* हो गया, कहते हैं। वास्तव में कमाया या खर्च किया दोनों *गलन* हैं, और फिर 'व्यवस्थित' के अधीन है। अब यह जगत् को किस तरह समझ में आए? यदि 'व्यवस्थित' की सत्ता समझ जाए तो खुद बिल्कुल मुक्त हो जाए। फिर खुद के स्वरूप में ही रह सकेगा। इतनी बात आप जान लो, तब फिर आपको परेशानी नहीं रहेगी न! आप यह बात भूलोगे नहीं, और जगत् के लोगों को सिखाते रहें, फिर भी भूल जाएँगे। क्योंकि वे कषाय सहित है। कषाय सहितवाले के काबू में कुछ भी नहीं रहता। आपको 'ज्ञान' देते हैं फिर आपको किताब पढ़ने को कब कहा है? यह 'ज्ञान' तो मौखिक दिया हुआ है। किताब या शास्त्र कुछ भी नहीं पढ़ना है, फिर भी प्रमाण में वही का वही ज्ञान आपके पास रहता है! किताब का याद नहीं रहता, मौखिक दिया हुआ याद रहेगा। क्योंकि उसमें 'ज्ञानी पुरुष' का वचनबल होता है। पुस्तक में पढ़ने जाएँ तो वह जड़ हो जाएगा फिर से!

इसलिए जगत् पूरा *गलन* स्वरूप में है और वह भी फिर 'व्यवस्थित' भाव से है। ये मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार सबकुछ 'व्यवस्थित' के ताबे में है। उसके ताबे में हो फिर आपको उसका रक्षण करने की ज़रूरत नहीं है न? आपको तो कुछ भी करने को नहीं रहा न? सिर्फ 'देखते' रहना है कि 'व्यवस्थित' क्या कर रहा है, वह! हमारी यह 'व्यवस्थित' की खोज बहुत एक्ज़ेक्ट है। 'पोइन्ट टु पोइन्ट' तक एक्ज़ेक्ट है। इसीलिए तो हम इसे *गलन* कहते हैं, तो आपको आपके 'ज्ञान' में रहने के लिए जैसे है वैसे, ये सब स्पष्टीकरण देते हैं। इसीलिए तो यह 'अक्रम विज्ञान' प्रकट करना पड़ा है!

जिसे लोग उदयकर्म कहते हैं, वह सारा *गलन* है। उसमें *पूरण* कुछ भी नहीं है। ये पाँचों इन्द्रियाँ उदय के अधीन है। ये पाँचों इन्द्रियाँ ही उदय के अधीन हैं, वहाँ फिर इन्द्रियों के कर्म तो उदय के अधीन ही होंगे न?

पाँच इन्द्रियों की क्षयोपक्षम शक्ति उदय के अधीन है। फिर इन्द्रियाँ जो देखें–जानें उसमें नया कहाँ से होगा? यह बात समझ में आए ऐसी है या नहीं? यहाँ पर समझ जाते हैं, परन्तु मेरी अनुपस्थिति में तो फिर से आवरण आ जाता है। हमारी उपस्थिति में आपके सब आवरण खुल जाते हैं, और हमारा 'ज्ञान' लेने के बाद तो आवरण हमेशा के लिए हट जाते हैं!

कर्मबंधन किससे होता है?

'मैं चंदूलाल हूँ', 'मैं आचार्य महाराज हूँ' वही कर्मबंध का मुख्य कारण है और 'यह मेरा है', वह 'सेकन्डरी' कारण है। कॉज़ेज़ चार्ज रूप से होते हैं। जहाँ–जहाँ 'मैं और मेरा' लगाया, वहाँ पर उतने ही कॉज़ेज़ होते हैं। और कोई कॉज़ेज़ नहीं होते हैं। चार्ज को *पूरण* कहा जाता है और उसका जो डिस्चार्ज होता है, वह सारा ही *गलन* स्वरूप है।

बात को सिर्फ समझनी ही है। यह विज्ञान है। विज्ञान के अंकुर फूटें तो विज्ञान में सबकुछ दिखता है। विज्ञान में क्या नहीं दिखता? इसलिए बात को समझो। कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है। विज्ञान में करने के लिए कुछ रखा ही नहीं। यदि 'करे' न तो वहाँ समकित नहीं होता! कुछ भी 'करे' तो वहाँ समकित प्राप्त नहीं होता!!

विचारों में निर्तन्मयता

प्रश्नकर्ता : यदि विचार सताते हों और चिंता करवाते हों, उन्हें किस तरह रोकें?

दादाश्री : सोचना, वह किसका धर्म है?

वह आत्मा का धर्म नहीं है, मन का धर्म है। आपने तय किया हो कि ये सब गालियाँ दे रहे हैं वह कुछ भी मुझे सुनना नहीं है, फिर भी कान का स्वभाव सुन लेने का है। वह सुने बगैर रहेगा ही नहीं। वैसा ही मन का स्वभाव है। हमें पसंद नहीं हों, फिर भी भीतर वे विचार आते हैं। वह मन का स्वाभाविक धर्म है। विचार ज्ञेय हैं और 'आप' ज्ञाता हैं। इसलिए जो विचार आते हैं उन्हें 'आपको' देखते ही रहना है, निरीक्षण

ही करते रहना है। वे अच्छे हैं या बुरे हैं, उसका अभिप्राय आपको नहीं देना है। चाहे कैसे भी बुरे विचार आएँ, उनमें हर्ज नहीं है। जिस भाव से पूर्वबंध पड़े हुए हैं वैसे भाव से कर्म*निर्जरा* होती है। उसे हमें देखते रहना है कि ऐसा बंध पड़ा हुआ है, उसकी *निर्जरा* हो रही है। अपना यह 'ज्ञान' *संवर*वाला है इसलिए नया कर्म नहीं बंधता। विचारों में तन्मयाकार हो जाएँ तो कर्म बँधते हैं।

प्रश्नकर्ता : इन विचारों का परिणाम क्या आएगा?

दादाश्री : परिणाम 'व्यवस्थित' को सौंप दिया है। हमें कुछ भी लेना-देना नहीं है। हमें तो आराम से गाड़ी में बैठे रहना है। मन कहे, 'गाड़ी आगे टकरा जाएगी तो?' उसे हमें देखते ही रहना है, बस। उसका परिणाम 'व्यवस्थित' को सौंपकर हमें आराम से बैठे रहना है।

प्रश्नकर्ता : इतना अधिक सरल नहीं है न यह?

दादाश्री : सरल है। जब से निश्चित करें तब से रहा जा सकता है। क्योंकि 'व्यवस्थित' के ताबे में है। जो दूसरे के ताबे में हो, उसमें हम हाथ डालने जाएँ तो मूर्ख बनेंगे उल्टा। आपके ताबे में तो इतना ही है, 'देखना और जानना' कि हक़ीक़त में क्या हो रहा है, कुछ भी उल्टा-सीधा करना होगा, वह 'व्यवस्थित' करेगा। वास्तव में 'व्यवस्थित' ऐसा नहीं होता है कि कुछ बिगड़े। मनुष्य सत्तर वर्ष की उम्र में मरता है, परन्तु उससे पहले तो 'मर गया, मर गया' ऐसा बेकार ही चिल्लाता रहता है। और भय से त्रस्त रहता है। जगत् ऐसे भयभीत रहने जैसा है ही नहीं। मन हमें भी दिखाता है कि 'आगे एक्सिडेन्ट हो जाएगा तो?' तो हम कहते हैं कि तूने कहा मैंने उसे नोट कर लिया। फिर वह दूसरी बात करता है। मन को ऐसा नहीं है कि पिछली बात को ही पकड़कर रखे। मन के साथ तन्मयाकार नहीं होना है। तन्मयाकार होने से तो पूरा जगत् उत्पन्न हुआ है। मन के भाव सारे डिस्चार्ज हैं। उन डिस्चार्ज भावों में यदि हम कभी तन्मयाकार हो जाएँ तो चार्जभाव उत्पन्न होते हैं। हमें एलिवेशन या डिप्रेशन सिर पर नहीं लेना है। कुछ भी होनेवाला नहीं है, कुछ भी बिगड़ता नहीं है। मैं क्षणभर के लिए

भी संसार में नहीं रहता हूँ, फिर भी कुछ बिगड़ता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् भय नहीं रखें?

दादाश्री : भय होता ही नहीं 'हमलोगों' को! हम 'शुद्धात्मा', इसलिए 'हमें' कोई देख नहीं सकता, नुकसान नहीं कर सकता, मार नहीं सकता, कोई नाम भी नहीं दे सकता! ये तो खुद के कल्पित डर से जगत् सर्जित हो गया है। किसीकी बीच में दख़ल नहीं है। और 'चंदूभाई' ज़रा नरम हो गए हों तो हम उन्हें दर्पण के सामने खड़ा रखकर ऐसे कंधा थपथपाकर कहें कि "हम हैं न आपके साथ! पहले तो अकेले थे, उलझन में पड़ जाते थे। किसीसे कह नहीं सकते थे। अब तो साथ में ही हैं। घबराते क्यों हो? हम 'भगवान' हैं और आप 'चंदूभाई' हो। इसलिए घबराना मत।" यदि चंदूभाई बहुत एलिवेट हो रहे हों तो उन्हें कहना 'हमारी सत्ता के कारण आपका इतना रौब पड़ता है।' अर्थात् हमें होम डिपार्टमेन्ट में बैठे–बैठे फ़ॉरेन का सब निपटाते रहना है। यह निर्लेप 'ज्ञान' है, कुछ भी स्पर्श नहीं कर सके, ऐसा है!

मन के स्वभाव की सभी हक़ीक़त बारीकी से समझने की ज़रूरत है। सभी चाबियाँ जाननी हैं। उदाहरण के रूप में, पुलिसवाला चक्कर लगाता रहे, यानी क्या आप पर धावा बोलनेवाला है? 'आप' कहो, 'नहीं', वैसा नहीं है। पुलिसवाला आपके लिए नई जगह बना रहा है। वह अपना हित कर रहा है, ऐसा समझें, या यह पुलिसवाला हमारा नुकसान करने आया है ऐसा समझें?

मन मेस्क्युलाइन जेन्डर (पुल्लिंग) नहीं है, फेमिनाइन जेन्डर (स्त्रीलिंग) नहीं है, वह न्यूट्रल है। इसलिए घबराने का कोई कारण नहीं है। आपको 'ज्ञान' की जागृति रखनी है कि हमें दादा ने कहा है कि हम ज्ञाता–दृष्टा हैं। भले ही शोर मचाता हो, जितना मचाना हो उतना मचाए। उस घड़ी हमें ज़रा स्थिरता पकड़ लेनी चाहिए।

गो टु दादा!

और बहुत दुःख आ पड़े, तब आपको कहना चाहिए कि जाओ 'दादा' के पास।

प्रश्नकर्ता : परन्तु दादा, इस तरह हमारा दुःख आपको सौंपा जा सकता है?

दादाश्री : हाँ, हाँ। दादा को ही सबकुछ दे देना और कहना कि 'जा, दादा के पास। यहाँ क्या है? इधर क्या है? सब दे दिया दादा को। अब इधर क्यों आया?'

प्रश्नकर्ता : सुख भी दे देना है?

दादाश्री : नहीं, सुख नहीं। सुख आपके पास रखना है। मुझे सुख का शौक नहीं है, इसलिए आपके पास रखना। आपसे दुःख यदि सहन नहीं हो तो मेरे पास भेज देना। दो-पाँच बार दुःख का अपमान करो कि 'इधर क्यों आया है? दादा को दे दिया है।' तब फिर वह खड़ा नहीं रहेगा। इस *पुद्‌गल* का गुण कैसा है कि अपमान हो तो खड़ा नहीं रहता।

जो 'दादा भगवान' हैं, वे अचिंत्य चिंतामणि हैं। जैसा चिंतन करे वैसा हो जाता है। मुश्किल में उनका चिंतन करो तो मुश्किलें सब चली जाती हैं। जैसा चिंतन वैसा फल देते हैं। फिर हमें किसलिए घबराने की ज़रूरत है?

सद्‌वर्तन की नापसंदगी

प्रश्नकर्ता : कईंबार कोई अच्छा व्यवहार करे फिर भी हमें पसंद नहीं आता।

दादाश्री : पसंद आने का हिसाब चुक गया, फिर पसंद नहीं आता। पसंद हो तो सबकुछ अच्छा लगता है और नहीं पसंद हो तो सबकुछ बुरा लगता है। हमें नापसंद पर द्वेष नहीं करना है।

प्रश्नकर्ता : राग-द्वेष नहीं होते, परन्तु एक बार अभाव हो गया फिर किसी भी तरह से भाव होता ही नहीं!

दादाश्री : तू ऐसा रंग देता रहे कि बहुत अच्छे मनुष्य है, फिर भी नहीं चढ़ेगा। हिसाब चुक गया। यह घर बिक जाने के बाद फिर उस पर

भाव रहता है?

प्रश्नकर्ता : ना।

दादाश्री : और बिकने से पहले? कुछ ऊँचा-नीचा हुआ हो फिर भी मन में रहा करता है। हिसाब चुक गया कि चलता बना।

संसारानुगामी बुद्धि

मत में पड़ा हुआ हो उसके संस्कार एकदम से जाते नहीं हैं। वे सभी संस्कार सामने आएँगे, इसलिए पहले से आपको सावधान कर देता हूँ। यह अलौकिक विज्ञान है। इसकी सभी बातें अलौकिक हैं। यहाँ लौकिक है ही नहीं! लौकिक अर्थात् मताग्रही। वह फिर दिगंबरी हो या श्वेतांबरी हो, स्थानकवासी हो या देरावासी हो, तेरापंथी-मेरापंथी, अलग-अलग पंथवाले, वैष्णव धर्म हो, शिवधर्म हो या मुस्लिम धर्म हो। सभी लौकिक धर्म कहलाते हैं। वे कुछ गलत नहीं हैं। अच्छा किया हो तो पुण्य बँधता है और उससे बाद में फिर घोड़ागाड़ी, मोटर, बंगला सबकुछ मिलता है और 'इस' अलौकिक धर्म से मोक्ष मिलता है।

प्रश्नकर्ता : आपकी छाया में आने के बाद यदि बुद्धि छल करे तो उसके जैसा अभागा जीव कोई नहीं है।

दादाश्री : नहीं, फिर भी छलती है। बहुत होशियार को भी छलती है। इसलिए आप पहचानकर रखो। बुद्धि कोई भी सलाह देने आए तब उसे कहना कि 'बहन, तू तेरे पीहर जा। अब मुझे तुझसे काम नहीं है। तेरी सलाह भी नहीं सुननी है।' मन की सलाह सुनने में हर्ज नहीं है, परन्तु सिर्फ बुद्धि की ही सलाह नहीं सुननी चाहिए।

बुद्धि संसार से बाहर नहीं निकलने देती। मोक्ष में नहीं जाने देती, वह बुद्धि है! बुद्धि फायदा-नुकसान दिखाती है। ऐसा हो जाएगा, वैसा हो जाएगा। फिर ऊपर से वह मताग्रहवाली है। *अभिग्रह* (नियम पालन करने का एक प्रकार का आग्रह) किसका? मत का। आत्मा का *अभिग्रह* करने के बदले मत का *अभिग्रह* किया। बोलो, अब वह कब और कौन-सी

जगह पर पहुँचेगा? लाख जन्म हो जाएँ, फिर भी कुछ होगा नहीं। अंतरदाह जलना बंद नहीं होगा। और 'ज्ञानी पुरुष' के पास अंतरदाह हमेशा के लिए मिट ही जाता है।

जितनी बुद्धि बढ़ती है, उतना दाह बढ़ता जाता है। बुद्धि संसारानुगामी है। संसार में हितकारी है। परन्तु मोक्ष में जाने में बाधा डालती है। मन तो सिर्फ सोचता ही रहता है। जहाँ डिसीज़न नहीं होता, वह मन। अन्‌डिसाइडेड विचार, वह मन और डिसाइडेड विचार, वह बुद्धि! यहाँ बैठे-बैठे खो जाए तो समझना कि चित्त भटकने गया है। 'ज्ञानी पुरुष' के पास बैठें, तब बुद्धि सम्यक् होती है। तब वह बुद्धि सच्ची। सम्यक् बुद्धि कैसी होती है? मत नहीं होता, गच्छ नहीं होता, जुदाई नहीं होती। दूसरा कोई झंझट नहीं होता, और गच्छ-मतवाली बुद्धि मिथ्याबुद्धि कहलाती है। 'यह हमारा और यह आपका' ऐसे जुदाई करवाती है!

आउटर बुद्धि-इनर बुद्धि

'आउटर' बुद्धि (बर्हिबुद्धि) 'मिकेनिकल' है और 'इनर' बुद्धि (आंतर-बुद्धि), वह स्वतंत्र बनानेवाली है। वह बुद्धि भी मिकेनिकल (भौतिक) है।

प्रश्नकर्ता : स्वतंत्र अर्थात्?

दादाश्री : स्वतंत्र अर्थात् इस वर्ल्ड में कोई हमारा *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) नहीं रहे। 'नो बॉस।' भगवान भी *ऊपरी* नहीं, ऐसा चाहिए! ये *ऊपरीपन* किस तरह पुसाएँ? एक भी *ऊपरी* रहे, तब तक परवशता कहलाती है! परवशता किस तरह पुसाए? वह जब चाहे झिड़के, उसके लिए क्या कहा जा सकता है? इसलिए *ऊपरी* नहीं चाहिए। सारे *ऊपरी* तेरी नासमझी से हैं। वही समझाने के लिए मैं आया हूँ। मेरा कोई *ऊपरी* नहीं रहा। इसलिए मैं ऐसा कहना चाहता हूँ कि आपका भी कोई *ऊपरी* नहीं है, इसलिए बात को समझो!

प्रश्नकर्ता : 'मिकेनिकल' बुद्धि से मनुष्य क्या प्राप्ति कर सकता है?

दादाश्री : 'मिकेनिकल' बुद्धि से संसार की ये सारी बाह्य चीज़ें उसे मिलती हैं।

प्रश्नकर्ता : यदि 'मिकेनिकल' बुद्धि हो तो सभी को समान मात्रा में ही बाह्य वस्तुएँ मिलनी चाहिए न?

दादाश्री : और फिर, हर एक में मिकेनिकल बुद्धि अलग-अलग मात्रा में होती है। एक समान होती ही नहीं। इन आफ्रिकन को उनके 'डेवलपमेन्ट' के अनुसार बुद्धि होती है, यानी कि हर एक मनुष्य का 'डेवलपमेन्ट' अलग है।

प्रश्नकर्ता : इसमें 'मिकेनिकल' कहाँ आया?

दादाश्री : यह तू खुद अपने आप को जो मानता है, वह सभी 'मिकेनिकल' है। तू खुद ही 'मिकेनिकल' है। जब तक तेरे 'सेल्फ' को नहीं जानेगा तब तक 'मिकेनिकल' है, परवशता है। यह शरीर भी 'मिकेनिकल' है और 'मिकेनिकल' का तो कल सुबह एकाध 'पार्ट' (हिस्सा) घिस गया कि खत्म! 'मिकेनिकल' अर्थात् परवशता। वास्तव में, तू खुद इन मिकेनिकल वस्तुओं से अलग है।

हमें रोज़ पेट में भोजन डालना पड़ता है न? यदि 'मिकेनिकल' नहीं होता न, तो एक ही बार खाया तो काम पूरा हो जाता। एक बार खाने के बाद फिर खाना नहीं पड़ता। यह तो *पूरण* करते हैं और वापिस *गलन* होता है। सबकुछ 'मिकेनिकल' है। तू 'खुद' इससे अलग है। तू खुद इस 'मिकेनिकल' को 'जाननेवाला' है। यह मशीनरी एक प्रयोग है और तू प्रयोगी है। इन प्रयोगों का तू 'जानकार' है कि यह क्या प्रयोग हो रहा है, 'चंदूलाल' में क्या-क्या बदलाव हो रहा है! उसके बदले तू कहता है कि, 'मैं चंदूलाल हूँ', तो इतनी बड़ी भूल किस तरह पुसाए?

प्रश्नकर्ता : बुद्धि 'मिकेनिकल' कैसे हुई? जानवरों में बुद्धि होती है या नहीं, कम या अधिक मात्रा में?

दादाश्री : जानवरों में अंत:करण सीमित है-'लिमिटेड' है और

मनुष्यों का 'अन्लिमिटेड' है। जानवरों का सीमित होने के कारण उनमें 'डेवलपमेन्ट' अधिक नहीं हो सकता। उनका मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार एक सीमा में है। इस गाय को बरतन दिखाएँ तो वह दौड़ती-दौड़ती आती है, उतनी उसे समझ है। साथ-साथ उसे दूसरी कौन-सी समझ है? यदि हम लकड़ी लेकर निकले हों तो वह पास में नहीं आती। इसके अलावा उसे नींद की समझ है। उन्हें मैथुन है। भूख लगे तब खाने की समझ है। क्या खाना चाहिए और क्या नहीं खाना चाहिए, उसकी भी समझ है, जो कि मनुष्यों में नहीं है! ये सभी जानवर सूंघकर फिर भोजन खाते हैं। सिर्फ ये मनुष्य ही कुदरत के बहुत गुनहगार माने जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : 'मिकेनिकल' बुद्धि मनुष्य को कहाँ तक का ज्ञान देती है?

दादाश्री : सर्वनाश करे तब तक! मिकेनिकल बुद्धि 'अबव नॉर्मल' हो जाए, तो वह सर्वनाश लाएगी। यह जगत् सर्वनाश की ओर जा रहा है। 'मिकेनिकल' बुद्धि ही 'अबव नॉर्मल' कर रही है। 'आउटर' बुद्धि की 'लिमिट' इतनी ही है कि जितनी हमारी ज़रूरत हो, उसके आधार पर ही बुद्धि का उपयोग करने की ज़रूरत है। उसमें 'एक्सेस' करने जाए, 'यह क्या और वह क्या?' वह नुकसान करती है।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य खुद का रक्षण करे, वह नेसेसिटी है या नहीं?

दादाश्री : करते ही हैं न सभी! कोई जान-बूझकर मरता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य को खुद का रक्षण करने के लिए 'एटोमिक न्युक्लियस' (अणुबम) की ज़रूरत पड़ती है न?

दादाश्री : ये 'अन्नेसेसरी प्रोब्लम' खड़ी करते हैं! 'फ़ॉरेन'में ऐसे 'डेवलपमेन्ट'वाले देश हैं, जहाँ सड़सठवें मील पर फ़ोन की व्यवस्था रखी होती है, फिर अड़सठ मील पर रखी होती है। अब लोग कहते हैं कि सड़सठवें मील के पहले फर्लांग पर हमारी गाड़ी में पंक्चर हो जाए तब हम क्या करेंगे? इसलिए वहाँ पर भी फोन रखो, ताकि हमें चलना नहीं पड़े।

प्रश्नकर्ता : यानी सुविधा है, उससे अधिक सुविधा चाहिए?

दादाश्री : सुविधा को असुविधा बना दिया है इन लोगों ने। 'अबव नॉर्मल' हुआ कि असुविधा हो गई?

प्रश्नकर्ता : रक्षण करने के लिए यदि मनुष्य बुद्धि का उपयोग करे तो वह नॉर्मल कहलाएगा न? ये एटम बम बनाते हैं, वह रक्षण के लिए ही न?

दादाश्री : वह रक्षण नहीं कहलाता। सामनेवाला व्यक्ति भी बनाए तो क्या होगा? फिर कितना अधिक भय रहेगा? यह तो सामनेवाले मनुष्य को दबाने के लिए किया है। ऐसा रक्षण करने की ज़रूरत नहीं है। कुदरत इसका रक्षण कर ही रही है। बिना काम के ऐसे तूफ़ान करने की ज़रूरत ही नहीं है। ऐसे साधन ही नहीं बनाने चाहिए। मुबंई के तालाब में ज़हर डाल दें तो सभी लोग मर जाएँगे, वह कुछ बुद्धि नहीं कहलाती!

प्रश्नकर्ता : वह दुर्बुद्धि कहलाती है?

दादाश्री : वह दुर्बुद्धि भी नहीं कहलाती। वह तो भयंकर खाना-खराबी की कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : मुझे 'मिकेनिकल' बुद्धि की 'लिमिट' जाननी है। 'इनर' बुद्धि की शुरूआत और उसकी 'लिमिट' जाननी है।

दादाश्री : जानकर तू क्या करेगा?

प्रश्नकर्ता : मुझमें वह कितनी है, वह मुझे जानना है।

दादाश्री : यह तेरी सारी 'आउटर' (बाह्य) बुद्धि ही है। 'इनर' (आंतरिक) बुद्धि होती तो इस तरफ जल्दी झुक जाता, मेरे साथ तुरन्त ही 'एडजस्ट' हो जाता। तू खुद ही कहता कि "मेरी 'सेफसाइड' कर दीजिए। मेरी स्वतंत्रता के लिए कुछ कर दीजिए। यह परवशता मुझे पसंद नहीं है।"

परवशता

यह निरी परवशता! 'निरंतर परवशता'! जानवर परवश और मनुष्य

भी परवश। वह कैसे पुसाएगा? सिर दुःखे तो भी उपाधि। पैर दुखते हों, आँखें दुखती हों, दांत दुखता हो, तब भी उपाधि। ऐसे भयंकर *अशाता* में कैसे जीएँ?

यह परवशता थोड़ी बहुत समझ में आती है तुझे?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : अनुभव में आई हुई है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तुझे वह पसंद है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : पसंद नहीं हो तो ऐसा क्यों नहीं पूछता कि परवशता किस तरह जाएगी?

प्रश्नकर्ता : वह तो खुद मनुष्य अपने आप उसका 'सोल्युशन' निकाल सकता है।

दादाश्री : कुछ हद तक 'सोल्युशन' निकाल सकता है।

जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है वैसे-वैसे परवशता बढ़ती है, और अंत में मरते समय तो परवशता की सीमा नहीं रहती। बुढ़ापे में दांत दुःख देते है, शरीर दुःख देता है, बच्चे दुःख देते हैं, भाई दुःख देते हैं। बच्चे कहते हैं, 'आप बैठे रहिए अब, इतना बोलते मत रहो!' कितनी अधिक परवशता?

प्रश्नकर्ता : परवशता और चिंता, दोनों साथ-साथ नहीं जाते?

दादाश्री : चिंता, तो 'अबव नॉर्मल' 'इगोइज़म' है और परवशता तो लाचारी है। 'अबव नॉर्मल' 'इगोइज़म' हो तो चिंता होती है, नहीं तो नहीं होती। इस घर में रात को नींद किसे नहीं आती होगी? जिसे 'इगोइज़म' अधिक है उसे।

प्रश्नकर्ता : 'इन संयोगों में मुझसे कुछ हो नहीं पाएगा', इसलिए चिंता होती है और उसका दूसरा 'स्टेप' परवशता है न?

दादाश्री : वह परवशता तो हमने खड़ी की हैं। एक परवशता तो अपने आप खड़ी हो जाती है और वह है बुढ़ापे की। परवशता और चिंता का कोई लेना-देना नहीं है।

कोई भी वस्तु बिगड़े तो चिंता होती है। परिणाम को लेकर चिंता होती है और परवशता तो लाचारी है। जगत् को परवशता पसंद नहीं है। परवशता ही निर्बलता है। निर्बलता जाए तो परवशता जाती है। निर्बलता हो तब तक परवशता नहीं जाती, क्योंकि हम सामनेवाले का नुकसान करें तो वह हमारा नुकसान करेगा। हम किसीका भी नुकसान नहीं करें, किसीके लिए भी खराब विचार नहीं करें, तब वह परवशता टूटेगी।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य को जीवन-यापन के लिए चिंता होती है इसलिए फिर परवशता आती ही है न?

दादाश्री : वह परवशता अलग है। वह खुद अपने जाल में घुस गया है। नहीं घुसना हो फिर भी कुदरती रूप से खड़ा हो जाता है सबकुछ। यह चूहा पिंजरे में कुछ देखे तो तब वह परवश तो नहीं है, परन्तु भोजन देखता है इसलिए लोभ के मारे अंदर घुसा तो फँसेगा। लेकिन वह परवशता कभी न कभी छूट जाएगी।

यह चिंता करने का फल क्या है? तो कहे, जानवरगति।

प्रश्नकर्ता : चिंता नहीं हो उसके लिए उपाय क्या है?

दादाश्री : वापिस लौटना। इगोइज़म हटाकर वापिस लौटना। या फिर 'इगोइज़म' तो बिल्कुल खत्म कर देना चाहिए। 'ज्ञानी पुरुष' हों तब, वे 'ज्ञान' दें तो इगोइज़म सारा खत्म हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : लाचारी क्या है?

दादाश्री : लाचार हुए मनुष्य से पूछें तो लाचारी समझ में आएगी।

या फिर बहुत उधार हो गया हो, वस्तुओं की मुश्किल पड़ती हो, वाइफ कहे कि 'वह चीज़ क्यों नहीं लाते?' पास में पैसे नहीं हों, तो निरी परवशता लगती है।

परवशता में से 'स्ववश' होने के लिए यह महावीर का विज्ञान है। और परवशता में से 'स्ववश' हो गए तो परवशता फिर स्पर्श ही नहीं करेगी।

प्रश्नकर्ता : आत्मा को परवशता नहीं होती है न?

दादाश्री : नहीं, आत्मा को परवशता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो शरीर लाचारी अनुभव करता है?

दादाश्री : नहीं, शरीर भी लाचारी अनुभव नहीं करता। अहंकार लाचारी अनुभव करता है।

आधार-आधारी

प्रश्नकर्ता : जो होना है, वह होता ही रहता है, चाहे कुछ भी करो।

दादाश्री : जो होना है वह होता ही रहता है ऐसा बोल ही नहीं सकते। कोई गालियाँ दे, उस घड़ी चिंता नहीं होती हो तो वह ज्ञान काम का है। तुझे चिंता तो हो जाती है। पूरे हिल जाते हो। निर्बलता खड़ी हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : चिंता किसे होती है? मुझे या मेरे आत्मा को?

दादाश्री : तुझे होती है।

प्रश्नकर्ता : यानी शरीर को होती है, ऐसा?

दादाश्री : तुझे खुद को, तू तेरा 'सेल्फ' जिसे मानता है, उसे होती है। 'शरीर मेरा है' ऐसा जो मानता है, उसे चिंता होती है।

प्रश्नकर्ता : 'मैं बोला, परन्तु उसमें मुझे कुछ लेना-देना नहीं है।' ऐसा मैं कह दूँ तो फिर चिंता का कोई प्रश्न ही नहीं है न?

दादाश्री : यदि तुझ पर इस संसार का असर नहीं होता तो हर्ज ही नहीं है। इस ज्ञान को समझने की ज़रूरत ही नहीं है। लेकिन तुझे किसी भी प्रकार से यह संसार 'इफेक्टिव' (असरवाला) लगता है? यह सब 'रिलेटिव' है। तुझे खुद को असर होता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : वह असर होता है, तब तक निर्बलता है। भयंकर निर्बलता! मनुष्य को असर होना ही नहीं चाहिए।

ये तो ऐसे बंगले, मोटरें सब साधन होते हैं फिर भी असर होता है, फिर यदि साधन टूट जाएँ तो क्या होगा? मनुष्य कल्पांत कर-करके ज़िन्दगी निकालता है! इसलिए आसपास क्या है, वह पहले से जान लिया हो तो फिर आप पर वह असर नहीं करेगा, परन्तु नहीं जानने के कारण हमें सबकुछ सिर पर लेना पड़ता है। रात को लोग दुःख सिर पर रखकर सो जाते हैं और नींद नहीं आती। जब शरीर थक जाता है, तब नींद आती है। इसे 'लाइफ' कैसे कहेंगे?

'तू' कौन है? किसके आधार पर 'तू' है? उसकी खबर नहीं है। 'यह किस आधार पर है' उसकी खबर तो होनी ही चाहिए न? आधार-आधारी का संबंध भी समझना चाहिए न कि हम किस आधार पर हैं? पुलिसवाले आ रहे हैं ऐसा कोई सिर्फ कह दे तो उनके आने से पहले तो खुद घबरा जाता है! इतनी अधिक निर्बलता क्यों होनी चाहिए? जगत् तो बहुत गहरा है। बहुत जन्मों से देखा हुआ है। परन्तु याद नहीं रहता न? इसलिए जानने जैसा जगत् है!

और, इस जगत् में क्या करने जैसा है और क्या नहीं करने जैसा, 'क्या जानने जैसा है और क्या नहीं जानने जैसा', इतना ही समझना है।

कर्त्ताभाव, वही कुसंग

खुद का दोष दिखने लगे, तब से समकित हुआ कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : उसमें नम्रता आ जाती है?

दादाश्री : नम्रता आए या नहीं आए, परन्तु समकित तब से माना जाता है जब से खुद के दोष दिखने लगें। नहीं तो खुद का एक भी दोष नहीं दिखता। 'मैं ही कर्त्ता हूँ' ऐसा रहता है!

हमारे 'ज्ञान' के लिए कर्त्ताभाव, वह कुसंग है। बल्कि उसका नशा चढ़ता है। जहाँ कर्त्तापद है वहाँ समकित भी नहीं है। समकित नहीं है, वहाँ मोक्ष की बात करनी गलत है, निरर्थक है!

जिसका निदिध्यासन करो...

प्रश्नकर्ता : दादा, आपके स्मरण और निदिध्यासन में कुछ फ़र्क है क्या?

दादाश्री : निदिध्यासन तो मुखारविंद सहित रहता है और स्मरण मुखारविंद के बिना रह सकता है। मुखारविंद सहित निदिध्यासन बहुत काम निकाल लेता है। 'दादा' 'एक्ज़ेक्ट' नहीं दिखें, उसमें हर्ज नहीं है। आँखें नहीं दिखें तब भी हर्ज नहीं है, परन्तु मूर्ति दिखनी चाहिए। जिनका निदिध्यासन करें, उस रूप हो जाते है। 'दादा' खुद स्वभाव के कर्त्ता हैं। दादा 'एक्ज़ेक्ट' दिखें, तो उस स्वरूप हो पाएँगे, आप भी स्वभाव के कर्त्ता बन जाएँगे! दादा का स्मरण रहे तब भी अच्छा और निदिध्यासन रहे तब भी अच्छा है।

प्रश्नकर्ता : सतत निदिध्यासन नहीं रहता।

दादाश्री : दादा के स्मरण में मन की चंचलता रहती है, चित्त की भी चंचलता होती है और निदिध्यासन में चंचलता नहीं रहती। निदिध्यासन में चित्त को वहाँ पर रहना पड़ेगा। चित्त हाज़िर हो तब तक ही काम चलेगा। मन की चंचलता का हर्ज नहीं है, परन्तु चित्त को वहाँ पर हाज़िर रहना ही पड़ेगा और जहाँ चित्त हाज़िर रहे, वहाँ मन को बैठे रहना पड़ेगा। फिर भी पूरा दिन दादा का स्मरण रहे तो बहुत हो गया। परन्तु साथ-साथ थोड़ा निदिध्यासन रहे तो अच्छा।

स्वप्न में तो दादा 'एक्ज़ेक्ट' दिखते हैं। जिन्हें भजते हैं, उन जैसे

बनते जाते हैं। जिनका निदिध्यासन करें, उनके जैसा हुआ जाता है। चित्त ठिकाने पर रहे तो निदिध्यासन हो सकता है।

अध्यात्म का वातावरण

प्रश्नकर्ता : कोई राजा-महाराजा के वहाँ या किसी अच्छी जगह पर जन्म ले, तो अध्यात्म में आगे बढ़ेगा न?

दादाश्री : हाँ। राजा-महाराजा के वहाँ जन्म ले और दूसरा यहाँ अच्छे घर में जन्म ले कि जहाँ पर, जहाँ जाए वहाँ इज़्ज़त से रखें। ससुराल में जाए तो वहाँ पर भी मान सहित रखें। जिसका बचपन से अपमान होता रहता है, वह मन में निश्चित करता है कि मुझे चाहे जिस तरह से इन लोगों के पास से मान लेना है। तब उसका ध्येय बदल गया और वह मान की तरफ़ चला जाता है। उसे यह मान का माल पुसाता है। वर्ना दूसरी भीख हो, उसे वह नहीं पुसाता।

इस हिन्दुस्तान में जन्म हुआ, वह अनंत जन्मों के आधार पर हुआ है। बाकी फ़ॉरेनवाले तो अध्यात्म में पुनर्जन्म समझते ही नहीं।

विकल्पों से संसार में कर्मबीज

यहाँ शीशमहल हो और वहाँ हम अकेले खड़े हों तो हमें डेढ़ सौ दिखेंगे! ऐसा है यह जगत्! विकल्प किया कि दिखता है। विकल्प के प्रतिस्पंदन आते हैं ये।

प्रश्नकर्ता : विकल्प के प्रतिस्पंदन आते हैं, तो फिर संकल्प का क्या परिणाम है?

दादाश्री : संकल्प का कुछ लेना-देना नहीं है। विकल्पों के ही प्रतिस्पंदन आते हैं। 'संकल्प' का अर्थ 'मेरा' हुआ। विकल्प करने के बाद कोई वस्तु हमारी हो जाती है। तब हम संकल्प करते हैं कि यह मेरी है। विकल्प से ही यह सब खड़ा हुआ है। अर्थात् संकल्प बाधक नहीं है, विकल्प ही बाधक है। निर्विकल्प सबकुछ मिटा देता है उसका। यह तो विकल्प है, इसलिए संकल्प खड़ा हुआ। निर्विकल्प हो जाए तो संकल्प

भी नहीं है, विकल्प भी नहीं है और कुछ भी नहीं है।

विकल्प तो 'मैं चंदूलाल हूँ' तब तक विकल्प ही हैं, फिर आचार्य महाराज हों या चाहे कोई हो। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा भान रहे तो निर्विकल्प कहलाता है। अब निर्विकल्प हो गए तो निर्विकल्प दशा रहती क्यों नहीं है? तब कहें कि पिछला उधार, पिछली कलमों का जो भंग किया हैं, उन कलमों के दावे चलेंगे।

'शुद्धात्मा' होने के बाद संकल्प और विकल्प दोनों गए। अब मन में से निकलते हैं, वे सभी ज्ञेय हैं। अब जब तक खुद विकल्पी है, तब तक वे ज्ञेय दिखते नहीं हैं। वह तो ऐसा कहता है कि, 'मुझे ही विचार आया है।' वर्ना स्वयं कल्प स्वरूप है। जैसा चिंतन करे, वैसा हो जाता है। स्वयं निर्विकल्प क्यों कहलाता है? तब कहें कि अज्ञानता में विकल्प किया था इसलिए 'ज्ञान' के बाद निर्विकल्प कहलाता है। वापिस लौटे इसलिए निर्विकल्प कहा गया।

एक मात्र स्वरूप की तरफ चिंतन मुड़ता नहीं है। वह मदिरा तो 'ज्ञानी पुरुष' उतारें, उसके बाद ही उसका कुछ हो सकता है।

शुभ के बड़े-बड़े विकल्प किए हों, तो वे भी फल देते हैं। किसीको मार डालने के भाव किए हों, तो वैसा फल आता है और दान देने के भाव किए हो तो वैसा फल आता है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है न कि जगत् 'व्यवस्थित' है, तो फिर उसे बदलने का विकल्प क्यों आता है?

दादाश्री : ये विकल्प तो पहले विकल्प किए हुए हैं, उनके फलस्वरूप आते हैं। बीज पड़े हों, तो उगेंगे ही न? फिर वापिस आप उसे उखाड़ नहीं दो, उगने दो तो फिर से उनके बीज डलते हैं। निर्विकल्प होने के बाद उसे उखाड़ देना है। 'समभाव से *निकाल*' करने लगा, उसे ही 'उखाड़ने लगे', ऐसा कहा जाता है।

जगत् तो बिल्कुल 'व्यवस्थित' है। भगवान ने क्यों नहीं बताया?

दुर्जन लोग दुरुपयोग करेंगे, जगत् उल्टे रास्ते चलेगा, इसलिए सच्ची बात नहीं कही। 'व्यवस्थित' के ज्ञान से आपको संकल्प-विकल्प नहीं होते। इस जगत् में कर्त्तापन मिटे, तब 'व्यवस्थित' समझ में आएगा। कर्त्तापन नहीं मिटे, तब तक 'व्यवस्थित' समझ में नहीं आता। खुद अकर्त्ता हो जाए, तब 'इसका कर्त्ता कौन है' वह समझ में आएगा। खुद कर्त्ता नहीं है, फिर भी कर्त्ता मानता है, तब यह समझ में कैसे आएगा?

प्रश्नकर्ता : खुद का कर्तृत्व तो छोड़ता नहीं है।

दादाश्री : हाँ। इसलिए दूसरे का कर्त्तापन होने ही नहीं देता न? वर्ना जगत् है तो व्यवस्थित, परन्तु कर्त्तापन के कारण कल्पना उत्पन्न होती ही है। अकर्त्ता हो गया, तब से ही हल आ गया। तब तक क्रोध-मान-माया-लोभ जाते नहीं हैं, भय जाता नहीं। अशुभ के कर्त्तापन में से छूटकर शुभ का कर्त्ता बना, फिर भी कर्त्ता है, इसलिए संकल्प-विकल्प हुए बगैर रहता ही नहीं है। और यह 'व्यवस्थित' समझ में नहीं आता, इसलिए 'मेरा अब क्या होगा' ऐसा विचार आता है।

विज्ञान द्वारा मुक्ति

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में जाने की भावना है, परन्तु उस रास्ते में खामी है तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : किस चीज़ की खामी है?

प्रश्नकर्ता : कर्म हैं न? कर्म तो करते ही रहते हैं।

दादाश्री : कर्म किससे बंधते हैं, ऐसा हमें जानना चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : अशुभ भाव से और शुभ भाव से।

दादाश्री : शुभ भाव भी न करे और अशुभ भाव भी न करे, उसे कर्म नहीं बंधते। शुद्ध भाव हों, उसे कर्म नहीं बंधते। अशुभ भाव से पाप बंधते हैं और शुभ भाव से पुण्य बंधते हैं। पुण्य का फल मीठा आता है और पाप का फल कड़वा आता है। गालियाँ दे, तब मुँह कड़वा हो जाता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : और माला पहनाएँ उस घड़ी? मीठा लगता है। शुभ का फल मीठा और अशुभ का फल कड़वा और शुद्ध का फल मोक्ष!

प्रश्नकर्ता : जीव मुक्ति कब पाता है?

दादाश्री : शुद्ध हो जाए तो मुक्ति पाता है। शुद्धता को कुछ भी स्पर्श ही नहीं करता। शुभ को स्पर्श करता है। यह शुभ का मार्ग ही नहीं है। यह शुद्ध का मार्ग है। यानी कि निर्लेप मार्ग है।

यह 'विज्ञान' है। 'विज्ञान' अर्थात् सब प्रकार से मुक्त करवा देता है। यदि शुद्ध हो गया, तो कुछ भी स्पर्श नहीं करेगा, और शुभ है तो अशुभ स्पर्श करेगा। अर्थात् शुभवाले को शुभ रास्ता लेना पड़ेगा। अर्थात् शुभमार्गी जो कुछ करते हैं, वह ठीक है, परन्तु यह तो शुद्ध का मार्ग है। सभी शुद्ध उपयोगी, इसलिए और कोई झंझट ही नहीं।

यह मार्ग अलग ही प्रकार का है। विज्ञान है यह। विज्ञान अर्थात् जिसे जानने से ही मुक्त हो जाते हैं। करना कुछ भी नहीं है। जानने से ही मुक्ति! यह बाहर है, वह ज्ञान है। ज्ञान अर्थात् जो क्रियाकारी नहीं होता और यह विज्ञान क्रियाकारी होता है। यह 'विज्ञान' प्राप्त होने के बाद अंदर आपमें क्रिया करता ही रहता है। शुद्ध क्रिया करता है। अशुद्धता उसे स्पर्श ही नहीं करती। यह विज्ञान अलग ही प्रकार का है। 'अक्रमविज्ञान' है!!

प्रश्नकर्ता : जिसे निष्काम कर्म कहा है, वह यह है?

दादाश्री : निष्कामकर्म अलग ही प्रकार का है। निष्काम कर्म तो एक प्रकार का रास्ता है। उसमें तो कर्त्तापद चाहिए। खुद कर्त्ता हो, तो निष्कामकर्म होता है। यहाँ कर्त्तापद ही नहीं है। यह तो शुद्ध पद है। जहाँ कर्त्तापद है वहाँ शुद्धपद नहीं है, शुभ पद है।

प्रश्नकर्ता : शुद्धता लाने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : करने जाओगे तो कर्म बँधेंगे। 'यहाँ पर' कहना कि हमें

यह चाहिए। करने से कर्म बँधते हैं। जो-जो करोगे, शुभ करोगे तो शुभ के कर्म बँधेंगे, अशुभ करोगे तो अशुभ के बँधेंगे और शुद्ध में तो कुछ है ही नहीं। 'ज्ञान' अपने आप ही क्रियाकारी है। खुद को कुछ भी करना नहीं पड़ता।

खुद महावीर जैसा ही आत्मा है, परन्तु भान नहीं हुआ है न? इस 'अक्रम विज्ञान' से वह भान होता है। जागृति बहुत बढ़ जाती है। चिंता बंद हो जाती है, मुक्त हुआ जाता है! संपूर्ण जागृति उत्पन्न होती है। यह 'केवळज्ञान' विज्ञान है। ऐसा-वैसा नहीं है। इसलिए अपना काम हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : आप जितने ज्ञानी हैं, उतना ज्ञान प्राप्त करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : उनके पास बैठना चाहिए, उनकी कृपा प्राप्त करनी चाहिए। बस, और कुछ नहीं करना है। 'ज्ञानी' की कृपा से ही सब होता है। कृपा से 'केवळज्ञान' होता है। करने जाओगे, तब तो कर्म बँधेंगे। क्योंकि 'आप कौन हो?' वह निश्चित नहीं हुआ है। 'आप कौन हो?' वह निश्चित हो जाए तो कर्त्ता निश्चित हो जाए।

सापेक्ष व्यवहार

'व्यवहार क्या है' इतना ही यदि समझ ले, तब भी मोक्ष हो जाएगा। यह व्यवहार सारा रिलेटिव है और ऑल दीज़ रिलेटिव्स आर टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट्स एन्ड रियल इज़ द परमानेन्ट एडजस्टमेन्ट!

नाशवंत वस्तुओं में मेरापन का आरोप करना, वह 'रोंग बिलीफ़' है। 'मैं चंदूभाई हूँ, इसका पति हूँ' वे सब 'रोंग बिलीफ़' हैं। आप 'चंदूभाई' हो, ऐसा निश्चय से मानते हो? प्रमाण दूँ? 'चंदूभाई' को कोई गाली दे तो असर होता है क्या?

प्रश्नकर्ता : बिल्कुल नहीं।

दादाश्री : जेब काटे तो असर होता है?

प्रश्नकर्ता : थोड़ी देर तक होता है।

दादाश्री : तब तो आप 'चंदूभाई' हो। व्यवहार से 'चंदूभाई' हो तो आपको कुछ भी स्पर्श नहीं करेगा।

प्रश्नकर्ता : यदि ऐसा हो तब तो हममें और दूसरों में फर्क ही क्या? गलत वस्तु को त्यागना ही चाहिए। धीरे–धीरे इतना प्रयत्न करते जाएँ तो फर्क पड़ता जाता है।

दादाश्री : यदि मोक्ष में जाना हो तो गलत–सही के द्वंद्व निकाल देने पड़ेंगे, और यदि शुभ में आना हो तो गलत वस्तु का तिरस्कार करो और अच्छी वस्तु पर राग करो, और शुद्ध में अच्छे–बुरे दोनों के ऊपर राग–द्वेष नहीं। वास्तव में अच्छा–बुरा है ही नहीं। यह तो दृष्टि की मलिनता है, इसलिए यह अच्छा–बुरा दिखता है और दृष्टि की मलिनता, वही मिथ्यात्व है, दृष्टिविष है। हम दृष्टिविष निकाल देते हैं।

विनय और परम विनय

वीतरागों का पूरा मार्ग ही विनय का मार्ग है। इस विनयधर्म की शुरूआत ही हिन्दुस्तान में से होती है। हाथ जोड़ने की शुरूआत यहाँ से ही होती है, वह इससे लेकर ठेठ साष्टांग दंडवत् तक जाती है। विनयधर्म तो अपार है, और परम विनय उत्पन्न हो जाए तब मोक्ष होता है।

प्रश्नकर्ता : 'परम विनय' समझाइए।

दादाश्री : जहाँ वाद–विवाद नहीं हो, दख़ल नहीं होता, जहाँ नियम नहीं होता। नियम हो वहाँ पर परम विनय नहीं सँभाल पाएगा और हमें नियम के बंधन में रहना पड़ेगा। हम तो 'व्यवस्थित' जो करे, उसे देखनेवाले हैं। और कुछ हमें कहाँ पुसाता है?

'रिलेटिव' धर्मों में भी जहाँ विनय है वहाँ मोक्षमार्ग है और विनय यदि टूटे नहीं तो मोक्ष ही है।

प्रश्नकर्ता : विनय और परम विनय में क्या फर्क है?

दादाश्री : बहुत फर्क है। परम विनय तो मनुष्य में उत्पन्न ही नहीं होता। आत्मा प्राप्त करने के बाद ही परम विनय रहता है और उसके कारण जुदाई लगती ही नहीं। अभेद दृष्टि हो जाती है, अभेद बुद्धि हो जाती है, और जब तक विनय है तब तक मैं और गुरु महाराज दोनों अलग ही हैं। फिर भी वह विनय 'परम विनय' में ले जाता है। वह भी एक स्टेशन है।

'ज्ञानी पुरुष' आपके अविनय की *नोंध* (अत्यंत राग अथवा द्वेष सहित लम्बे समय तक याद रखना, नोट करना) नहीं करते हैं। आपको समझ लेना है कि मुझे कैसा विनय करना है और कैसा नहीं? और आपकी भूल हो सकती है, ऐसा हम जानते हैं और इस दुषमकाल में अविनय की तो *नोंध* ही नहीं कर सकते न? चौथे *आरे* में अविनय की *नोंध* करनी पड़ती है। अभी तो लेट गो करना पड़ता है। बल्कि, अविनय करे उसे आशीर्वाद देना पड़ता है!

मिथ्याभास

मिथ्याभास अर्थात् क्या? एक बड़े फंक्शन में बड़े-बड़े मंत्री आए थे। वहाँ मंच पर सब बैठे हुए थे, तब मुझे भी मंच पर उनके पास बैठाया था। मुझे जब 'ज्ञान' नहीं हुआ था, तब मन में ऐसी भावना होती थी कि यहाँ के बजाय ऐसी जगह पर बैठने को मिले तो अच्छा। उन दिनों मेरे लिए उसकी क़ीमत थी और अभी मंच पर बैठाए तो बोझा लगता रहता है, वह मिथ्याभास।

प्रश्नकर्ता : परन्तु दादा, आपको दु:खदायी या बोझेवाला नहीं लगता न?

दादाश्री : नहीं, वैसे बोझेवाला नहीं लगता। परन्तु उसमें इन्टरेस्ट नहीं होता है। अर्थात् मुक्त जैसा होता है। हमें अब कहीं भी इन्टरेस्ट नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : धीरे-धीरे हमें भी इन्टरेस्ट कम होता जा रहा है, फिर जीएँ किस तरह?

दादाश्री : वह मोह था। मोह मार खिलाता है। अब आपको मार नहीं खिलाएगा और संसार चलता रहेगा। बिना रुचि के समभाव से *निकाल* करना।

प्रश्नकर्ता : वह अच्छा कहलाता है?

दादाश्री : वे 'ज्ञानी' कहलाते हैं, इन्टरेस्ट(रुचि) के बिना करें वे ज्ञानी कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : रुचि के बिना कोई वस्तु करें तो उसका शरीर पर असर नहीं होता?

दादाश्री : जो इन्टरेस्ट था, वह शरीर पर मोह की मार खिलाता था। उससे शरीर पर असर होता था। इससे तो शरीर अच्छा हो जाता है। गुलाब की तरह खिलता है। और रुचिवाला तो मुँह पर अरंडी का तेल चुपड़ा हो वैसा होता है।

सहजता और देहाध्यास

प्रश्नकर्ता : देह सहज हो जाए, उसे देहाध्यास कहते हैं?

दादाश्री : आपने सहज किसे समझा? सहज की भाषा में सहज समझे हो या अपनी भाषा में? जेब काट ले और आप पर असर नहीं हो, तब देहाध्यास गया। देह को कोई किसी भी प्रकार से तंग करे और आप यदि स्वीकार लो तो वह देहाध्यास है। 'मुझे क्यों किया', तो वह देहाध्यास है।

ज्ञानियों की भाषा में देह सहज हो जाए तो देहाध्यास गया।

प्रश्नकर्ता : देह सहज हुई कब मानी जाती है?

दादाश्री : हमारी देह को कुछ भी करे, फिर भी हमें राग-द्वेष नहीं हो, वह सहज कहलाता है। यह हमें देखकर समझ लो न कि सहज किसे कहते हैं? सहज अर्थात् स्वाभाविक, कुदरती, विभाविक दशा नहीं। खुद 'मैं हूँ' ऐसा भान नहीं है।

प्रश्नकर्ता : सहज कब होते हैं?

दादाश्री : यह 'ज्ञान' परिणामित हो और कर्म सब कम हो जाएँ तब सहज होता जाता है। अभी एक-एक अंश करके सहज हो रहा है, फिर संपूर्ण सहज हो जाएगा। देहाध्यास टूटे, तब सहज की ओर जाता है। जितने अंश तक सहज होता है, उतने अंश तक समाधि रहती है। अब आपको विश्वास हो गया है न कि मार्ग मिल गया है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : जिसे वह विश्वास हो जाए, उसके लिए अंत आ जाता है। वर्ना हर एक वस्तु का अंत आता है, विचारों का अंत आता है, ज्ञान का अंत आता है। सभी का अंत आता है, परन्तु सिर्फ अज्ञान का अंत नहीं आता!

दृष्टा में दृष्टि पड़ी ऐसा जो कहते हैं न, वह तो दृष्टा से बहुत दूर हैं। उन्हें दृष्टा प्राप्त करने में तो बहुत समय लगेगा। यह तो हमें दृष्टा प्राप्त हो चुका है। जिसे जगत् ढूंढ रहा है, वह अपने पास है। अब उसका उपयोग, शुद्ध उपयोग किस तरह करें, वह अपना काम है। वह पुरुषार्थ कहलाता है।

आप घर में से बाहर निकलो तब शुद्ध उपयोग रखते हो अर्थात् रियल और रिलेटिव सब देखते-देखते आगे जाते हो, उस समय शुद्ध उपयोग रहता है। यहाँ किसीके साथ बातचीत करने लगो, उस घड़ी बातचीत करते रहो और शुद्ध उपयोग अंदर रखते रहो। बातचीत करे, वह चंदूलाल करते हैं और 'आप' यह सब देखते रहो। उस प्रकार से उपयोग रह सकता है, कोई बहुत मुश्किल वस्तु नहीं है।

मन में तन्मयाकार परिणाम नहीं होते, वाणी में तन्मयाकार परिणाम नहीं होते, वर्तन में तन्मयाकार परिणाम नहीं होते, वही शुद्ध उपयोग है। जागृति आते-आते देर लगती है। धीरे-धीरे जैसे-जैसे कषाय उपशम होंगे, *निकाली* कषाय-डिस्चार्ज कषाय कम होते जाएँगे, वैसे-वैसे जागृति बढ़ेगी। अब नये कषाय चार्ज नहीं होंगे, परन्तु जो 'डिस्चार्ज' कषाय हैं, उनका 'डिस्चार्ज' होता ही रहेगा।

हम आपके घर आए और आप वाइफ के प्रति चिढ़ गए हों तो हम उसकी *नोंध* नहीं करते कि आप यह गलत कर रहे हो। आपकी वह चिढ़ डिस्चार्ज है। आपको 'ज्ञान' दिया है इसलिए आप कच्चे नहीं पड़ते। परन्तु डिस्चार्ज तो होगा ही न? हम इतना ही देख लेते हैं कि उपयोग था या नहीं।

प्रश्नकर्ता : दृष्टि का दृष्टा ढूंढ़ने की बात अभी तक मुझे समझ में नहीं आई, वह मुझे ज़रा समझाइए।

दादाश्री : हम सब दृष्टा को ढूंढ़कर बैठे हैं, परन्तु जिसे स्वरूप का भान नहीं है उसे कहते हैं कि, 'जिस पर तेरी दृष्टि पड़ रही है वह तो दृश्य है, परन्तु वहाँ दृष्टा कौन है, उसकी खोज कर।' ऐसा हम कहना चाहते हैं।

बाहर तो यह इन्द्रियदृष्टि है। परन्तु जब मन की सभी क्रियाएँ - मन क्या-क्या बोलता है? क्या सोचता है? फिर बुद्धि की क्रिया - बुद्धि क्या -क्या दिखाती है? फिर चित्त कहाँ-कहाँ भटकता है? अहंकार डिप्रेस हो जाता है या एलिवेट हो जाता है? इन सबको देखते रहना, वही अपना दृष्टा। दृष्टि का विषय दृश्य है और हम दृष्टा हैं।

प्रश्नकर्ता : बाहर की या अंदर की किसी भी घटना में, कोई भी उदय हो, तब हम जानते हैं कि यह मेरा स्वभाव नहीं है, तब अनुभव होता है न?

दादाश्री : हाँ, होता है न! मेरा स्वभाव यह नहीं है, ऐसा जो समझता है वह 'खुद के स्वभाव' में स्थिर होता है। 'चंदूलाल' कितने भी अकुलाए हुए हों, फिर भी 'आपकी' जागृति जाती नहीं ऐसा यह 'ज्ञान' है, और अकुलाहट तो हुए बगैर रहेगी ही नहीं, क्योंकि भीतर भरा हुआ माल है न!

डिस्चार्ज अर्थात् उल्टी होती है, वैसी बात है! किसी मनुष्य से आपके ऊपर उल्टी हो गई, उसे लेकर उसे डाँटते नहीं हो, क्योंकि उस बेचारे को करना नहीं है लेकिन हो जाता है। उसका वह क्या करे? वैसे

ही ये कषाय उल्टी की तरह डिस्चार्ज होते हैं। फिर अच्छा हो जाता है, भूमिका शुद्ध होती जाती है।

उपयोग किसे कहते हैं कि हज़ार-हज़ार के नोट गिन रहा हो तब वहाँ से उसका उपयोग दूसरी जगह पर जाता है क्या? वह उपयोग कहलाता है। वैसा उपयोग हमारा निरंतर रहता है। हमारी हाज़िरी में रहो तो आपको भी उपयोग रहेगा।

प्रश्नकर्ता : इस पद में या दूसरे में अलग-अलग मात्रा में रुचि होती है इसलिए ऐसा होता है?

दादाश्री : रुचि को पोषण देने की ज़रूरत नहीं है। आपको तो उपयोग रखना है। आपको कह देना है, 'चंदूलाल, दादा के दरबार में बैठे हो, अब यहाँ पर जो-जो चल रहा है उसमें आप उपयोग रखकर चलो।' फिर आपको 'देखते' रहना है, उपयोग चूक जाओ तो तुरन्त कहना, 'चंदूलाल चूक गए, ऐसा नहीं होना चाहिए।'

मुझे कोई पाँच के नोट या दस के नोट की रेज़गारी दे तो मैं कभी भी गिनने नहीं बैठूँ। पच्चीस-पचास पैसे कम दिए होंगे परन्तु इतना गिनते-गिनते मेरा टाइम कितना बेकार जाएगा! लक्ष्मीजी के बारे में निस्पृह नहीं हो जाना है, परन्तु उसमें उपयोग नहीं देना चाहिए।

उपयोग तो सबसे बड़ी वस्तु है।

यह उपयोग कब तक देना है? रात-दिन 'दादा' याद आते रहें। उनके बगैर अच्छा नहीं लगे, उनका विरह लगे, तब उसमें से 'इलेक्ट्रिसिटी' उत्पन्न होने से प्रकाश होता है, संपूर्ण स्वयं प्रकाश!

विरही की वेदना

विरही की वेदना उत्पन्न होती है। विरही का अर्थ क्या? चैन ही नहीं पड़े। तब समझना कि सब जंजाल से छूट गए। नव विवाहिता हो, उसका पति ऑफिस जाए तो भी स्त्री का चित्त पति में ही रहता है- घर पर रसोई बहुत अच्छी बनाती है फिर भी।

यह तो ऐसा है न कि परमात्मा अभेद स्वरूप से है। अभेद स्वरूप का विरह लगे, तो संसार तो आपका बहुत ही सुंदर चलेगा। यह तो दख़ल करता है बल्कि। संसार अपने आप चले वैसी चीज़ है। जैसा यह भोजन करने के बाद अंदर फिर सहज चलता है, उससे भी अधिक बाहर सहज चले वैसा है! कुदरत का नियम ऐसा है कि भीतर पाचक-रसों की मात्रा आज ऐसे डालती है कि पूरी ज़िन्दगी उसकी मात्रा ठीक रहे और अभागा इस तरह डाल देता है कि आज डाले न तो दूसरे साल अकाल पड़ जाए!!

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी पुरुष' के विरह में जो वेदना उत्पन्न होती है उसे कैसी वेदना कहते हैं?

दादाश्री : वह वेदना तो ओहोहो! भीतर 'इलेक्ट्रिसिटी' उत्पन्न होती है और उससे स्वरूप तेजवान होता जाता है। वह तो बहुत उत्तम वस्तु कही जाती है। विरह की वेदना का तो महाभाग्य से ही उदय होता है। बहुत समय के परिचय से उसे वह होता है। जिसे मोक्ष में जाना हो, उसे वह वेदना जगती है! उसके लिए आपको बहुत जल्दबाज़ी करने जैसा नहीं है। इतने सारे जन्म बिगाड़े, अब एक-दो जन्मों के लिए क्या नुकसान होनेवाला है? इतने जन्म भटकते रहे, उसकी थकान नहीं लगी और अब दो जन्मों के लिए थकान लगेगी?

सच्चिदानंद स्वरूप

खुद का स्वरूप जो है, वह सच्चिदानंद है। सत्-चित्-आनंद। यह असत् चित्त हो गया है। वह सुख भी कल्पित है और दु:ख भी कल्पित है। कल्पित है फिर भी असर सच्चे जैसा होता है! सच्चिदानंद, वह मूल स्वरूप है हम सबका।

प्रश्नकर्ता : सच्चिदानंद स्वरूप हर एक के अंदर है?

दादाश्री : हाँ, जीव मात्र के अंदर है और वही परमात्मा है!

सच्चिदानंद स्वरूप के दो भाव हैं। एक स्वभाव है और दूसरा विभाव है। विभाव अर्थात् विशेष भाव, विरुद्ध भाव नहीं। यह तो संयोगों के दबाव

से रोंग बिलीफ़ हो गई है।

प्रश्नकर्ता : यह सच्चिदानंद स्वरूप साकार है या निराकार?

दादाश्री : वह रूपी नहीं है, अरूपी है यह बात समझने जैसी है। एकदम से इसे समझने की ज़रूरत नहीं है। अभी किस तरह प्राप्ति करें, वही समझना है।

निराकार कहा है तो अभी निराकार समझ लो, फिर आगे का समझ में आएगा। निराकार तो किसी हेतु से कहा गया है। कुछ हेतु सहित बातें ऐसी होती हैं कि वह हेतु पूरा होने के बाद में समझ में आती हैं। आत्मा निरंजन तो है ही, उसे कर्मों ने छुआ ही नहीं है। आज भी आपका आत्मा 'शुद्धात्मा' है। साफ-साफ दिखता है, परन्तु आप मान बैठे हो कि मुझसे निरे पाप हुए हैं, पुण्य हुए हैं। सभी 'रोंग बिलीफ़' बैठी हुई हैं। 'ज्ञानी पुरुष' 'रोंग बिलीफ़' तोड़ देते हैं और 'राइट बिलीफ़' बैठा देते हैं। 'राइट बिलीफ़' बैठ जाए, तब 'मैं भगवान ही हूँ' ऐसा भान होता है।

प्रशस्त मोह

माया अर्थात् अज्ञानता। माया जैसी कोई चीज़ नहीं है। माया 'रिलेटिव' है, विनाशी है और हम अविनाशी हैं। वह कब तक रहती है? जब तक हमें विनाशी चीज़ों पर मोह रहता है, तब तक माया खड़ी रहती है। आपको स्वरूप का मोह उत्पन्न हो जाएगा, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा मोह उत्पन्न हो जाए, तब माया खत्म हो जाएगी।

प्रश्नकर्ता : कुछ समय बाद स्वरूप का मोह भी नहीं रहना चाहिए न?

दादाश्री : स्वरूप का मोह तो अच्छा है। उसे मोह नहीं माना जाता। उसे अपनी भाषा में मोह कहते हैं। मोह का मतलब तो मूर्छा होता है। और वास्तव में तो उसे आत्मा की रुचि नहीं कहा जाता। और देह का मोह कहलाता है। आत्मा की रमणता आई, तब पर-रमणता दूर हो जाती है, उसका संसार टला!

प्रश्नकर्ता : गौतम स्वामी को महावीर स्वामी ने अपने से दूर किया वह इसलिए कि गौतम स्वामी को उनसे मोह था, तो वह किस तरह का मोह कहलाएगा?

दादाश्री : वह प्रशस्त मोह था। जो मोक्ष जानेवाले होते हैं उन पर भी मोह हो जाए, उसे प्रशस्त मोह कहा है। परन्तु आखिर में वह प्रशस्त मोह हानिकारक नहीं है। वह 'वस्तु' (आत्मा) दिलवा देगा। ज्ञान ज़रा देर से होगा, परन्तु उसमें हर्ज क्या है?

वीतरागों पर मोह, जिससे वीतरागता आए ऐसी सभी वस्तुओं पर मोह, वह प्रशस्त मोह कहलाता है। फिर वह मोह मूर्ति पर ही क्यों न हो? परन्तु वह वीतरागता लानेवाली वस्तु है, इसलिए वह प्रशस्त मोह कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : आपके ऊपर मोह हो तो वह प्रशस्त कहलाएगा न?

दादाश्री : हाँ, 'ज्ञानी पुरुष' पर मोह होना तो बहुत उत्तम कहलाता है। कितने ही जन्मों तक त्याग करे, निर्वस्त्र घूमे, तब उसका संसार का मोह घटता है, तब उसे 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाते हैं।

मन, विरोधाभासी

प्रश्नकर्ता : मन समझता है कि इस ओर फँसाव है, पुसाता नहीं और दूसरी तरफ संसार के विचार आते रहते हैं, वह क्या है?

दादाश्री : ऐसा है कि मन विरोधाभासी होता है। हमारी समझ के अनुसार मन काम करता रहता है। हम जानते हैं कि अहमदाबाद नोर्थ (उत्तर) में है इसलिए हम हमारा स्टीमर उस ओर चलाते हैं, परन्तु फिर हमारी समझ बदल गई या भूल से दूसरी तरफ मोड़ दिया तो अहमदाबाद आएगा क्या? अर्थात् मन स्टीमर जैसा है। हम जैसा मोड़ेंगे वैसा काम देगा। इसलिए अपने 'ज्ञान' से मन को बहुत अच्छी तरह समझाना चाहिए। फिर मन 'फर्स्टक्लास' चलेगा। मन इस बात को पकड़ता नहीं है और पकड़ ले तब फिर वापिस छोड़ता नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो दादा, उसे पकड़वाने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : वह हम कर देते हैं। हम 'ज्ञान' देते हैं, उसी दिन आपका आत्मा जागृत कर देते हैं, उससे मन इस ओर मुड़ जाता है।

शंका का उद्भवस्थान

व्यवहार में जो शंका होती है, वह मन का काम है। वे मन के गुण हैं। उसमें मन और बुद्धि दोनों मिल जाते हैं, तब तरह-तरह के बवंडर उठते हैं। जैसे हवा के बवंडर उठते हैं न, चक्रवात चलते हैं न, वैसे ही यह 'सायक्लोन' (चक्रवात) अंदर चलता है।

प्रश्नकर्ता : उसमें बुद्धि का क्या होता है?

दादाश्री : हाँ, बुद्धि है न। मन स्वीकृति दे तब बुद्धि कहेगी, 'नहीं, ऐसा है।' इसलिए फिर शंका होती है। यानी कि भीतर पार्लियामेन्ट है। आत्मा में कोई निःशंक नहीं हुआ है, आत्मा में निःशंक हो जाए तो लक्ष्य बैठ जाए।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष होने के लिए संपूर्ण निःशंक होने की ज़रूरत है?

दादाश्री : आत्मा में निःशंक होना पड़ता है, परन्तु आत्मा क्या होता होगा? इन लोगों का माना हुआ आत्मा बुद्धि में समाए ऐसा नहीं है। लोगों के पास बुद्धि है और बुद्धि में समाया हुआ रहे, आत्मा वैसा नहीं है, परन्तु वह अमाप्य है। जहाँ मेजर (नाप) नहीं है, तौलनाप नहीं है, वैसा आत्मा 'ज्ञान' से जाना जा सकता है। वह भी, ज्ञानी के 'ज्ञान' से आत्मा का लक्ष्य बैठता है, नहीं तो लक्ष्य में नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : 'कोन्शियस माइन्ड' किसे कहते हैं? वह मन है?

दादाश्री : वह मन को नहीं कहते, वह चित्त को कहते हैं। सही मन जो है, वह तो आत्मा के सानिध्य के कारण उत्पन्न होता है, जिसे अपने लोग भाव कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्मा के साथ उसका संबंध किस प्रकार का है?

दादाश्री : सिर्फ 'टच'(स्पर्श) का ही संबंध है। सामिप्यभाव से चार्ज होता रहता है। जब तक 'मैं चंदूलाल हूँ' ऐसा भाव है, इसका फादर हूँ, वे सब भाव होते हैं, तब तक 'टच' होता रहता है और 'चार्ज' होता रहता है।

प्रश्नकर्ता : उसे स्थूल मन कहते हैं?

दादाश्री : नहीं, स्थूल तो ये जो विचार करते हैं, वे हैं। वह फिज़िकल है।

प्रश्नकर्ता : स्थूल और सूक्ष्म में क्या भेद है?

दादाश्री : स्थूल मन के बारे में तो हर एक को समझ में आता है। सोचता है वह स्थूल मन है और सूक्ष्म मन का तो पता ही नहीं चलता। सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' को समझ में आता है। लोग 'भावमन, भावमन' ऐसा कहते रहते हैं, परन्तु वह क्या है वह एक्ज़ेक्टली पकड़ में नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : वह कब पकड़ में आएगा?

दादाश्री : वह तो 'ज्ञान' होगा तभी पकड़ा जा सकेगा। 'ज्ञानी' बनने के कुछ समय पहले से भावमन को पकड़ सकते हैं। जो अहंकार को विलय करता है, ऐसे 'ज्ञानी' को भावमन पकड़ में आता है! स्वयं 'शुद्धात्मा' हो गया इसलिए 'चार्ज' होना बंद हो गया। फिर स्थूल मन डिस्चार्ज होता ही रहेगा, वही उसका काम!

प्रश्नकर्ता : उस पर इफेक्ट होता है?

दादाश्री : मन का स्वभाव ही इफेक्टिव है न? हमें समझ जाना है कि यह मेरा स्वरूप नहीं है। तब फिर इफेक्ट हमें छुएगा नहीं।

परसों आपने अपने बेटे को कोई कार लेकर घूमते हुए देखा हो और आज कोई कहे कि वह कार टकराकर पिचक गई है, तब आप उसे देखोगे तो असर हो जाएगा। परन्तु वापिस कोई कहे कि नहीं, वह तो कल ही बिक गई थी, तो फिर तुरन्त ही असर मिट जाएगा। सभी वस्तुएँ

इफेक्टिव हैं। परन्तु 'ज्ञान' हो तो इफेक्ट नहीं होता। इसलिए हमने कहा है कि मन इफेक्टिव है, वाणी इफेक्टिव है और देह भी इफेक्टिव है।

द्रव्यमन स्थूल मन है और भावमन सूक्ष्म मन है। भावमन बदले तब छूटेंगे। स्थूल मन शायद नहीं भी बदले तो हर्ज नहीं है। भाव के अनुसार दंड दिया जाता है। द्रव्य में हिंसा का विचार होता है, परन्तु भाव में अलग होता है, इसलिए भाव के अनुसार दंड दिया जाता है। द्रव्य के दोष का दंड यहीं पर मिल जाता है, और भाव के दोष का दंड परलोक में मिलता है।

अभी जगत् में जो धर्म चल रहे हैं, उनकी थिअरी क्या है? कि भाव नहीं बदलते परन्तु द्रव्य बदलने जाते हैं। लोगों को क्या होता है कि द्रव्य के अनुसार ही भाव बदलते रहते हैं। गलत करे तब भी गलत करने के बाद भाव पक्का करते हैं कि ऐसा तो करना ही चाहिए। इसलिए अपनी क्या खोज है कि द्रव्यमन को यदि लोग बदलने जाएँ तो वह तो कभी भी बदलेगा ही नहीं। इसलिए हमने स्थूल मन को एक ओर रख दिया, स्थूल क्रियाओं को एक ओर रख दिया। देह की तमाम क्रियाओं को एक ओर रख दिया। हम स्वरूप का 'ज्ञान' देते हैं, फिर सारा परिवर्तन होता है, वर्ना द्रव्यमन के धक्के से ही मनुष्य चलता रहता है।

भावमन का किसीको भी पता नहीं चलता। भावमन है ऐसा पता चलता है, परन्तु वह किस तरह से काम करता है उसका पता नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : वह 'अनकोन्शियस' हुआ न?

दादाश्री : हाँ, वह अहंकार की ओट में, अंधेरे में सब काम कर डालता है। अहंकार का अंधेरा नहीं हो तो दिखेगा। यह बहुत सूक्ष्म वस्तु है।

बुद्धिमार्ग-अबुधमार्ग

यदि संसारमार्ग में डेवलप होना हो तो बुद्धिमार्ग में जाओ और मोक्षमार्ग में जाना हो तो अबुधमार्ग में जाओ। हम अबुध हैं। हममें ज़रा भी बुद्धि नहीं है। बुद्धि सेन्सिटिव रखती है। बुद्धि के दो प्रकार हैं: एक

सम्यक् बुद्धि और दूसरी विपरीत। यहाँ सत्संग होता है, तब आपकी जो विपरीत बुद्धि होती है, वही टर्न लेकर सम्यक् होती है और वही सम्यक् बुद्धि मोक्ष में ले जाती है।

प्रश्नकर्ता : अबुध होने के बाद 'केवळज्ञान' होता है न?

दादाश्री : अबुध हुए बिना 'केवळज्ञान' उत्पन्न होता ही नहीं है। जहाँ भी बुद्धि होती है वहाँ व्यवहारिक अहंकार होता है, ज्ञानी हों तब भी, और बुद्धि नहीं हो तब व्यवहारिक अहंकार भी नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : तो फिर बुद्धि हो वह अच्छा या नहीं हो वह अच्छा?

दादाश्री : मोक्ष में जाना हो तो बुद्धि काम की ही नहीं है। बुद्धि तो संसार में भटकाती है। जहाँ जाए वहाँ पर नफा–नुकसान दिखाती है। गाड़ी में बैठने में भी बुद्धि काम में आती है कि यहाँ बैठूँ तो फायदा है और वहाँ नुकसान है! बुद्धि की भूख ऐसी है कि कभी भी मिटती ही नहीं। इसलिए वह तो अंतवाला होना चाहिए। पूरा जगत् बुद्धिज्ञान में है।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि से आगे जाना चाहिए?

दादाश्री : बुद्धि से आगे गए बिना चारा ही नहीं है। तब तक मोक्ष होगा ही नहीं।

ज्ञानी की आज्ञा – प्रत्यक्ष मोक्ष वर्तना

प्रश्नकर्ता : ऐसा क्यों कहा जाता है कि ज्ञानी की आज्ञा में ही वीतराग समाया हुआ है?

दादाश्री : उस आज्ञा के अलावा दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है न? जो ज्ञानी की आज्ञा नहीं पालता, वह मोक्ष में जाने के लायक नहीं है। जब लायक हो जाएगा तब वह आज्ञा पाल सकेगा, वर्ना स्वच्छंद खड़ा होगा। इसलिए श्रीमद् राजचंद्र ने कहा है:

'रोके जीव स्वच्छंद तो पामे अवश्य मोक्ष,
पाम्या एम अनंत छे, भाख्युं जिन निर्दोष।

प्रत्यक्ष सद्गुरु योगथी स्वच्छंद ते रोकाय,
अन्य उपाय कर्या थकी प्राये बमणो थाय।'

खुद रोकने जाएगा तो दुगुना हो जाएगा, और 'ज्ञानी पुरुष' के पास से उनकी आज्ञा का आराधन करना, वही उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है।

ज्ञानी, बालक जैसे

यह छोटा बच्चा रोता है, वह बुद्धिपूर्वक नहीं रोता है, और बीस-पच्चीस वर्ष का मनुष्य रोता है, वह बुद्धिपूर्वक रोता है, और 'ज्ञानी पुरुष' रोएँ, तो वे बुद्धिपूर्वक नहीं रोते। बालक और ज्ञानी दोनों एक समान होते हैं। दोनों अबुधभाववाले होते हैं। बालक का उगता हुआ सूर्य और ज्ञानी का अस्त होता हुआ सूर्य। बालक को अहंकार है परन्तु उसे जागृति नहीं है, और हम अहंकारशून्य हैं।

जहाँ बुद्धि का उपयोग करते हैं, वहीं पर पाप बंधते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, हम चौबीसों घंटे आपका नाम लेकर बोलते रहें तो पाप नहीं बंधेंगे न?

दादाश्री : दादा का नाम लेना वह खुद के ही शुद्धात्मा का नाम लेने के बराबर है। ये पद(भजन) गाते हैं वे खुद के ही शुद्धात्मा का कीर्तन गाने जैसा है। यहाँ सबकुछ खुद अपने लिए ही है। यह आरती भी स्वयं खुद की ही करता है। हमारा कुछ भी नहीं। जिसे जितना करना आया उतना ही उसका काम होगा।

ओपन माइन्ड

'माइन्ड ओपन' नहीं रहे, हमेशा उलझा हुआ ही रहे, तो मुक्त हास्य उत्पन्न नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : ओपन माइन्ड यानी क्या कहना चाहते हैं?

दादाश्री : यह गुड़ के चारों तरफ मक्खियाँ घूमती रहती हैं, उसी

तरह मन ऐसे किसी एक जगह पर मंडराता रहे, वह ओपन माइन्ड नहीं कहलाता। ओपन माइन्ड जिस समय जो हो उसमें एकताल होता है। हँसने के समय हँसता है, बात करने के समय बात करता है, गाने के समय गाता है, सभी में ओपन माइन्ड होता है।

योगसाधना से परमात्मदर्शन

प्रश्नकर्ता : योगसाधना से परमात्मदर्शन हो सकता है?

दादाश्री : योगसाधना से क्या नहीं हो सकता? परन्तु किसका योग?

प्रश्नकर्ता : ये सहज राजयोग कहते हैं, वह योग।

दादाश्री : हाँ, परन्तु किसे राजयोग कहते हो?

प्रश्नकर्ता : मन की एकाग्रता होती है।

दादाश्री : उससे आत्मा को क्या फायदा? आपको मोक्ष चाहिए या मन को मज़बूत करना है?

प्रश्नकर्ता : सिर्फ परमात्मा के दर्शन की बात कर रहा हूँ।

दादाश्री : तो फिर बेचारे मन को क्यों बिना बात परेशान करते हो? एकाग्रता करने में हर्ज नहीं है, परन्तु आपको परमात्मा के दर्शन करने हों तो मन को परेशान करने की ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : एकाग्रता से शून्यता आती है क्या?

दादाश्री : आती ज़रूर है, परन्तु वह शून्यता 'रिलेटिव' है। 'टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट' है।

प्रश्नकर्ता : उस समय ये मन और बुद्धि क्या करते हैं?

दादाश्री : थोड़ी देर के लिए स्थिर हो जाते हैं, फिर वैसे के वैसे। उसमें 'अपना' कुछ भी नहीं है। अपना ध्येय पूरा नहीं होता और योग 'अबव नॉर्मल' हो गया हो तो वह महान रोगी है। मेरे पास बहुत सारे योगवाले आते हैं। वे यहाँ दर्शन करने के लिए अंगूठे को छूएँ तो उससे

पहले उनका पूरा शरीर काँप जाता है, क्योंकि इगोइज़म निकलता है। जहाँ-जहाँ जो करो उस कर्त्तापन का अहंकार बढ़ेगा, वैसे-वैसे परमात्मा दूर जाते जाएँगे।

साक्षीभाव

प्रश्नकर्ता : साक्षीभाव यानी कि अंत आ गया न?

दादाश्री : सभी बातों में साक्षीभाव रहना चाहिए। 'चंदूभाई नालायक हैं' ऐसा कहते ही साक्षीभाव नहीं रहता। जेब कट जाए तब भी साक्षीभाव नहीं रहता, क्योंकि साक्षीभाव अहंकार से रहता है। साक्षीभाव का अर्थ क्या है? वास्तव में साक्षीभाव वीतराग होने का एक स्टेप है, सच्चा स्टेप है। साक्षीभाव और दृष्टाभाव में बहुत फर्क है।

जहाँ आत्मा के गुण नहीं हैं, वहाँ आत्मा नहीं है। यह सोना है, वह अपने गुण में हो तब तक वह सोना होता है। दूसरे के गुण में खुद नहीं होता। इस संसार में जो दिखता है, वे सब दूसरे के गुण हैं। वहाँ खुद नहीं होता। खुद ज्ञाता-दृष्टा होता है, परन्तु एकाकार नहीं होता, आत्मा मिलावटवाला नहीं है, बिना मिलावटवाला है।

क्रमिक मार्ग में सारे जागृति लाने के रास्ते हैं। उससे जागृति बढ़ती जाती है। जितने से वीतराग हुआ, उतनी जागृति उसे रहती है, और जितने में राग-द्वेष है, उतने में जागृति नहीं रहती उसे। व्याख्यान में राग-द्वेष है, लोगों की बातचीत में राग-द्वेष है। भला करने में राग-द्वेष है। शुभ करने में राग-द्वेष है। उनमें उन्हें जागृति नहीं रहती। राग-द्वेष के कारण जागृति रुक जाती है। जिसे तप पर राग हो गया हो, फिर उसे दूसरा कुछ नहीं सूझता।

रोके जीव स्वच्छंद तो...

स्वच्छंद छोड़े तो मोक्ष प्राप्त करेगा। गुरु भी स्वच्छंदी नहीं चाहिए। गुरु स्वच्छंदी तो फिर शिष्य भी स्वच्छंदी।

प्रश्नकर्ता : गुरु किस प्रकार से स्वच्छंदी नहीं होते?

दादाश्री : स्वच्छंदी ही होते हैं न। गुरु के गुरु स्वच्छंदी, इसलिए स्वच्छंदी का ही तूफ़ान। गृहस्थी भी स्वच्छंदी और त्यागी भी स्वच्छंदी। स्वच्छंदी मनुष्य को कैफ़ चढ़ता है। 'स्वच्छंद किसे कहा जाता है' उतना समझे तो भी बहुत हो गया।

हमारी आज्ञा में रहे, वह स्वच्छंद से बाहर निकल गया, फिर संसार में आपका चाहे जो भी स्वच्छंद हो, परन्तु वह स्वच्छंद नहीं माना जाता।

आत्मा के बारे में स्वच्छंद, उसे स्वच्छंद कहा जाता है। संसार में तो किसीको दो बजे चाय पीने की आदत हो, उसमें हमें हर्ज नहीं है। रात को बारह बजे नाश्ता करने की आदत हो, उसमें भी हमें हर्ज नहीं है। वह आत्मा का मार्ग नहीं है, वह तो व्यवहार है, संसार है। जिसे जो रास आए, वैसी बात है।

सद्‌गुरु किसे कहते हैं? ये सब गुरु तो हैं परन्तु सद्‌गुरु किसे कहते हैं? प्रभुश्री को सद्‌गुरु कहेंगे। जिनमें स्वच्छंद का एक अंश भी नहीं था, उनका सबकुछ ही कृपालुदेव के अधीन था, कृपालुदेव हाज़िर हों या नहीं हों फिर भी उनके ही अधीन। वे सच्चे पुरुष थे।

स्वच्छंद से अंतराय डलते हैं। जो धर्म के बारे में कुछ भी नहीं जानता, उसे अंतराय कम डलते हैं। और धर्म में स्वच्छंद किया कि अंतराय अधिक डलते हैं।

ज्ञान, दर्शन और वर्तन

प्रश्नकर्ता : समझना चाहिए या वर्तन में लाना चाहिए?

दादाश्री : वर्तन में लाना ही नहीं है, वर्तन में आना चाहिए। समझने का फल क्या? तो कहे, 'वर्तन में आता ही है!' समझ हो फिर भी वर्तन में नहीं आए तब तक उसे दर्शन कहा जाता है, और वर्तन में आए उसे ज्ञान कहा है।

प्रश्नकर्ता : समझ, ज्ञान और वर्तन समझ चुके हैं, लेकिन फिर वर्तन में नहीं आता।

दादाश्री : हाँ, ज्ञान के बिना वह वर्तन में नहीं आता। 'समझ' अर्थात् अन्‌डिसाइडेड बात।

मेरी बात आप पर ज़बरदस्ती उँडेलनी नहीं है। आपको खुद को ही समझ में आना चाहिए। मेरी समझ मेरे पास है। ज़बरदस्ती ज़ोर देकर तो कोई काम नहीं होता। आपको वह समझ में आ जाए फिर आप उस 'समझ' से चलोगे। ज्ञान में कुछ भी 'करने' की ज़रूरत नहीं है। समझने की ज़रूरत है। ज्ञान में और 'समझ' में कुछ फर्क होता होगा क्या? मेरे पास से आप बात को समझ लो, वह 'समझ' धीरे–धीरे ज्ञान के रूप में परिणामित होगी। ज्ञान जानते ज़रूर हैं, परन्तु वर्तन में नहीं आता, उसे 'समझ' कहते हैं।

ज्ञान की माता कौन है? 'समझ' है। माता के बिना पुत्र उत्पन्न नहीं होता न? या कोई पुत्र ऊपर से टपका है? इसलिए माता तो चाहिए न? ज्ञान की माता 'समझ' है। वह 'समझ' कहाँ से प्राप्त होगी? वह 'ज्ञानी' के पास से समझो। शास्त्रों के पास से समझो तो शास्त्रों के पास से पूरी समझ नहीं मिलती, परन्तु थोड़ी ही समझ मिलती है।

हम यह 'ज्ञान' देते हैं, वह 'केवळदर्शन' है। इसलिए उसमें सारी ही 'समझ' आ गई। अब 'समझ' में से वर्तन उत्पन्न होता है। परन्तु 'समझ' ही नहीं हो तो? वर्तन कभी भी नहीं आएगा। पूर्ण 'समझ', वह केवळदर्शन कहलाती है और वर्तन में आए वह केवळज्ञान कहलाता है। केवळज्ञान पूर्णाहुति है और केवळदर्शन, वह केवळज्ञान की बिगिनिंग (शुरूआत) है।

समझ किसे कहते हैं कि ठोकर न लगे (चिंता, कषाय, मतभेद नहीं हों)। पूरा दिन ठोकर खाता रहता है और मैं समझता हूँ, जानता हूँ, करता है। तो भाई, समझ किसे कहता है? समझ और 'ज्ञान' में फर्क क्या है? जो समझ वर्तन में नहीं आए, तब तक उस ज्ञान को 'समझ' कहा जाता है। वह समझ धीरे–धीरे 'ऑटोमेटिकली' ज्ञान के रूप में परिणामित होती है। वर्तन में आए तब जानना कि यह ज्ञान है, यानी कि तब तक समझते रहो।

शास्त्रों में जानने गया, वह ज्ञान क्रियाकारी नहीं है, और यह समझ क्रियाकारी है। आपको कुछ भी नहीं करना पड़ता। अंदर से 'ज्ञान' ही करता रहता है। क्रियाकारी ज्ञान, वह चेतनवंत 'ज्ञान' है, वही विज्ञान है, वही परमात्मज्ञान कहलाता है। शुष्कज्ञान को बाँझ ज्ञान कहा जाता है। पपीता नहीं लगता, और मेहनत उतनी ही! पूरा मनुष्यत्व बेकार चला जाता है, इसलिए कुछ समझना तो पड़ेगा ही न? यहाँ पर सिर्फ 'समझना' ही है, 'करना' कुछ भी नहीं है। जहाँ 'करना' है, वहाँ मोक्ष का मार्ग नहीं है। जहाँ 'समझना' है, वही मोक्ष का मार्ग है।

जो 'समझ' ज्ञान में परिणामित हो जाएगी, उस दिन वह चीज़ (दोष) आपके पास नहीं होगी। आपको कुछ भी नहीं करना है। ग्रहण-त्याग के हमलोग अधिकारी ही नहीं, क्योंकि यह मोक्षमार्ग है। ग्रहण-त्याग के अधिकारी, शुभाशुभ मार्ग में होते हैं, भ्रांतिमार्ग में होते हैं, यह तो क्लियर मोक्षमार्ग है।

जब वही 'समझ' ज्ञान के रूप में परिणामित होगी, तब वर्तन में आएगी। दादा ने जो समझ दी है, वह समझ ही अनुभव करवाती रहेगी। ऐसे करते-करते, अनुभवज्ञान होते-होते ज्ञान के रूप में वह परिणामित होगी, उस दिन वह 'चीज़' (दोष) नहीं रहेगी।

मोक्षमार्ग आसान है, सरल है और सुगम है। समभावी मार्ग है, कुछ भी मेहनत किए बगैर चले ऐसा है। इसलिए काम निकाल लो। अनंत जन्मों तक फिर यह योग बैठे ऐसा नहीं है।

ज्ञान दी जा सके ऐसी चीज़ नहीं है। ज्ञान तो, जो समझ देते हैं उसमें से उत्पन्न होता है। ज्ञान उत्पन्न हुआ वह कब समझ में आता है? 'यह गलत है' वह ज्ञान कब कहलाएगा? अपने आप वह चीज़ (दोष) छूट जाए तब। छूट जाना और ज्ञान होना, दोनों साथ में होता है। तब तक समझ में तो है कि यह नहीं होना चाहिए, नहीं होना चाहिए अर्थात् अपना यह 'केवळदर्शन' यानी कि केवळ-समझ का विज्ञान है। बाद में फिर केवळज्ञान में आता है।

प्रश्नकर्ता : समझने के बाद ज्ञान में आने में कितनी देर लगती है?

दादाश्री : जितना जिसका समझना पक्का, उतना उसका ज्ञान में डेवलपमेन्ट होता जाएगा। वैसा कब होगा उसकी चिंता नहीं करनी है। वह तो अपने आप ही ज्ञान में परिणामित होगा, अपने आप ही छूट जाएगा। इसलिए यहाँ पर समझ-समझ करते रहना। 'ज्ञान' ही काम कर रहा है। आपको कुछ भी नहीं करना है। नींद में भी 'ज्ञान' काम कर रहा है, जगते हुए भी 'ज्ञान' काम कर रहा है और स्वप्न में भी 'ज्ञान' काम कर रहा है।

'दिल्ली किस तरह पहुँचा जाएगा' इस बात को समझ तो दिल्ली पहुँचा जाएगा। समझ बीजस्वरूप है, और ज्ञान वृक्षस्वरूप है। आपकी तरफ से पानी का छिड़काव और भावनाएँ चाहिए।

प्रश्नकर्ता : आचरण में आ गया, वही चारित्र कहलाता है?

दादाश्री : चारित्र कहलाता है, परन्तु वह सम्यक्‌चारित्र कहलाता है, केवळचारित्र तो केवळज्ञानी ही कर सकते हैं और 'ज्ञानी पुरुष' कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : केवळचारित्र और सम्यक्‌चारित्र में क्या फर्क है?

दादाश्री : सम्यक्‌चारित्र जगत्‌ के लोग देख सकते हैं और केवळचारित्र किसीको दिखता नहीं है। वह इन्द्रियगम्य नहीं होता है। केवळचारित्र, वह ज्ञानगम्य है।

प्रश्नकर्ता : श्रद्धा और दर्शन में क्या फर्क है?

दादाश्री : दर्शन श्रद्धा से ऊँची चीज़ है। श्रद्धा तो अश्रद्धा भी हो जाती है। किसी पर श्रद्धा बैठी हो तो वह श्रद्धा बदल जाती है, और दर्शन नहीं बदलता। दर्शन को बदलनेवाला चाहिए। देखो किसीका मिथ्यादर्शन बदलता है? गुरु पर छह महीने श्रद्धा रखे तो वह उड़ जाती है, वास्तव में वह श्रद्धा नहीं कहलाती, विश्वास कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : श्रद्धा और विश्वास में क्या फर्क है?

दादाश्री : श्रद्धा दर्शन से नीचा पद है, परन्तु स्थिर है, डिगे नहीं ऐसा है। परन्तु लोग उसे निम्न भाषा में ले जाते हैं। महाराज साहब कहते हैं कि मुझ पर बस छह महीने श्रद्धा रखना। 'परन्तु साहब, मुझे आप पर श्रद्धा आती ही नहीं तो किस तरह रखूँ? मैं टिकिट चिपकाने जाता हूँ और चिपकती ही नहीं। आप ऐसा कुछ कहिए कि मुझे आप पर श्रद्धा आए।' मैं क्या कहना चाहता हूँ कि श्रद्धा रखने की वस्तु नहीं है। श्रद्धा आनी ही चाहिए।

भीतर जो सूझ पड़ती है, वह दर्शन है। किसीको अधिक सूझ पड़ती है और किसीको नहीं भी पड़ती! सूझ कुदरती देन है। वह अहंकारी वस्तु नहीं है। 'नेचरल गिफ्ट' है। हर एक के पास अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार सूझ होती है। छोटे बच्चे को भी सूझ पड़ जाती है!

धर्म की दुकानें

प्रश्नकर्ता : सभी तरह-तरह के धर्म कहते हैं कि हमारा सच्चा है, हमारा सच्चा है, तो किसका सच्चा मानें?

दादाश्री : वीतरागों का। वीतराग की बात समझने जैसी है, वीतराग का कहा हुआ मानना। इन सभी दुकानों में सच्ची बात नहीं है। हर एक की अपनी बात है। हर एक की दृष्टि से सच्ची है। किसीकी गलत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : सभी बातों का सार यह है कि 'मैं' जाए तभी कुछ होगा।

दादाश्री : जिस दुकान के मालिक नहीं हों, जो दुकान बिना मालिक की है, वहाँ जाकर बैठना। जहाँ पर 'मैं' जा चुका हो, जहाँ पर क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं दिखें, वहाँ पर बात सुनना, तब मोक्ष होगा, नहीं तो मोक्ष नहीं होगा।

व्याख्यान में तो सुननेवाला भी अलग और बोलनेवाला भी अलग। वह व्याख्यान कहलाता है, आख्यान नहीं। और मोक्षमार्ग में आख्यान ही

नहीं है, तो व्याख्यान कहाँ से आएगा?

प्रश्नकर्ता : आख्यान और व्याख्यान का मर्म क्या है?

दादाश्री : दो–चार लोगों के साथ बातें करें, वह आख्यान कहलाता है और पूरे समूह में बोलें तो व्याख्यान कहलाता है।

सावधान, अनुकूल में

प्रश्नकर्ता : बिना राग का प्रेम अनुभव में नहीं आया है, अर्थात् वह चीज़ सामान्य कल्पना से परे होती है।

दादाश्री : इन दूसरे सभी लोगों के साथ का हिसाब द्वेषवाला होता है, उनका 'समभाव से *निकाल*' करना पड़ता है। वे प्रतिकूल कषाय कहलाते हैं और यह रागवाला अनुकूल कषाय कहलाता है। अनुकूल को जब छोड़ना हो तब छोड़ा जा सकता है, परन्तु अनुकूल में बहुत जागृति रखनी पड़ती है। प्रतिकूल कड़वा लगता है, और कड़वा लगता है इसलिए तुरन्त ही जागृति आ जाती है। अनुकूल मीठा लगता है।

हमें स्वरूपज्ञान नहीं हुआ था, तब अनुकूल में हम बहुत सावधान रहते थे। प्रतिकूल में तो हमें खबर मिल जाएगी। अनुकूल से ही सब भटक गए हैं। किसीके घर में साँप घुस गया और उसने उसे देख लिया हो तो उसे हमें यह नहीं कहना पड़ता कि साँप घुस गया है, जगते रहना! यानी कि जागृत रहने जैसा यह जगत् है। ये जो भूलें करवाती है न, जो झोंका खिला देती है, वह सब अनुकूलता ही करवाती है।

बंध - निर्जरा

निर्जरा होती है तब, कभी एकदम कड़वी तो कभी एकदम मीठी लगती है। उन दोनों को हमें कड़वे–मीठे से अलग रहकर 'पड़ोस' में रहकर 'देखते' रहना है। कड़वा–मीठा, वह एक निरंतर का पौद्गलिक स्वभाव है।

प्रश्नकर्ता : शरीर में *निर्जरा* भले ही हो। सँभालने जैसा नहीं है।

दादाश्री : सँभालना तो कुछ होता ही नहीं न? और सँभालने से कुछ सँभलता भी नहीं है न? सँभालना है खुद का स्वरूप!

जैसे भावों से बंध पड़ा हो, वैसे भाव से *निर्जरा* होगी। वह उसका स्वभाव ही है। बंध 'खुद की' हाज़िरी में पड़ा था। परन्तु यह *निर्जरा* गैरहाज़िरी में भी हो सकती है। हमें यदि *संवर* (शुद्ध उपयोगपूर्वक कर्म की निर्जरा जिससे नये कर्म चार्ज नहीं होते) हो फिर भी *निर्जरा* हो सकती है। लेकिन बंध 'स्वयं की' गैरहाज़िरी में नहीं पड़ता। अत: जिस भाव से बंध पड़े थे, वे खुद की हाज़िरी में पड़े थे। अब *निर्जरा* भी उसी भाव से होगी, उसे हमें देखते रहना है कि अरे! ऐसा बंध पड़ गया होगा, ऐसा लगता है।

प्रश्नकर्ता : जिस भाव से बंध पड़ते हैं, उसी भाव से बंध छूट सकते हैं क्या?

दादाश्री : उस भाव से नहीं। भाव से बंध नहीं छूटता है। उसी भाववाले परिणाम उत्पन्न होते हैं। जिन्हें क्रूर भाव का बंध पड़ा हुआ हो, तो वह परिणाम देते समय क्रूर दिखते हैं। परन्तु आज वे भाव हमारे खुद के नहीं हैं। यह तो *निर्जरा* हो रही है। उसे देखते रहना है कि क्या *निर्जरा* हो रही है! उस पर से पता चलता है कि क्या बंध पड़ा था, किस भाव से बंध पड़ा था, इस *निर्जरा* का रूटकॉज़ क्या था।

देव-देवियों का विचरण

प्रश्नकर्ता : सात क्षेत्र, उनमें देव विचरण करते हैं क्या?

दादाश्री : देव तो जहाँ पर मनुष्य हों वहाँ पर जा सकते हैं। खास तौर पर तीर्थंकर हों, वहाँ पर देवी-देवता अधिक जाते हैं। अपनी इस भूमि पर कम आते हैं। अपनी भूमि का निरी गंदगीवाली, दुर्गंधवाली है, इसलिए यहाँ देवी-देवता नहीं पधारते। 'ज्ञानी' हों, वहाँ पर देवी-देवता आते हैं। ये विधि-पूजा वगैरह करवाते हैं तो वहाँ पर देवी-देवता जाते हैं, फिर भले ही वहाँ पर 'ज्ञान' न हो!

धर्म : अधर्म - वह एक कल्पना

ये धर्म तो कैसे हैं? अधर्म को धक्का मारना, उसका नाम धर्म। सिर्फ धर्म को संग्रह करके रखना और अधर्म को धक्का मारना। किसीको धक्का मारना, क्या वह अच्छा कहलाता है?

प्रश्नकर्ता : अधर्म को धर्म में बदल देना चाहिए।

दादाश्री : ये धर्म और अधर्म, दोनों कल्पित ही हैं न? हमें कल्पना से बाहर निकलना है या कल्पित में ही भटकते रहना है? कल्पित तो अनंत जन्मों से भटका रहा है। धर्म अर्थात् किसीके लिए अच्छा करना, जीव मात्र को सुख देना। परन्तु सुख देनेवाला कौन है? तब कहे, 'इगोइज़म।' धर्म का फल भौतिक सुख-शांति मिलती है और अधर्म के फल स्वरूप भौतिक अशांति रहती है। परन्तु इस तरह धर्म करते हुए भी जानवर में जाना पड़ता है। जानवर में किस तरह जाते हैं? *अणहक्क* का इकट्ठा करने का विचार आए, वह पाशवता की निशानी है। उससे पशुयोनि बंधती है। हक़ का भोगो, हक़ की स्त्री, हक़ के बच्चे, हक़ के बंगले भोगो, वह मानवता कहलाती है और खुद के हक़ का दूसरों को दे दें, वह देवत्व कहलाता है।

मुक्ति का साधन - शास्त्र या ज्ञानी?

जो ज्ञान हितकारी नहीं होता, उसे कब तक सुनना चाहिए? 'ज्ञानी पुरुष' नहीं मिलें तब तक। जब तक इंदौरी गेहूँ नहीं मिलें, तब तक राशन के गेहूँ मिलें तो वही खाने पड़ेंगे न? परन्तु यदि 'ज्ञानी पुरुष' का संयोग मिल जाए तब तो फिर आप माँगना भूल जाओगे, आध्यात्म में जो माँगो वह मिलेगा, क्योंकि 'ज्ञानी पुरुष' मोक्षदाता पुरुष हैं। मोक्ष का दान देने आए हैं। खुद मुक्त हो चुके हैं। तरणतारण हो चुके हैं। खुद तर चुके हैं और अनेकों को तारने में समर्थ हैं। वहाँ सभी चीज़ें मिलती हैं। मुझे आप मिले हो, इसलिए बात कर रहा हूँ आपसे। सर्व जंजालों में से मुक्त होने का यह साधन है।

प्रश्नकर्ता : धार्मिक पुस्तकें जंजाल में से मुक्त होने के लिए ही लिखी गई हैं न?

दादाश्री : हाँ, परन्तु धार्मिक पुस्तकें जंजाल में से मुक्त होने का किसी भी जगह पर बताती ही नहीं। वे तो धर्म करने के लिए हैं। उससे जगत् पर अधर्म नहीं चढ़ बैठता। इसलिए ऐसा कुछ अच्छा सिखाते हैं। उससे सांसारिक सुख मिलते हैं, अड़चनें नहीं आती, खाने-पीने को मिलता है, लक्ष्मी मिलती है, इसलिए धर्म सिखाते रहते हैं। यह तो कभी ही 'ज्ञानी पुरुष' होते हैं, मैं जो बातें कर रहा हूँ, वे बातें कहीं भी होती नहीं। पुस्तकों में भी नहीं होतीं, क्योंकि इसका वर्णन हो सके ऐसा नहीं है। यह सब 'ज्ञानी पुरुष' के पास ही होता है। वे आपको जो समझाते हैं, वह आपसे बुद्धि द्वारा पकड़ा जा सकता है, और आपका आत्मा कबूल करे तभी मानना।

'ज्ञानी' के पास सीधा होना पड़ेगा। *आड़ाई* नाम मात्र को भी नहीं चलेगी और आपकी चिंता जाए, मतभेद जाएँ तो समझना कि सुनने का कुछ फल आया है। यह तो एक भी मतभेद नहीं गया, ध्यान नहीं सुधरा। आर्तध्यान और रौद्रध्यान होता है। उसका अर्थ यह कि धर्म का एक भी अक्षर पाया नहीं, फिर भी मन में ऐसा मान बैठते हैं कि 'चालीस वर्षों से मैं धर्म कर रहा हूँ, मंदिरों में, उपाश्रयों में पड़ा रहता हूँ', परन्तु उसका कोई अर्थ नहीं है। मीनिंगलेस है। आप अपना टाइम बिगाड़ रहे हो!

खुद अनंत दोषों का भाजन है, फिर भी खुद का एक भी दोष नहीं दिखता। खुद के सेल्फ की ओर मुड़ने के बाद इस 'चंदूभाई' पर आपका पक्षपात नहीं रहता है, तब दोष दिखते हैं। अभी तो 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा मानते हो आप और जज भी आप, वकील भी आप और अभियुक्त भी आप! बोलो अब, एक भी दोष दिखेगा? इसका कब अन्त आएगा? इस तरह कब तक भटकते रहेंगे? अब काल बहुत विचित्र आनेवाला है। 'ज्ञानी पुरुष' मिल गए हैं, इसलिए भावना करके हमें अपना काम निकाल लेना है। वर्ल्ड में कोई ऐसी चीज़ नहीं है कि जो हम दें तो 'ज्ञानी पुरुष' को काम में आए। क्योंकि उन्हें किसी भी चीज़ की भीख ही नहीं होती। उन्हें

लक्ष्मी की भीख नहीं होती, कीर्ति की भीख नहीं होती, विषयों की भीख नहीं होती, मान की भीख नहीं होती, निरीच्छक, ऐसे 'ज्ञानी पुरुष', जिनके दर्शन मात्र से ही पाप धुल जाते हैं! उनके पास बैठने से अपार शांति का अनुभव होता है।

कहाँ वीतराग मार्ग और कहाँ...

जैसे-जैसे अज्ञानता बढ़ती है, मोह बढ़ता है, वैसे-वैसे मोह के साधन अधिक प्राप्त होते हैं और खुद अपने आपको न जाने क्या मानता है कि मेरे कितने पुण्य होंगे कि मुझे यह बंगला मिला, पंखे मिले! इससे तो बल्कि फँसता जाता है। कीचड़ में डूबने के बाद जैसे-जैसे निकलने का प्रयत्न करता है, वैसे-वैसे अधिक फँसता जाता है, ऐसी दशा होती है! कहाँ वीतरागों का मोक्षमार्ग और कहाँ यह दशा?

सम्यक् आचार भी किसी जगह पर नहीं रहा है, लोकाचार हो गया है। सम्यक् आचार को तो देखकर ही हमलोग खुश हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : लोकाचार और सम्यक्आचार, इन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : लोकाचार अर्थात् लोगों का देखकर आचरण करते रहना और सम्यक् अर्थात् विचारपूर्वक आचार, संपूर्ण रूप से नहीं परन्तु जितने-जितने अंशों तक विचारपूर्वक करता है, उतने अंश का सम्यक् आचार उत्पन्न होता है, परन्तु जो सम्यक् आचार होता है, वह तो सर्वांश ही होता है। भगवान के शास्त्रों से मेल खाए वैसा होता है।

एक भी जीव ऐसा नहीं होगा कि जो सुख नहीं ढूंढ़ रहा हो! और वह भी फिर शाश्वत सुख ढूंढ़ता है। वह ऐसा समझता है कि लक्ष्मीजी में शाश्वत सुख है। परन्तु उसमें भी भीतर जलन खड़ी होती है। जलन होना और शाश्वत सुख मिलना, वह कभी भी होगा ही नहीं। दोनों विरोधाभासी हैं। इसमें लक्ष्मीजी का दोष नहीं है, उसका खुद का ही दोष है। यह तो लक्ष्मीजी की ओर ध्यान देता है और दूसरी किसी ओर देखता ही नहीं

है। इसलिए हमलोगों के संस्कार बिक गए हैं, गिरवी रख दिए गए हैं। इसे जीवन जीया किस प्रकार कहा जाएगा? हम हिन्दुस्तान की आर्य प्रजा कहलाते हैं। आर्यप्रजा को ऐसा शोभा नहीं देता। आर्यप्रजा में तीन चीज़ें होती हैं। आर्यआचार, आर्यविचार और आर्यउच्चार। अभी वे तीनों ही अनाड़ी हो गए हैं! और मन में न जाने क्या मानते हैं कि समकित हो गया है और मोक्ष हो जाएगा! अरे, तू जो कर रहा है उससे तो लाख जन्मों तक भी ठिकाना नहीं पड़ेगा। मोक्षमार्ग ऐसा नहीं है।

पुण्य का राहबर

प्रश्नकर्ता : जब तक मोक्ष के मार्ग पर नहीं पहुँच जाएँ, तब तक पुण्य नाम के राहबर की तो ज़रूरत पड़ेगी न?

दादाश्री : हाँ, उस पुण्य के राहबर के लिए तो लोग शुभ-अशुभ में पड़े हुए हैं न? उस राहबर से सबकुछ मिलेगा, परन्तु मोक्षमार्ग पर चलते हुए उससे पुण्य बँधता है। लेकिन ऐसे पुण्य की ज़रूरत नहीं है। मोक्ष में जानेवाले के पुण्य तो कैसे होते हैं? जगत् में सूर्यनारायण उगे या नहीं उसे तो वह भी पता नहीं चलता और पूरी ज़िन्दगी निकल जाती है, ऐसे पुण्य होते हैं! तो फिर ऐसे कचरा पुण्य का क्या करना है?

प्रश्नकर्ता : यह मार्ग नहीं मिले, तब तक तो उस पुण्य की ज़रूरत है न?

दादाश्री : हाँ, वह ठीक है, परन्तु लोगों के पास पुण्य कहाँ साबुत बचे हैं? कुछ भी ठिकाना नहीं, क्योंकि आपकी क्या इच्छा है? तब कहता है कि पुण्य करूँगा तो पाप का उदय नहीं आएगा। जब कि भगवान क्या कहते हैं? तूने सौ रुपये का पुण्य बाँधा तो तेरे खाते में सौ रुपये जमा होंगे। उसके बाद दो रुपये जितना पाप किया यानी कि किसी व्यक्ति को 'हट, हट दूर खिसक', ऐसा कहा, उसमें थोड़ा तिरस्कार आ गया। अब इसका जमा-उधार नहीं होता है। भगवान कोई कच्ची माया नहीं हैं। यदि पुण्य-पाप का जमा-उधार होता, तब तो इन बनियों के वहाँ थोड़ा भी दुःख नहीं होता! परन्तु यह तो आप सुख भी भोगते हो और दुःख भी भोगते

हो। कैसे पक्के (मोक्ष के लिए पक्के) हैं भगवान! माइनस (बाकी) तो करते ही नहीं!

जहाँ कषाय वहाँ संसार

स्वरूपज्ञान के बाद कुछ भी करना नहीं होता है। इसलिए हमने कहा है कि कुछ करना मत। करती है दूसरी शक्ति और लोग यों ही सिर पर लेकर घूमते हैं, उसके कारण बल्कि जन्म बढ़ते हैं।

जहाँ कषाय हैं, वहाँ पर निरे परिग्रह के गट्ठर ही हैं। फिर वह गृहस्थी हो या त्यागी हो या हिमालय में पड़ा रहता हो! कषाय का अभाव है वहाँ परिग्रह का अभाव है। फिर भले ही वह राजमहल में रहता हो! मेरे पास कहाँ परिग्रह हैं? लोगों को लगता है कि दादा परिग्रही हैं। परिग्रही यानी सिर पर बोझा। हमें कभी भी बोझा नहीं लगता। शरीर का भी बोझा हमें नहीं लगता! फिर भी ये दादा खाते हैं, पीते हैं, विवाह में जाते हैं, स्मशान में जाते हैं!!!

वीतराग इतना ही देखते हैं कि कषाय का अभाव है या नहीं? फिर वे त्यागी की गद्दी नहीं देखते और गृहस्थी की गद्दी भी नहीं देखते! कषाय का अभाव है या नहीं इतना ही देखते हैं। या फिर कषायमंदता बरतती है या क्या? साधुओं में कुछ, दो-पाँच प्रतिशत भद्र स्वभावी, मंदकषायी होते हैं।

प्रश्नकर्ता : वे समझदारी में मंद कहलाते हैं?

दादाश्री : समझदारी में नहीं, यों ही स्वाभाविक भद्र, फिर भी उन्हें भगवान ने कषाय रहित नहीं कहा। 'मैं हूँ', 'मैं हूँ' बोलते हैं तो वह कषाय है।

कृपालुदेव की पुस्तकें पढ़ने से मंदकषायी हुआ जा सकता है, परन्तु वह लोगों को समझ में नहीं आया। मंदकषायी किसे कहते हैं? कषाय उत्पन्न होते हैं उसका खुद को पता चलता है, परन्तु दूसरे किसीको पता नहीं चलने देते। कषायों को मोड़ा जा सके ऐसी दशा। कषाय संसार का

स्वरूप हैं और अकषाय मोक्ष स्वरूप है। कषाय मूल है। यदि कषाय गए तो काम हो गया, नहीं तो साधु भी नहीं और संन्यासी भी नहीं। इसके बदले तो मंदकषायवाले गृहस्थी अच्छे।

वृद्धों की व्यथा

ये भाई स्वभाव से मंदकषायी हैं, परन्तु 'ज्ञान' के बिना चित्त किसमें रहेगा? पूरे दिन व्यवसाय में, बच्चों में, कोई आया हो उसमें, खाने-पीने में चित्त चला जाता है। चित्त सारा इन्हीं में बिखर जाता है। इससे पुण्य मिलता है परन्तु अब कब तक अनाज की बालें काटें? बाजरा बोओ, काटो, और खाओ। बोओ, काटो और खाओ। ऐसा काम कब तक करते रहें?

फिर, बिना पूछे सलाह भी देते हैं! बेटा पिताजी से नहीं पूछे फिर भी, 'खड़ा रह, खड़ा रह, तू भूल कर लेगा' करके सलाह दे आता है। भगवान कहते हैं कि बच्चे बहुत परेशानी में पड़ गए हों, तब जवाब देना। हाँ, वह पूछता रहे, तब दुनियादारी में हमें जवाब देना ही पड़ेगा। बगैर पूछे खुद के उपयोगवाला कौन अक्लमंदी करेगा? आप रुपये गिन रहे हों और बेटा आपसे व्यवसाय की बात पूछने आए, तब आपको ऐसा होता है कि यह बातें कम करे तो अच्छा। वैसे ही आत्मा के लिए निरंतर होना चाहिए। फिर भी व्यवहार है तो उसमें पड़े बगैर चलेगा नहीं, परन्तु भीतर जान-बूझकर हाथ नहीं डालना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : बेटे को अनुभव कम होता है और कुछ भूल करे ऐसा दिखे, तो कहने का मन होगा न?

दादाश्री : यह बात तो आपके पिताश्री होते न, तो वे भी आपको कहते कि 'भाई अभी कच्चा है!' और उनके पिताश्री होते तो वे भी ऐसा ही कहते! यह हिन्दुस्तान का रिवाज है। इसे ही ओवरवाइज़ होना कहा है भगवान ने। साठ वर्ष के पिता थे, वे भी कहेंगे कि अभी बच्चा है न! अरे, कैसा बच्चा? दादा हो गया है न अब!

यह आपको जो 'ज्ञान' है न, वह अपने गुजरातियों में अंतिम घड़ी

में पड़े हों, फिर भी ऐसा होता है कि मेरा शरीर चला जाएगा, फिर ये बच्चे क्या करेंगे? यह सब बुरी आदत है एक प्रकार की। 'व्यवस्थित' करनेवाला है। आप देखोगे तभी तक उसे पकड़कर रखोगे न! और आपकी दृष्टि से बाहर चला जाए तब? इसलिए हमें पूछे उसका ही जवाब। बेटे को अनुभव हो या नहीं हो, वह हमें नहीं देखना है। व्यापार कर रहा हो, तब कभी मन ऐसा भी कहता है कि चलो, आज ज़रा ग्राहक ज़्यादा हैं तो बेटा धोखा खा जाएगा। इसलिए चलो, मैं दुकान पर जाकर बैठूँ! ऐसी पीड़ा में हम कहाँ पड़ें? हमने बेटों को बड़ा किया, पढ़ाया, शादी करवाई, फिर अब क्या लेना-देना? हमें अपने आत्मा का करना है। अब 'सब सबकी सँभालो' ऐसा नियम है। ये ग्राहक-व्यापारी के संबंध हैं। पहले अज्ञानता के कारण गहरे उतर गए थे। अब हमें 'ज्ञान' से समझ में आ जाना चाहिए।

अक्रम मार्ग से अकषायावस्था

जिसने कषायभाव को जीता, वह अरिहंत कहलाया! जहाँ 'मैं शुद्धात्मा हूँ' है, वहाँ कषायभाव नहीं रहते। जहाँ शुद्ध उपयोग हो, वहाँ पर कषायभाव नहीं रहते। जहाँ शुद्धात्मा है वहाँ कषाय नहीं हैं और जहाँ कषाय हैं, वहाँ शुद्धात्मा नहीं है। 'अक्रम ज्ञान' में कषाय होते ही नहीं। क्रमिक मार्ग में ऐसा है कि *अशाता* वेदनीय हो तो कर्म बँधे बगैर रहते ही नहीं। जब कि 'अक्रम' में उसमें कर्म नहीं बँधते परन्तु उतने समय तक वेदना भोगनी ही पड़ती है।

प्रश्नकर्ता : यह 'अक्रम ज्ञान' की महत्ता है न?

दादाश्री : बहुत बड़ी महत्ता है! गज़ब का विकास है यह! नहीं तो एक अंश भी कषाय कम नहीं होते।

सत्संग की आवश्यकता

जीव अव्यवहार राशि में से व्यवहार राशि में आया तो मोक्ष में जाने तक 'व्यवस्थित' है। झंझट नहीं करे तो 'व्यवस्थित' मोक्ष में ही ले जाए,

परन्तु झंझट किए बगैर रहता ही नहीं न?

प्रश्नकर्ता : तो आपके हिसाब से सत्संग भी बेकार का झंझट ही है न?

दादाश्री : हाँ, झंझट ही कहलाएगा। यह करने की ज़रूरत ही नहीं है। यह तो गृहित मिथ्यात्व के कारण उल्टा किया है, इसलिए सीधा करना पड़ रहा है। चाय-चीनी धीरे-धीरे पिघलती ही रहती है न? उसी प्रकार यह आत्मा धीरे-धीरे मोक्ष की तरफ ही जा रहा है।

सत्संग भी अंत में आपसे क्या कहता है? कुछ करना मत। जो परिणाम हो उसे देखते रहो।

नियतिवाद

प्रश्नकर्ता : सब 'व्यवस्थित' हो तो करने की कोई ज़रूरत ही नहीं है। विरोधाभास लगता है।

दादाश्री : यह सब 'व्यवस्थित' ही है।

प्रश्नकर्ता : तो वह नियतिवाद हुआ या सबकुछ निश्चित ही है?

दादाश्री : नहीं, नियतिवाद होता, तब तो वह आग्रह हो गया। हम जीत गए ऐसा वह कहेगा, फिर तो नियति भगवान ही मानी जाएगी। सिर्फ नियति ही एकेला कारण नहीं है। समुच्चय कारणों से हुआ है। इसलिए हम कहते हैं कि 'ओन्ली साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' (सिर्फ वैज्ञानिक संयोगिक प्रमाण) है। नियतिवाद होता तब तो आराम हो जाता! नियतिवाद अर्थात् यहाँ से समुद्र में डाला, तो किनारे पर पहुँचेगा ही।

प्रश्नकर्ता : नियतिवाद अर्थात् प्रारब्धवाद ऐसा कहा है।

दादाश्री : प्रारब्ध और नसीब, वे नियति नहीं हैं। नियति अलग वस्तु है। नियति अर्थात् इस संसार के जीवों का जो प्रवाह चल रहा है वह किसी नियति के नियम का अनुसरण करके चल रहा है, परन्तु दूसरे बहुत सारे कारण आते हैं, जैसे कि काल है, क्षेत्र है।

शुद्ध चिद्रूप

प्रश्नकर्ता : चित्त की शुद्धि किस तरह होती है?

दादाश्री : यह चित्त की शुद्धि ही कर रहे हो न? चित्त का अर्थ लोग अपनी-अपनी भाषा में समझते हैं, चित्त नाम की वस्तु कुछ अलग है ऐसा समझते हैं। चित्त अर्थात् ज्ञान-दर्शन मिलाने से जो भाव उत्पन्न होता है वह। चित्त की शुद्धि करनी अर्थात् ज्ञान-दर्शन की शुद्धि करनी। शुद्धात्मा को क्या कहते हैं? शुद्ध 'चिद्रूप'। जिसका ज्ञान-दर्शन शुद्ध हुआ है, ऐसा जो स्वरूप खुद का है, वही शुद्ध चिद्रूप है।

प्रश्नकर्ता : जिसे हम सच्चिदानंद कहते हैं वह?

दादाश्री : सच्चिदानंद तो अनुभवदशा है और यह शुद्धात्मा वह प्रतीति और लक्ष्य दशा है। वही की वही वस्तु, शुद्ध चिद्रूप और शुद्धात्मा, एक ही चीज़ है। हम स्वरूप का 'ज्ञान' देते हैं तब आपका चित्त संपूर्ण शुद्ध हो जाता है। अब सिर्फ यह बुद्धि ही परेशान करती है, वहाँ सँभाल लेना है। बुद्धि को सम्मानपूर्वक वापिस भेज देना। जहाँ खुद का स्वरूप है, वहाँ पर अहंकार नहीं है। कल्पित जगह पर 'मैं हूँ' बोलना वह अहंकार और मूल जगह पर 'मैं', उसे अहंकार नहीं कहते। वह निर्विकल्प जगह है।

मनुष्य में 'मैं-तू' का भेद उत्पन्न हुआ, इसलिए कर्म बाँधता है। कोई जानवर बोलता है कि 'मैं चंदूलाल हूँ?' उसे यह झंझट ही नहीं न? अर्थात् यह आरोपित भाव है, उससे कर्म बँधते हैं।

निर्-अहंकार से निराकुलता

जहाँ अहंकार शून्यता पर है वहाँ निराकुलता प्राप्त होती है। जब तक अहंकार शून्यता पर नहीं आ जाता, तब तक निराकुलता एक क्षणभर के लिए भी प्राप्त नहीं होती। चैन प्राप्त होता है। चैन और निराकुलता में बहुत फर्क है।

प्रश्नकर्ता : वह फर्क समझाइए।

दादाश्री : अहंकार जाने के बाद निराकुलता उत्पन्न होती है और,

कोई भी संयोग नहीं हो तब चैन मिलता है। लोग चैन ढूंढ़ते हैं। निराकुलता तो सिद्ध का १/८ गुण है।

प्रश्नकर्ता : मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, उनमें सबसे अधिक शक्ति तो चित्त की है न?

दादाश्री : ऐसा है न, चित्त मिश्रचेतन है और बाकी सब तो स्वभाव से *पुद्गल* है। चित्त, वह ज्ञान-दर्शन है। वह शुद्ध हो जाए तो शुद्धात्मा हो जाएगा, और जब तक इस संसार की जिसे बात पसंद हो, संसार में ही चित्त भटकता रहता हो, तो वह शुद्धात्मा नहीं है। इस 'ज्ञान' के प्रभाव से चित्त शुद्ध हो जाता है, इसलिए स्टेडीनेस (स्थिरता) आती है।

आधार-आधारी संबंध

खुद का बनाया हुआ महल हो तब तो गिरा दें, परन्तु यह महल तो प्रकृति का बनाया हुआ है। इसलिए पद्धतिपूर्वक समझ-समझकर करने जैसा है।

'ज्ञानी पुरुष' जानते हैं कि यह महल किस तरह से बनाया गया था और इसके कंगूरे कहाँ पर रखे हुए हैं, क्या करने से पहली मंजिल टूटेगी, फिर दूसरी मंजिल टूटेगी, वह सबकुछ ही 'ज्ञानी' जानते हैं।

खुद आधार देते थे, उससे जगत् खड़ा हुआ था। 'मैं चंदूभाई हूँ' तब तक आधार देते थे आप, अब 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो आधार देना बंद हो गया, इसलिए निराधार हो गया। उससे सारी वस्तुएँ गिर जाती हैं। इस हाथ के आधार पर वस्तुएँ हैं। हाथ हटाया तो वस्तु गिर जाएगी। वर्ना छोड़ने से छूटेगा नहीं।

प्रश्नकर्ता : आधार से लिपटी हुई जो वृत्तियाँ हैं, वे किस तरह छूटेंगी?

दादाश्री : 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह लक्ष्य रहता है आपको?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तो फिर आधार रहा ही नहीं। वृत्ति रहेगी ही नहीं। वह जो वृत्ति रहती है वह निराधार की है, आधार की नहीं है। जब से आधारी का आधारभाव छूट जाता है, फिर जो निराधारी हुआ उसकी ही वे वृत्तियाँ हैं। हमें यह लक्ष्य में रहना चाहिए कि ये वृत्तियाँ हमारी नहीं हैं। हममें वृत्ति नाम का कुछ है ही नहीं। हम लोगों की तो निजवृत्ति निजभाव में ही रहा करती है, स्वाभाविक होने के बाद!

अकर्त्तापद द्वारा मनोमुक्ति

खुद शुद्धात्मा हो गया इसलिए अकर्त्ता बना। फिर मन की गाँठ का छेदन होता रहता है, फिर गाँठ फूटे और कर्त्ता बने तो मन उत्पन्न हो जाता है। आप अकर्त्तापद में होंगे, तब भी मन की गाँठें तो फूटती ही रहेंगी। मन उछलकूद करे, फिर भी *निर्जरा* होती रहेगी, परन्तु उस समय 'आपको' उपयोग में रहना चाहिए कि क्या हो रहा है और क्या नहीं? खराब विचार आएँ तो भी हर्ज नहीं और अच्छे विचार आएँ तो भी हर्ज नहीं। क्योंकि जिसे दुकान खाली करनी है, उसे तो फिर, वह माल सड़ा हुआ हो, तो भी निकाल देना है और अच्छा हो तो भी निकाल देना है।

'कर्त्तापद छे आग्रही, अकर्त्तापद छे निराग्रही।' - नवनीत।

शुभ या अशुभ का अब आग्रह नहीं है। दान देने का भी आग्रह नहीं है। उदय में आया हो तो दान देंगे, तब उसकी *निर्जरा* हो जाएगी।

'अविचारपद वह शाश्वत ज्ञान।'

खुद जब तक विचार में तन्मयाकार है, तब तक विचार पद कहलाता है और खुद विचार से अलग हुआ तो वह अविचारपद कहलाता है।

अंतिम दर्शन

प्रश्नकर्ता : महाविदेह क्षेत्र में किस तरह जाया जा सकता है? पुण्य से?

दादाश्री : ये हमारी आज्ञा का पालन करे, उससे इस जन्म में पुण्य

बँध ही रहा है। वह महाविदेह क्षेत्र में ले जाता है। आज्ञा पालने से धर्मध्यान होता है। वह सभी फल देगा।

प्रश्नकर्ता : जो शुभ ध्यान होता है, वह भी धर्मध्यान माना जाता है न?

दादाश्री : हाँ, परन्तु शुभ ध्यान या अशुभ ध्यान, कर्त्ता बनें तभी होता है। और इस 'ज्ञान' के बाद विचार आए कि किसीको दान दो तो वह सभी *निर्जरा* है।

प्रश्नकर्ता : यहाँ पर सत्संग में हम भक्तिपद गाते हैं, उसका क्या?

दादाश्री : वह सब हमारी आज्ञा में आ गया। ज्ञानी की आज्ञारूपी धर्मध्यान का फल सबसे उच्च मनुष्यगति मिलती है। उससे अगला जन्म बहुत सुंदर मिलेगा, हमें तीर्थंकर मिलेंगे, फिर और क्या चाहिए? हम सबको आत्मा तो प्राप्त हो चुका है, सिर्फ तीर्थंकर के अंतिम दर्शन करने बाकी रहे हैं, वह एक ही बार हों, तो बहुत हो गया। केवळज्ञान रुका हुआ है, वह पूरा होगा। 'ज्ञानी पुरुष' तो स्वयं जहाँ तक पहुँचे होते हैं, वहाँ तक ले जाते हैं। उससे आगे नहीं ले जा सकते। आगे तो, जो आगेवाले जो हों उनके पास ले जाते हैं, उसमें किसीका चलेगा ही नहीं न?

एसिड का बर्न या मुक्ति का आस्वादन?!!!

अपने यहाँ वे एक भाई आते हैं न, उनका भतीजा एसिड से जल गया था। अंगारों में गिरना अच्छा परन्तु एसिड बहुत भयंकर है। सभी डॉक्टर घबरा गए कि यह लड़का तीन घंटों से अधिक नहीं जीएगा। उस लड़के को हमने 'ज्ञान' दिया था। तो डॉक्टरों से हँसते-हँसते उसने क्या कहा कि, 'आपको मुझे जहाँ से काटना हो वहाँ से काटो। मैं अलग और राजू अलग!' यह सुनकर सब डॉक्टर आवाक् रह गए! वह लड़का बच गया। वह मर ही जाता, यदि यह 'ज्ञान' नहीं मिला होता तो। आधा तो साइकोलोजिकल इफेक्ट से मनुष्य मर जाता है। मुझे क्या हो गया? किस तरह हो गया? यह तो ठीक ही नहीं होगा। जब कि राजू ने तो कहा कि, 'मैं अलग और

राजू अलग।' मैं जब अस्पताल में उससे मिलने गया तब वह बहुत आनंद में था। और कहने लगा, 'मेरे साथ राजू सो गया है!'

सभी डॉक्टर आश्चर्यचकित हो गए! ऐसा केस उन्होंने कभी देखा ही नहीं था। यह सब क्या है? तब कहें कि, 'दादा हैं इसके पीछे।' 'इस ज्ञान' का प्रताप है। वह भी फिर क्षत्रियकुल का था। दादा ने कहा कि, 'तू अलग ही है, राजू से।' इसलिए उसने अलग ही माना और आप वणिक कुलवालों को तो छुए बगैर रहेगा क्या?

प्रश्नकर्ता : छू जाता है दादा। यह जलना किस कारण का परिणाम है?

दादाश्री : वह तो हम क्षत्रियों के काम ही ऐसे होते हैं। *अशाता* वेदनीय किसीको दी हो तो उतनी *अशाता* वेदनीय हमें भुगतनी पड़ती है, फिर कोई भी देहधारी हो, मनुष्य हो या जानवर हो! यह सब पैसे कमाने के लिए नहीं किया। *अशाता* वेदनीय का यह फल है। किसीको थोड़ा भी दु:ख हो वैसा त्रास दें, तब ऐसा फल आता है। क्षत्रिय लोग *अशाता* देना भी जानते हैं और भोगना भी जानते हैं। जब कि आप तो *अशाता* करते भी नहीं और भोगते भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : यह पूर्वजन्म का होगा न?

दादाश्री : यह पूर्वजन्म के 'कॉज़ेज़' के 'इफेक्ट्स' हैं।

माता के पेट में से बच्चा बाहर आता है, तब वह तो उल्टे सिर होता है। उससे तो घूमा भी नहीं जाता। फिर भी वह बाहर आता है तब माँ धकेलती है या डॉक्टर खींचता है या बच्चा आता है? कौन करता है यह? ये सब इफेक्ट्स हैं, परिणाम हैं। पूर्व में जो कॉज़ेज़ किए थे, उनके परिणाम स्वाभाविक रूप से आते हैं।

मित्र शत्रु या शत्रु मित्र?

'नीपजे नरथी तो कोई न रहे दु:खी,
शत्रु मारीने, सौ मित्र राखे।'

मनुष्य से यदि हो सकता तो इन सभी शत्रुओं को मारकर मित्रों को ही रखता। फिर भी बिना शत्रु की भूमि नहीं हो सकेगी। उन मित्रों में से ही फिर से शत्रु खड़े होंगे। इसके बदले तो यदि उन शत्रुओं को रहने दिया होता न तो वे मित्र शत्रु बनते तब वे शत्रु मित्र बन गए होते! तब वे काम आते! मारने जैसा यह जगत् नहीं है। कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं होती। आप पक्का मत कर लेना कि यह हमेशा के लिए मेरा दुश्मन है।

प्रश्नकर्ता : 'नमो अरिहंताणं' में जो बोलते हैं और आपने जो शत्रु और मित्र की बात की, वह क्या है?

दादाश्री : अरिहंतवाली बात तो, आंतरशत्रुओं के लिए है। आंतरशत्रु अर्थात् क्रोध-मान-माया-लोभ का जिन्होंने हनन कर दिया है, वैसे अरिहंत भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

स्वाभाविक होने में नैमित्तिक कारण होते हैं। आंतरशत्रुओं को पहचानो कि ये अपने विरोधी हैं, ये शत्रु हैं। मारना किसीको भी नहीं है। शत्रु पर द्वेष नहीं रखना है, तो अब इन शत्रुओं को मैंने बुलाया है या शत्रुओं के बुलाने से मैं आया हूँ, उसकी जाँच करो। फिर शत्रु किस तरह से जाएँ, उनसे मुक्त किस तरह से हुआ जाए, उसकी जाँच करो।

साधना, साध्यभाव से-साधनभाव से

प्रश्नकर्ता : शत्रुओं का हनन करने के लिए जो साधना करने की आदत पड़ चुकी है, उससे उनका हनन हो जाएगा?

दादाश्री : ऐसा है न, साधना दो प्रकार की है :

(१) साधना, साध्यभाव के लिए ही करनी, वह।

(२) साधना, साधना के लिए करनी, वह।

साध्यभाव से साधना, वह अंतिम साधना कहलाती है और वह कुछ हद तक मनुष्य अपने आप कर सकता है। ये बेहद के साधन नहीं हैं।

बेहद के लिए तो 'ज्ञानी पुरुष' के निमित्त की ज़रूरत। वे मिल जाएँ तब उनसे हमें कहना है, 'आपने जिस पद को प्राप्त किया है, वह पद हमें भी प्राप्त हो ऐसी कृपा कीजिए।' सिर्फ कृपा की ही माँग करनी है। और उसमें भी 'ज्ञानी पुरुष' कर्त्ता नहीं हैं। वे निमित्त हैं। वे निमित्त होंगे तभी कार्य होगा, नहीं तो नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : साधनामार्ग में जो गुरु होते हैं, वे लोग खुद को निमित्तभाव जैसे नहीं मानते हैं।

दादाश्री : सच्ची बात है। वे उसमें खुद अपने आप को मानते हैं कि मुझे इतना करना ही चाहिए, मेरे शिष्यों को इतना करना ही चाहिए। खुद बँधते हैं और शिष्य भी बँधते हैं, परन्तु बँधते-बँधते आगे बढ़ते जाते हैं, प्रगति करते हैं और, ये तो 'ज्ञानी पुरुष', वे खुद नहीं बँधते और मुक्त करवाते हैं। कर्त्ताभाव बँधवाता है और निमित्तभाव मुक्त करवाता है।

पूरण-गलन और परमात्मा

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा ज्ञाता-दृष्टा मात्र है, तो कृपा-अकृपा वह मिलावट कौन करता है? किसके माध्यम से करवाता है?

दादाश्री : कोई मिलावट नहीं करता, यह सबकुछ *पुद्गल* ही है।

प्रश्नकर्ता : सब प्रेरणा *पुद्गल* की ही है?

दादाश्री : सबकुछ *पुद्गल* है। *पुद्गल* में अहंकार भी आ गया। क्रोध-मान-माया-लोभ सभीकुछ आ गया। सारा *पुद्गल पूरण-गलन* होता रहता है।

अहंकार भी *पूरण-गलन* होता रहता है। विवाह समारोह में जाओ और कोई जय-जय करे तो अहंकार का *पूरण* होता है, जय-जय नहीं करे तो फिर *गलन* होता है! क्रोध एकदम निकले तब ५०० डिग्री का होता है, फिर ४०० होता है, ३०० होता है, २००, १००, ज़ीरो हो जाता है।

उसी तरह लोभ भी *पूरण-गलन* होता है। सबकुछ *पूरण-गलन* होता रहता है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा और *पुद्गल* में फर्क क्या है?

दादाश्री : आत्मा एक ही वस्तु है। एक ही वस्तु अर्थात् वह बढ़ती-घटती नहीं है, एक ही स्वाभाविक वस्तु है। जब कि *पुद्गल* स्वाभाविक वस्तु नहीं है।

पुद्गल किसे कहते हैं? उसमें खाने का डाले, वह *पूरण* कहलाता है और संडास जाए, वह *गलन* कहलाता है। श्वास लिया वह *पूरण* और उच्छ्वास वह *गलन* है। यह *पुद्गल* पुर्गल में से बना है।

इस शरीर में *पुद्गल* और आत्मा दो ही वस्तुएँ हैं। यदि *पुद्गल* और आत्मा को अलग करना आ जाए तो उसे आत्मा मिल जाएगा। परन्तु ऐसी मनुष्य की शक्ति नहीं है, वह मनुष्य की मति से बाहर की बात है। यह बात बुद्धि से परे है! 'ज्ञानी पुरुष' में भगवान स्वयं बैठे हुए हैं, तो उनकी कृपा से क्या नहीं हो सकता?

ज्ञानी की कृपा

प्रश्नकर्ता : यहाँ सब बैठे हैं तो दादा भगवान की कृपा हर एक पर एक समान उतर रही है?

दादाश्री : नहीं, एक समान नहीं। आपका 'दादा भगवान' पर कैसा भाव है, उस पर आधारित है।

प्रश्नकर्ता : मानो कि मेरा बर्तन बड़ा है तो वह अधिक पानी लेगा और किसीका बर्तन लोटे जितना पानी लेगा। तो यह बर्तन पर आधारित है या भाव पर?

दादाश्री : उसमें बर्तन की ज़रूरत नहीं है। किसीको कुछ नहीं आता हो तो भी मैं कहूँ कि, 'कुछ नहीं आता है तो यहाँ पर बैठे रहना भाई, जा वे जूते साफ करते रहना।'

ज्ञानी के कृपापात्र बनना है, दूसरा कुछ करना नहीं है। कृपा प्राप्त करने में क्या रुकावट डालता है? हमारी आड़ाइयाँ।

प्रश्नकर्ता : वे आड़ाइयाँ नहीं निकालनी चाहिए?

दादाश्री : नहीं, वे जल्दी लाभ नहीं होने देतीं। हम आड़ाइयाँ देखें वहाँ पर करुणा रखते हैं। इस प्रकार करुणा रखते-रखते आड़ाइयाँ धीरे-धीरे निकलेंगी। वहाँ अधिक प्रयत्न करना पड़ता है।

शास्त्रों का पठन

प्रश्नकर्ता : सद्शास्त्रों के पठन से पापों का क्षय नहीं हो सकता?

दादाश्री : नहीं, उससे पुण्य ज़रूर बँधता है। पापों का क्षय नहीं होता। दूसरा नया पुण्य बँधता है, वह पुण्यानुबंधी पुण्य कहलाता है। सद्शास्त्र का अध्ययन करें, उसमें से स्वाध्याय होता है। इससे चित्त की एकाग्रता, मन की एकाग्रता बहुत सुंदर हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी पुरुष' के सत्संग के साथ सद्शास्त्र का पठन और मनन करना चाहिए न?

दादाश्री : वह ठीक है, परन्तु यदि ज्ञानी के सत्संग से फुल मार्क्स आ जाएँ, फिर पठन की ज़रूरत नहीं रही न? फुल मार्क्स आ जाने के बाद, इन सबका पठन करेंगे तो 'बोदरेशन' बढ़ेगा बल्कि। अब इतनी सुंदर जागृति होने के बाद टाइम बेकार जाएगा।

प्रश्नकर्ता : निमित्त की तरह पढ़ें तो?

दादाश्री : निमित्त की तरह ठीक है, परन्तु वह संयोगाधीन है। अर्थात् अपने काबू में नहीं है।

प्रश्नकर्ता : संयोगों पर काबू नहीं है, ऐसे कहना, वह अपने मन की कमज़ोरी नहीं कहलाएगी?

दादाश्री : नहीं, इस वर्ल्ड में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है कि जिसका

संयोगों पर काबू हो!

द्रव्य न पलटे, भाव बदले तो...

'द्रव्य न पलटे, भाव फरे तो छूटी शके छे भवनो फजेतो।'

– नवनीत

द्रव्य अर्थात् कर्म फल देने को तैयार हो गया हो, वह। द्रव्य नहीं पलटता उसका उदाहरण देता हूँ। एक मनुष्य को चोरी की आदत पड़ी हुई हो, वह खुद कहता है कि मुझे छोड़ना है फिर भी नहीं छूटती, ऐसा होता है या नहीं? उसका काल आएगा तभी वह पलटेगा। अब कवि क्या कहना चाहते हैं कि तू रोज़ मन में भाव कर कि चोरी करने जैसी नहीं है। तो चोरी के बीज एक दिन खतम हो जाएँगे और नहीं तो वापिस चोरी करने का भाव करेगा तो फिर से चोरी करने के बीज पड़ेंगे। यानी चोरी में से चोरी ही होगी।

यह वाक्य बहुत गहरा गूढ़ अर्थवाला है।

अब जिसने स्वरूप का 'ज्ञान' लिया हो उसे क्या करना चाहिए? 'देखते' ही रहना है। 'देखते' रहे तो नया बीज नहीं डलता। फिर किसीको दुःख हो जाए, वैसी चोरी की हो तो हम उससे अधिक क्या कहते हैं कि, 'चंदूभाई, यह अतिक्रमण किया, इसलिए प्रतिक्रमण कर लो।'

पूरा जगत् चोरी करता है, तब फिर चोरी के बीज डलते हैं। रिश्वत लेता है और मन में खटकता रहता है कि यह होना ही नहीं चाहिए। परन्तु यदि कोई कहे कि, 'यह रिश्वत किसलिए लेते हो?' तब वह कहेगा कि, 'तुझमें अक्कल नहीं है। बैठ! इन दो लड़कियों की किस तरह शादी करूँगा?' यानी खुद ने इस रोंग (गलत चीज़) को एन्करेज किया। इसलिए अगला जन्म पक्का हो गया।

अर्थात् इस संसार के मनुष्य तो यदि चोरी करते हों, लुच्चाई करते हों, रिश्वत लेते हों, तो उन्हें मन में ऐसे भाव करने चाहिए कि यह काम

गलत हो रहा है। 'यह करना ही नहीं चाहिए', ऐसा गाते रहना चाहिए। द्रव्य अब हाथ में नहीं रहा। पानी का बर्फ बन गया। अब किस तरह उसकी धारा बनेगी? ढेर ही बनेगा।

प्रश्नकर्ता : गलत कर रहे हों उस समय भाव तो ऐसा होना चाहिए न कि मुझसे ऐसा नहीं होना चाहिए या फिर ज्ञाता-दृष्टा ही रहना चाहिए?

दादाश्री : ज्ञाता-दृष्टा रहने को और प्रतिक्रमण करने को कहा है न?

प्रश्नकर्ता : परन्तु भाव तो नहीं ही होना चाहिए न?

दादाश्री : भाव तो होगा परन्तु 'आपको' तो चंदूभाई को जागृति देनी है कि प्रतिक्रमण करो। अतिक्रमण किसलिए किया? पूरा दिन क्रमण होता है। अतिक्रमण नहीं होता है पूरे दिन। घंटे में एकाध-दो बार होता है, उसका आपको प्रतिक्रमण करना पड़ेगा।

आपको अपनी सभी कमज़ोरियों को जानना चाहिए। अब आप खुद कमज़ोर नहीं हो। आप तो आत्मा हो गए, परन्तु अज्ञानदशा में इसके मूल उत्पादक तो आप ही थे न? इसलिए आपको पड़ोसी की तरह कहना चाहिए कि, 'चंदूभाई, प्रतिक्रमण कर लो।'

प्रतिक्रमण तो आप बहुत ही करना। जितने आपके सर्कल में यदि पचास-सौ व्यक्ति हों, जिन-जिन को आपने परेशान किया हो, तो जब खाली समय हो तब बैठकर उन सबके एक-एक घंटा, एक-एक को ढूंढ-ढूंढकर, प्रतिक्रमण करना। जितनों को परेशान किया है, वह फिर धोना तो पड़ेगा न! फिर ज्ञान प्रकट होगा।

प्रश्नकर्ता : परन्तु दादा, जिन्होंने मुझे परेशान किया है, उन्हें ही मैंने परेशान किया है।

दादाश्री : आपको जिसने परेशान किया होगा, उसका तो वे भोग लेंगे। उसकी जिम्मेदारी आपकी नहीं है। जो परेशान करते हैं उन्हें जिम्मेदारी का भान नहीं है। वे इस जन्म में रोटी खा रहे हैं तो अगले जन्म में चारा खाने में हर्ज नहीं है न उन्हें!

अहंकार का लाभ!

अहंकार गया कि हल आ गया। अहंकार है तब तक संसार खड़ा रहेगा। या तो आत्मा होता है, या फिर अहंकार होता है। अहंकार हो तो आत्मा का लाभ नहीं मिलता। और आत्मा है तो फिर अहंकार का लाभ नहीं मिलता।

प्रश्नकर्ता : अहंकार में भी लाभ हो सकता है?

दादाश्री : इस अहंकार के लाभ में तो ये सब बेटियों की शादी करवाते हैं, बेटों की शादी करवाते हैं। बेटे के बाप बनकर घूमते हैं। पत्नी के पति बनकर घूमते हैं। उसे अहंकार का लाभ मिला नहीं कहा जाएगा? पूरा जगत् अहंकार का ही लाभ भोग रहा है। हम स्वरूपधारी आत्मा का लाभ भोग रहे हैं। यह स्वउपार्जित है और वह अहंकार उपार्जित है।

प्रश्नकर्ता : भ्रांति जाए तो मुक्त हुआ जाएगा न?

दादाश्री : हाँ, भ्रांति गई अर्थात् 'जैसा है वैसा' जान लिया। भ्रांति गई यानी अज्ञान गया, अज्ञान गया यानी माया गई। भगवान की माया गई यानी अहंकार गया, अहंकारशून्य हो गया यानी हल आ गया!

'इगोलेस' करने की ज़रूरत नहीं...

जिसे किसी भी प्रकार का काम नहीं होता, वह आत्मा!

प्रश्नकर्ता : ये प्रयत्न कौन करता है?

दादाश्री : अहंकार करता है।

प्रश्नकर्ता : उछलता है कौन?

दादाश्री : अहंकार का बाहरी भाग उछलता है, वह डिस्चार्ज होती हुई वस्तु है, और 'इगोइज़म' चार्ज करता है।

प्रश्नकर्ता : संपूर्ण निर्अहंकार कब उत्पन्न होता है?

दादाश्री : आपको उसे उत्पन्न करके क्या करना है?

प्रश्नकर्ता : 'इगो' से फायदा नहीं है, वह तो पता चला है।

दादाश्री : अर्थात् यह 'इगोलेस' हो जाए तो कुछ उत्तम फल मिलेगा?

प्रश्नकर्ता : खुद के अंदर का आनंद, परमानंद उसके बाद प्रकट होगा।

दादाश्री : ऐसा है कि 'इगोलेस' करने की ज़रूरत नहीं है। 'हम खुद कौन हैं' वही जानने की ज़रूरत है। अपना जो स्वरूप है उसमें इगोइज़म करने की ज़रूरत ही नहीं है। 'आप' चंदूभाई नहीं हो, फिर भी 'चंदूभाई हूँ' ऐसा मानते हो, वही 'इगोइज़म' है।

अज्ञान का आधार

अंदर चिढ़ होती है उसे खुद मोड़ने का प्रयत्न करता है, परन्तु चिढ़ इफेक्ट है और मोड़ने का प्रयत्न करता है, वे कॉज़ेज़ हैं। कितने ही लोग चिढ़ते हैं, परन्तु उसका पछतावा करते नहीं और ऊपर से कहते हैं कि 'गुस्सा ही करने जैसा था।' वे भी कॉज़ेज़ हैं। समझ में आया आपको?

प्रश्नकर्ता : चिढ़ने का कारण क्या है?

दादाश्री : अज्ञानता। अज्ञानता के कारण राग-द्वेष करता रहता है। यह अच्छा, यह बुरा ऐसे करता रहता है। वास्तव में तो यह इफेक्ट इसका है। उसे 'हम' स्वीकार लेते हैं, उसे आधार देते हैं। 'मुझे ठंड लगी, मुझे हुआ, मुझे भाता नहीं है।' इसे आधार दिया जाता कहा जाता है। अब कढ़ी खारी लगी, वह बात जीभ की हद की है। उसे हमें कहने की ज़रूरत है? इस तरह आधार देते हैं और कॉज़ेज़ करते हैं। पूरी ज़िन्दगी राग-द्वेष करते रहते हैं। पसंद की वस्तुओं पर राग और नापसंद वस्तुओं पर द्वेष करते हैं।

प्रश्नकर्ता : यह राग-द्वेष करनेवाला कौन है? अज्ञानता?

दादाश्री : 'इगोइज़म'। अज्ञानता के आधार पर 'इगोइज़म' खड़ा है और 'इगोइज़म' यह सब करता रहता है। यदि अज्ञान का आधार टूट जाए तो 'इगोइज़म' गिर पड़ेगा।

संसार का 'रूट कॉज़'

यह क़ॉज़ेज़ का आपको समझ में आया या नहीं समझ में आया? कोई आपका चहेता दोस्त आया तो आप खुश-खुश हो जाते हो वह राग है और अनचाहा व्यक्ति आए तब?

प्रश्नकर्ता : एकदम उसे निकाल तो नहीं सकते, परन्तु मन मारकर बैठे रहते हैं।

दादाश्री : वह द्वेष कहलाता है। ऐसे राग-द्वेष करते रहते हो। वेदान्त क्या कहता है कि ये मनुष्य परमात्मा क्यों नहीं बन सकते? क्योंकि मल, विक्षेप और अज्ञान हैं इसलिए। जैनों की थिअरी ऐसा कहती है कि राग-द्वेष और अज्ञान हैं, इसलिए। दोनों के मूल में अज्ञानता है ही। अर्थात् अज्ञानता जाए तब आधार टूट जाएगा।

इफेक्ट तो अपने आप होता ही रहता है। परन्तु खुद अंदर कॉज़ेज़ करता है, आधार देता है कि 'मैंने किया, मैं बोला'। वास्तव में इफेक्ट में किसीको करने की ज़रूरत ही नहीं है। इफेक्ट अपने आप सहज भाव से होता ही रहता है, परन्तु हम उसे सहारा देते हैं कि 'मैं करता हूँ'। वह भ्रांति है और वही कॉज़ेज़ हैं।

प्रश्नकर्ता : उस कॉज़ का कॉज़ क्या है?

दादाश्री : अज्ञानता। रूट कॉज़ अज्ञानता है। 'ज्ञानी पुरुष' अज्ञानता दूर करते हैं।

लक्ष्मी की लिंक

पैसेवाला कौन है? मन से जो राजा है, वह। हो तो खर्च करता है और नहीं हो तब भी खर्च करता है।

यह अनाज है, वह तीन से पाँच वर्षों में निर्जीव हो जाता है, फिर उगता नहीं है। हर ग्यारहवें वर्ष में पैसा बदलता है। पच्चीस करोड़ का आसामी हो, परन्तु ग्यारह वर्ष तक उसके पास यदि एक आना भी नहीं आया हो तो वह खतम हो जाएगा। जैसे इन दवाईयों की एक्सपायरी डेट लिखते हो वैसे ही इस लक्ष्मी की ग्यारह वर्ष की एक्सपायरी डेट होती है।

प्रश्नकर्ता : पूरी ज़िन्दगी लोगों के पास लक्ष्मी रहती है न?

दादाश्री : आज १९७७ का वर्ष हुआ, तो आज आपके पास १९६६ की लक्ष्मी नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता : ग्यारह वर्ष का यह नियम कहाँ से आया?

दादाश्री : जैसे इन दवाईयों में दो वर्ष की एक्सपायरी डेट होती है, छह महीने की होती है, अनाज की तीन वर्षों की होती है वैसे ही लक्ष्मीजी की ग्यारह वर्ष की होती है।

लक्ष्मीजी जंगम (चंचल) कही जाती हैं। २०० वर्ष पहले के बनिये थे, उनके पास लाख रुपये होते तो पच्चीस हज़ार की जायदाद ले लेते थे, पच्चीस हज़ार का सोना और ज़ेवर ले लेते थे, पच्चीस हज़ार किसी जगह पर सर्राफ के वहाँ ब्याज में रखते थे और पच्चीस हज़ार व्यापार में डाल देते थे। व्यापार में ज़रूरत पड़े तो पाँच हज़ार ब्याज पर ले आते थे। यह उनका सिस्टम था। तब वे किस तरह जल्दी दिवालिया हो जाते? चारों तरफ चार कीलें गाड़ दीं! आज के बनिये को तो ऐसा कुछ आता ही नहीं!

कोई बाहर का व्यक्ति मेरे पास व्यावहारिक सलाह लेने आए कि, 'मैं चाहे जितना उठापटक करूँ फिर भी कुछ होता नहीं है।' तब मैं कहूँगा, 'अभी तेरा उदय पाप का है। तू किसीके यहाँ से उधार के रुपये लाएगा तो रास्ते में तेरी जेब कट जाएगी! इसलिए अभी तू घर बैठकर चैन से जो शास्त्र पढ़ता हो, वह पढ़ और भगवान का नाम लेता रह।'

प्रश्नकर्ता : पुण्य–पाप के ही अधीन होता है, तो फिर 'टेन्डर' भरने

का कहाँ रहा?

दादाश्री : वे टेन्डर जो भरे जाते हैं, वे पाप-पुण्य के उदय के अनुसार ही भरे जाते हैं। इसलिए मैं कहता ज़रूर हूँ कि टेन्डर भरो, परन्तु मैं जानता हूँ कि किस आधार पर टेन्डर भरा जाता है। इन दो नियमों से बाहर जाया जा सके ऐसा नहीं है।

मैं बहुत लोगों को मेरे पास 'टेन्डर' भरकर लाने को कहता हूँ। पर कोई भरकर नहीं लाया है। किस तरह भरें? वह पाप-पुण्य के अधीन है। इसलिए पाप का उदय हो तब बहुत भाग-दौड़ करेगा तो, बल्कि जो है वह भी चला जाएगा। इसलिए घर जाकर सो जा और थोड़ा-थोड़ा साधारण काम कर, और पुण्य का उदय हो तो भटकने की ज़रूरत ही क्या है? घर बैठे आमने-सामने थोड़ा-सा काम करने से सब आ मिलता है, इसलिए दोनों ही स्थितियों में भाग-दौड़ करने को मना करते हैं। बात को सिर्फ समझने की ही ज़रूरत है।

हम १९६८ में जयगढ़ की जेटी बना रहे थे। वहाँ एक कान्ट्रेक्टर मेरे पास आया। वह मुझसे पूछने लगा, 'मैं अपने गुरु महाराज के पास जाता हूँ। हर साल मेरे पैसे बढ़ते ही रहते हैं। मेरी इच्छा नहीं, फिर भी बढ़ते जाते हैं, तो क्या वह गुरु की कृपा है?' मैंने उसे कहा, 'वह गुरु की कृपा है, वैसा मत मानना। यदि पैसे चले जाएँगे तो तुझे ऐसा लगेगा कि लाओ, गुरु को पत्थर मारूँ!'

इसमें गुरु तो निमित्त हैं, उनके आशीष निमित्त हैं। गुरु को ही जब चाहिए, तब चार आने भी नहीं मिलें न! इसलिए फिर उसने मुझसे पूछा कि, 'मुझे क्या करना चाहिए?' मैंने कहा, 'दादा का नाम लेना।' अभी तक तेरी पुण्य की लिन्क आई थी। लिन्क मतलब अंधेरे में पत्ता उठाए तो चोक्का आए, फिर पंजा आए, फिर वापिस उठाए तो छक्का आए। तो लोग कहेंगे कि, 'वाह सेठ, वाह सेठ, कहना पड़ेगा।' वैसा तुझे १०७ बार सच्चा पड़ा है। पर अब बदलेगा। इसीलिए सावधान रहना। अब तू निकालेगा तो सत्तावन के बाद तीन आएगा और तीन के बाद १११ आएगा! तब लोग

तुम्हें बुद्धू कहेंगे। इसलिए इन दादा का नाम छोड़ना मत, नहीं तो मारा जाएगा।

फिर हम मुंबई आ गए। वह आदमी दो–चार दिन बाद यह बात भूल गया। उसे फिर बहुत भारी नुकसान हुआ। इसलिए उन पति–पत्नी दोनों ने खटमल मारने की दवाई पी ली! वह दादा का नाम लेना ही भूल गया था। पर पुण्यशाली इतना कि उसका भाई ही डॉक्टर था। वह आया और बच गया! फिर वह मोटर लेकर दौड़ता हुआ मेरे पास आया। मैंने उसे कहा, 'इन दादा का नाम लेते रहना और फिर ऐसा कभी भी मत करना।' तब फिर वह नाम लेता रहा। उसके पाप सब धुल गए और सब ठीक हो गया।

जब 'दादा' बोलें, उस घड़ी पाप पास में आते ही नहीं। चारों तरफ मंडराते रहते हैं, परन्तु छूते नहीं आपको। आप झोंका खाते हो, तब उस घड़ी छू जाते हैं। रात को नींद में नहीं छूते। यदि जब तक जग रहे हैं तब तक बोलते रहें और सुबह में उठते ही बोले हों, तो बीच का समय उस स्वरूप कहलाता है।

मिकेनिकल चेतन

जगत् के लोग जानते ही नहीं कि इसमें चेतन किसे कहते हैं? वे तो बोडी (शरीर) को चेतन कहते हैं। सभी कार्य करता है, वह चेतन करता है, ऐसा कहते हैं। परन्तु चेतन कुछ भी नहीं करता। सिर्फ 'जानने' की और 'देखने' की, दो ही क्रियाएँ उसकी है। दूसरा सब अनात्म विभाग का है।

यह बोलता कौन है? वह निश्चेतन चेतन है, मिकेनिकल चेतन है। वह दरअसल चेतन नहीं है। कुछ लोग इसे स्थिर करते हैं। अरे, किसलिए स्थिर करता है? तू मूल स्वरूप को ढूंढ़ निकाल न! मूल स्वरूप स्थिर ही है। यह वापिस उसे स्थिर करने की आदत किसलिए डाल रहा है? यह निश्चेतन चेतन तो मूलत: चंचल स्वभाव का ही है। मिकेनिकल का अर्थ ही चंचल होता है। इस चंचल को स्थिर करने फिरते हैं, तो वह कितना

उल्टा रास्ता लोगों ने पकड़ा है? इसलिए तो अनंत जन्मों से भटक रहे हैं!

इस जगत् में दो वस्तुएँ हैं : एक सचर है और एक अचर है। यह शरीर सचराचर है और जगत् भी पूरा सचराचर है। सचर मिकेनिकल भाग है, अनात्म विभाग है और अचर आत्मविभाग है। अर्थात् बात को समझ लें तो हल आएगा, नहीं तो करोड़ों जन्मों तक भी ठिकाना नहीं पड़ेगा।

वर्ना करोड़ों जन्मों तक त्याग करे, तप करे फिर भी कुछ होगा नहीं। आत्मा त्यागस्वरूप ही है। सर्वसंग परित्याग स्वरूप है। अब आत्मा के लिए त्याग करने जाएँ, तो वह सब ऊधम है। 'त्यागे उसे आगे।' आपको यदि भविष्य में चाहिए तो त्याग करो।

चित्त और अंतरात्मा

प्रश्नकर्ता : चित्त और अंतरात्मा के बीच का भेद समझाइए।

दादाश्री : चित्त शुद्ध हुआ, वही अंतरात्मा है। वह अंतरात्मा किसलिए कहलाता है कि खुद के परमात्मा को यानी कि शुद्धात्मा को भजना है, उस रूप अर्थात् कि शुद्धात्मरूप होना है। पहले, शुद्धात्मा प्रतीति में आता है, लक्ष्य में आता है। उसके बाद अनुभव पद में रहने के लिए, शुद्धात्मा के साथ एक लक्ष्य, एक तार करना है! परन्तु जब तक बाहर फाइलें होंगी, तब तक वैसा पूरे दिन नहीं हो पाएगा। इसलिए अंतरात्मा कहा है। अंतरात्म दशा यानी इन्ट्रिम गवर्मेन्ट और ये फाइलें पूरी हो गईं तो फुल गवर्मेन्ट, परमात्मा बनेगा।

यहाँ पर आ जाओगे तो उसका निबेड़ा आएगा और लम्बा घूमने जाओगे तो सिर्फ पुस्तकें और पुस्तकें भरेंगी। उसका अंत ही नहीं आएगा।

परमात्मा परमानेन्ट है। मूढ़ात्मा-बहिर्मुखी आत्मा, वह परमानेन्ट नहीं है और अंतरात्मा परभव में भी साथ में जाएगा। यही की यही मूढ़ात्म दशा परभव में साथ में नहीं होगी, वहाँ दूसरी मूढ़ात्म दशा आएगी।

वृत्ति बहे निज भाव में

प्रश्नकर्ता : चित्त शुद्ध होने के बाद अंतरात्मा का ज्ञान जो प्रकट करता है, उसमें बाह्य आवरणों को मुक्त रखता है। इसलिए मन एकदम बाह्य विचारों की तरफ नहीं झुकता है, परन्तु आंतरिक विचारों की तरफ अधिक झुकता है।

दादाश्री : यानी कि जो वृत्तियाँ पहले बाहर भटकने जाती थीं, वे अब वापिस अंदर आती हैं, खुद के घर आती हैं।

प्रश्नकर्ता : उसमें मन की *लागणीओ* (भावुकतावाला प्रेम, लगाव) में कुछ बदलाव आता है क्या?

दादाश्री : कुछ भी बदलाव हो सके ऐसा नहीं है। मन जड़ है। जो बाहर जाता है, वह परमानेन्ट वस्तु नहीं है। प्रतिक्षण वह बदलता रहता है। इसमें परमानेन्ट हम 'स्वयं' हैं। बाकी यह सब तो बदलता ही रहेगा। आपको सिर्फ भासित होता है कि यह बरसात होगी और वह खत्म हो जाएगा! वह सिर्फ भास्यमान परिणाम है। उसका कोई लम्बा अर्थ नहीं है। यानी हमें क्या भासित होता है? किसे यह भासित होता है? उसका पता लगाना पड़ेगा।

चित्त 'दादा भगवान' को याद करे, हर किसीमें 'दादा' दिखें, वह चित्त बहुत अच्छा कहलाता है। ऐसा बहुतों को रहता है। अधिक या कम मात्रा में होता है। 'दादा भगवान' वही खुद के 'शुद्धात्मा' हैं यानी चित्त शुद्धात्मा में रखो या 'दादा भगवान' में रखो, वह समान ही है। दोनों चित्त को शुद्ध ही रखते हैं।

संसारी चित्त, वह अशुद्ध चित्त कहलाता है। अशुद्ध चित्त मिश्रचेतन है। वह चित्त शुद्ध हो जाता है, तब शुद्ध चेतन हो जाता है। शुद्ध चित्त अर्थात् शुद्ध चेतन। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह लक्ष्य बैठ गया, वही हमारा स्वरूप है। उसे अंतरात्मदशा कहते हैं।

चित्त और प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञाशक्ति बाहर जाती है? चित्त की तरह?

दादाश्री : सिर्फ चित्त ही भटकता है। फिर शुद्ध हो जाए तब नहीं भटकता। अशुद्ध चित्त भटकता रहता है। अरे! मेहफिल में भी जा आता है कि जहाँ पर ब्रांडी की बोतलें उड़ती हों! चित्त की शक्तियाँ बहुत ज़बरदस्त है। इसलिए ही लोग ऊब जाते हैं न!

यह मन लोगों को इतना अधिक परेशान नहीं करता, परन्तु चित्त बहुत परेशान करता है। मन तो दो काम करता है, एक तो अच्छे विचार फूटते हैं और एक खराब विचार फूटते हैं! पटाखों और अनार में से फूटते हैं, वैसे। विचार वह ज्ञेय वस्तु है और 'हम' 'ज्ञाता' हैं। यह तो भ्रांति के कारण ऐसा लगता है कि मुझे विचार आए।

दादाश्री - कली को खिलाते हैं

दादाश्री : ये उल्टे-सीधे धंधे अब करेगा? जानवर बनना है तुझे?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : इन दो पैरों से गिर जाते हैं, तो उसके बदले चार पैर हों तो अच्छा, गिर तो नहीं जाएँगे! और ऊपर से पूँछ इनाम में मिलेगी तो कूदते-कूदते तो जा पाएगा!!! अब तुझे ऐसा कुछ बनना है या मनुष्य ही बनना है?

प्रश्नकर्ता : मनुष्य बनना है।

दादाश्री : तो फिर मनुष्य के गुणों की ज़रूरत पड़ेगी। जैसा तुझे पसंद है, वैसा ही सामनेवाले को देगा तो मनुष्यत्व आएगा। कोई तुझे नालायक कहे, तो तुझे पसंद आएगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं आएगा।

दादाश्री : इसलिए हमें समझ जाना है कि हम किसीको नालायक कहें तो उसे कैसे पसंद आएगा? अर्थात् हमें ऐसा कहना है कि आओ भाई, आप बहुत अच्छे व्यक्ति हो, तब उसे आनंद होगा।

कोई हमारे पास झूठ बोले तो हमें दु:ख हो जाता है, उसी प्रकार

हम किसीसे झूठ बोलें तो उसे कितना दु:ख होगा? *अणहक्क* का नहीं भोगते। *अणहक्क* का भोगते हैं क्या लोग?

प्रश्नकर्ता : बहुत लोग भोगते हैं।

दादाश्री : अरे, पत्नी भी उठाकर ले जाते हैं न लोगों की! खुद के हक़ की पत्नी रखनी चाहिए। यह तो पत्नी दूसरे की ढूंढ़ लाते हैं! हक़ की, खुद की स्त्री हो तो कोई बातें नहीं करेगा, घर के लोग भी नहीं डाँटेंगे। यानी कौन-से गड्ढे में गिरना अच्छा?

प्रश्नकर्ता : हक़ के।

दादाश्री : *अणहक्क* का गड्ढा तो बहुत गहरा है! वापिस ऊपर आया ही नहीं जाएगा। इसलिए सावधानी से चलना अच्छा है। यानी तू सावधान हो जाना। यह जवानी है इसलिए यह भय सिग्नल तुझे बता रहे हैं, जिसे बुढ़ापा आनेवाला हो उसे हम ऐसा नहीं कहते।

प्रश्नकर्ता : हाँ, हाँ, नहीं ले जाऊँगा, दूसरे की पत्नी नहीं ले जाऊँगा।

दादाश्री : हाँ, ठीक है। ले जाने का विचार भी मत करना। किसी स्त्री के प्रति आकर्षण हो तब, 'हे दादा भगवान! मुझे माफ कर दीजिए', कहना।

अणहक्क का पैसा नहीं छीनते, इस मुंबई शहर में लोग मिलावट नहीं करते हैं न?

प्रश्नकर्ता : व्यापारी करते तो हैं।

दादाश्री : तो कोई जान-पहचानवाला हो उसे सावधान करना कि, 'चार पैरवाला बनना हो तो मिलावट करो।' वर्ना फिर भी आप भूखे नहीं मरोगे, उसकी हम गारन्टी देते हैं। कुछ समझना तो चाहिए न? हम कौन-से देश के हैं?

प्रश्नकर्ता : भारत देश के हैं।

दादाश्री : भारत देश के हैं हम! तो हमारी क्वॉलिटी कौन-सी है?

आर्य प्रजा! और बाहर की कौन-सी कहलाती है?

प्रश्नकर्ता : अनार्य।

दादाश्री : हमारे यहाँ पर कोई-कोई व्यक्ति ऐसे बन जाते हैं, तो उन्हें क्या कहते हैं? अनाड़ी। आर्यप्रजा अर्थात् आर्य आचार, आर्य विचार और आर्य उच्चार।

तुझे मेरी बात पसंद है? ऊब जाता है?

प्रश्नकर्ता : पसंद है इसलिए बैठा हूँ।

दादाश्री : तू कभी झूठ बोलता है क्या?

प्रश्नकर्ता : बोलता हूँ।

दादाश्री : झूठ बोलने से क्या नुकसान होता होगा?

प्रश्नकर्ता : नुकसान होता है।

दादाश्री : अपने पर से विश्वास ही उठ जाता है।

प्रश्नकर्ता : सामनेवाले को पता नहीं चलता, ऐसा समझकर बोलता हूँ।

दादाश्री : हाँ, परन्तु विश्वास उठ जाए तो मनुष्य की क़ीमत खतम!

तूने कभी चोरी की है क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं, नहीं की।

दादाश्री : नहीं की? तुझे चोरी करना पसंद नहीं है?

प्रश्नकर्ता : पसंद तो है, लेकिन डर लगता है न!

भूख लगी? बुझाओ!

दादाश्री : तू पेट में भोजन डालता है, वह किसलिए डालता है?

प्रश्नकर्ता : भूख को संतुष्ट करने के लिए।

दादाश्री : तुझे भूख लगती है, उस घड़ी अंदर पेट में लगती है या बुझती है?

प्रश्नकर्ता : भूख तो लगती ही है न?

दादाश्री : बुझती नहीं है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, खाने के बाद बुझ जाती है।

दादाश्री : हाँ, इसलिए भूख, वह अग्नि ही कहलाती है न? पेट में अग्नि लगती है तब क्या खाता है? इस गाड़ी की खुराक तो पेट्रोल है और हमारा ईंधन घी और तेल का है। तुझे सिर्फ भूख ही लगती है या प्यास भी लगती है?

प्रश्नकर्ता : प्यास भी लगती है न!

दादाश्री : अर्थात् प्यास भी अंदर जलती है ऐसा न? तू उसमें पानी डाले तब वह बुझती है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तुझे थकान भी होती है क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, थकान होती है।

दादाश्री : थकान होती है, तब घंटाभर आराम करता है। नींद लग जाती है क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, लग जाती है।

दादाश्री : अर्थात् यह सब लगता है।

भगवान ने क्या कहा था कि यह मनुष्य का अवतार जलते हुए को बुझाने के लिए है। तब हम कहते हैं, 'साहब जलता हुआ बुझा दिया। अब और मुझे क्या करना है?' तब भगवान कहते हैं कि, 'आप तो मेरा नाम

लेते रहो और छूटने की तैयारियाँ करो।' हिन्दुस्तान में आर्यप्रजा के रूप में जन्म हुआ, इसलिए छूटने के लायक हुआ।

एक व्यक्ति से मैंने पूछा कि तेरा मुहल्ला तो बहुत साहूकारों का है, तो चोरियाँ नहीं होती होंगी! तब उसने कहा कि देखो, यह सामनेवाली पुलिसचौकी हटाकर देखो। फिर हमारे अड़ोसी-पड़ोसी, शौचालय में लोटा है, वह भी नहीं रहने देंगे! यानी कि तूने कहा उसके जैसा है, डर के मारे! कोई डर नहीं हो तो हर्ज नहीं न?

प्रश्नकर्ता : तो हर्ज नहीं होगा।

दादाश्री : तू चुराकर लाएगा, तुझे पसंद हों वे चीज़ें?

प्रश्नकर्ता : पसंद की चीज़ें तो ले आऊँ।

दादाश्री : सोने की सिल्ली पड़ी हो तो लाएगा क्या?

प्रश्नकर्ता : वैसा कुछ हो तो सभी का मन ललचा जाएगा।

दादाश्री : इन लोगों के मन ऐसे स्थिर नहीं हैं। ये तो भय के मारे सीधे रहें, ऐसे हैं। इन कविराज ने एक दिन मुझसे क्या कहा कि इन नालायकों के लिए सरकार को सेना और पुलिसवाले रखने पड़ते हैं और उसके लिए टैक्स, वे लायकों के पास से लेते हैं! ऐसे बहुत से लोग होते होंगे कि जिनके लिए पुलिसवालों की ज़रूरत नहीं होती है।

टकराव से अटकण

मजिस्ट्रेट साहब घर पर पत्नी के साथ दो-दो महीनों से नहीं बोलते और वहाँ कोर्ट में सात वर्ष की सजा ठोक देते हैं! अरे, घर में मुँह चढ़ाकर क्यों फिरते हों? *निकाल* कर दो न।

मुझे किसीके साथ थोड़ा-सा भी मतभेद नहीं हुआ है। किसलिए ऐसा होगा?

प्रश्नकर्ता : मतभेद हो वैसा बोलें-चालें और बरतें नहीं, तो मतभेद नहीं पड़ेंगे।

दादाश्री : मतभेद अर्थात् क्या? टकराव। ऐसे सीधे-सीधे जा रहे हों और बीच में इलेक्ट्रिक का खंभा आता हो तो आपको समझना चाहिए। आप उसे कहो कि तू कौन बीच में रोकनेवाला? सामने भैंस का पुत्र - भैंसा आ रहा हो तो क्या हमें उसे ऐसा कहना चाहिए कि हट जा, हट जा!

प्रश्नकर्ता : वह नहीं चलेगा।

दादाश्री : वहाँ हमें हट जाना चाहिए। साँप आ रहा हो तो?

प्रश्नकर्ता : यह तो जानवरों की दुनिया हुई।

दादाश्री : यह जो जानवरों के बारे में कह रहा हूँ, मनुष्य भी वैसे ही हैं।

प्रश्नकर्ता : उन्हें परखें किस तरह?

दादाश्री : समझ में आ जाता है अपने को, उसके सींग ऊँचे करे तो हम नहीं समझ जाएँगे कि यह भैंसा है? तब हमें खिसक जाना चाहिए। मुझे तो उनके आने से पहले ही पता चल जाता है। सुगंध पर से ही पहचान लेता हूँ। कुछ पत्थर जैसे होते हैं, खंभे जैसे भी होते हैं।

प्रश्नकर्ता : बहुतों के मुँह पर से पता चल जाता है न?

दादाश्री : हाँ, सच है। परन्तु जिन्हें चेहरे पर से पता चल जाए, उनका खुद का थर्मामीटर कितना 'करेक्ट' रखना पड़ेगा?

प्रश्नकर्ता : पूर्वग्रह रहित रखना पड़ेगा।

दादाश्री : यदि मनुष्य पूर्वग्रह रहित हो जाए तो कल्याण ही हो जाएगा। कल आप मेरे साथ झगड़ा करके गए हों न, तो आप दूसरे दिन आओ तो मैंने कल की बात एक ओर रख दी होती है। पूर्वग्रह रखूँ तो वह मेरी भूल है। फिर भले ही आप दूसरे दिन वैसे निकलो, उसमें हर्ज नहीं है। इस पूर्वग्रह के कारण तो पूरी दुनिया मार खाती है और इसीलिए उसके कारण दोष लगते हैं। आप हो, ऐसा नहीं मानते हो और नहीं हो

वैसा मानते हो! आप सामनेवाले को गधा कहो उसके साथ ही भगवान को भी गधा कह देते हो। इसलिए सामनेवाले को गधा कहने से पहले सोचना। टकराव होना ही नहीं चाहिए। उसका हल लाना चाहिए। हल लाए बगैर बैठे रहना 'वेस्ट ऑफ टाइम एन्ड एनर्जी' है।

स्थितप्रज्ञ कब कहलाते हैं?

एक पंडित ने मुझसे पूछा, 'स्थितप्रज्ञ अर्थात् क्या?' अब मैं कोई पंडित नहीं हूँ। मैं ज्ञानी हूँ। उस पंडित को बिना पारे के गर्मी चढ़ी हुई थी। मैंने उन्हें समझाया कि आप जब बिना पारे के हो जाओगे, तब स्थितप्रज्ञ दशा हो जाएगी! इसलिए यह पारा उतारो। पंडित, वह तो विशेषण है। कई लोगों का होता है। पंडित तो बहुत होते हैं, एक दिन बगैर विशेषण के हो जाओ। मैं बगैर विशेषण का हो गया हूँ, इसलिए लोग मुझे ज्ञानी कहते हैं, वर्ना मैं तो ज्ञानी भी नहीं हूँ। मैं तो बिना विशेषण का 'निर्विशेष पुरुष' हूँ।

विचारों द्वारा कर्म कट सकते हैं?

प्रश्नकर्ता : कहा जाता है कि पूरा मोहनीय कर्म विचारों द्वारा उड़ाया जा सकता है!

दादाश्री : हाँ, परन्तु वे विचार 'ज्ञानी पुरुष' के पास से लिए हुए होने चाहिए, खुद के विचारों से नहीं।

विचार दो प्रकार के : एक स्वच्छंदी विचार और दूसरे 'ज्ञानी पुरुष' के पास से लिए हुए विचार। 'ज्ञानी पुरुष' को हर बार बताना कि ऐसे विचार आते हैं, तब वे कहेंगे कि यह करेक्ट है, तो आगे चलने देना, वर्ना स्वच्छंदी विचार हों, तो जाने कहाँ पहुँच जाएगा। विचार से सबकुछ खत्म हो सकता है। मेरा सबकुछ विचारों द्वारा ही खत्म हो गया है, इस जगत् में कोई ऐसी वस्तु नहीं, कोई ऐसा परमाणु नहीं कि जिस पर मैंने विचार नहीं किया होगा!

कर्मों की निर्जरा-ज्ञानियों का तरीका!

प्रश्नकर्ता : जो ज्ञानी हैं, वे मोहनीय कर्म के ज्ञाता-दृष्टा रहें तो वह

कर्म उड़ जाएगा न?

दादाश्री : ज्ञाता-दृष्टा रहें, तब सारे ही कर्म उड़ जाएँगे। सारा चारित्रमोह उड़ जाएगा। सिर्फ शुद्ध उपयोग ही रहेगा। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' उसका उपयोग रहना चाहिए। यह भी शुद्धात्मा है, वह भी शुद्धात्मा है। गधे, कुत्ते, बिल्ली, सभी शुद्धात्मा हैं। जेब काटनेवाला भी शुद्धात्मा है।

इस दुषमकाल के जीवों की समझ में मोह और मूर्छा भरे हुए हैं, इसलिए कृपालुदेव ने इस काल के जीवों को हत्पुण्यशाली कहा है! ये लोग पूरे दिन क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष करते रहते हैं! बाप-दादा करते थे, वह रूढ़ी चली आ रही है, उस अनुसार धर्म करते हैं। परन्तु वह समझदारीपूर्वक नहीं होता। हर एक को अपने-अपने धर्म के *पुद्गल* का आवरण होता है। जैन को जैन *पुद्गल* और वैष्णव को वैष्णव *पुद्गल* मोक्ष में नहीं जाने देता। उस *पुद्गल* की *निर्जरा* होगी, तब कल्याण होगा। मोक्ष में जैन *पुद्गल* भी काम में नहीं आएगा और दूसरे *पुद्गल* भी काम में नहीं आएँगे। प्रत्येक *पुद्गल* का *निकाल* करना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष के द्वार में तो *पुद्गल* को दाख़िल ही कहाँ होना है? वहाँ तो आत्मा को ही दाख़िल होना है।

दादाश्री : शुद्धात्मा पद प्राप्त होने के बाद मोक्ष में दाख़िल हुआ जा सकेगा, ऐसा है। बाकी सबमें से राग-द्वेष खत्म हो जाएँ, तब जो बचा वह चारित्रमोह कहलाता है, उसकी *निर्जरा* हो जाए कि मोक्ष हो जाएगा!

प्रश्नकर्ता : कर्म की *निर्जरा* कैसी होती है?

दादाश्री : आप शुद्धात्मा में हों, तो सब कर्म की *निर्जरा* ही है - क्या *निर्जरा* होती है, उससे आपको क्या काम है? रोज़ शौचालय में आप देखते रहते हो कि आज पीला हुआ या काला हुआ? यह भी एक *निर्जरा* ही है, देह की एक प्रकार की *निर्जरा* है।

प्रश्नकर्ता : वह ठीक है, परन्तु *निर्जरा* पूरी कब होती है?

दादाश्री : पूरी करके आपको क्या करना है?

प्रश्नकर्ता : फिर पता चलेगा न कि अब मोक्ष जल्दी आ गया।

दादाश्री : ऐसे जल्दबाज़ी करने जाओ वहाँ दूसरी झाड़ी लग जाएगी! यह जल्दबाज़ी का मार्ग नहीं है। यह तो जागृति रखने का मार्ग है। शुद्ध उपयोग में रहो, उससे अपने आप ही *निर्जरा* होती ही रहेगी। आपको कुछ भी नहीं करना है। इसलिए तो हम भी ऐसा कहते हैं कि हमें मोक्ष जाने की जल्दी नहीं है, हमें जल्दबाज़ी किसलिए? यहाँ पर ही हमें मोक्ष बर्तता है, तब हमें दूसरा कौन-सा मोक्ष चाहिए? और वह मोक्ष तो नियमपूर्वक है। वह तो अपने आप बोर्ड पर आ जाएगा कि तीन बजकर तीन सेकन्ड पर होगा! हम लोगों को जल्दबाज़ी करने की क्या ज़रूरत है?

प्रश्नकर्ता : मोक्ष, वह निश्चित ही है?

दादाश्री : नहीं, निश्चित मत मान लेना। निश्चित होता तब तो फिर सभी चैन से सो जाएँगे। ऐसा नहीं है।

शुद्ध उपयोग से अबंध दशा

'आप शुद्ध उपयोग में ही रहो' इतना हम कहना चाहते हैं। और कुछ भी मत सोचना। यह दिन नहीं है कि अभी पूरा हो जाएगा! यह तो संसार है। आप अपने उपयोग में रहोगे तो सारा हिसाब छूट जाएगा! हम सोच में पड़ें कि 'कब पूरा होगा?' तो दूसरा भूत घुस जाएगा। हमें किसलिए जल्दी है?

हममें चारित्रमोह बहुत कम है, और आपका ढेर सारा होता है, परन्तु आपका भी दिनोंदिन कम ही होता जा रहा है। चारित्रमोह जाता है, वह मुक्ति देकर ही जाता है।

पाँच लाख चारित्रमोह के मेहमान थे, उसमें से अब पाँच सौ गए, वे पाँच सौ कम हो गए, फिर वापिस पाँच सौ गए, फिर पाँच सौ गए, ऐसे कम ही होते जा रहे हैं। फिर पाँच लाख के चार लाख हो जाएँगे, फिर तीन लाख, फिर दो लाख, ऐसे करते-करते खत्म हो जाएगा। हम फिर गिनते रहें कि कितने रहे, कितने रहे, हमें उसे गिनकर क्या काम है?

शुद्ध उपयोग में रहे कि *संवर* सहित *निर्जरा* होती ही रहेगी।

प्रश्नकर्ता : उसका अर्थ ऐसा हुआ कि जितना अधिक शुद्ध उपयोग में रहो, उतनी अधिक *निर्जरा* होगी?

दादाश्री : शुद्ध उपयोग ही काम करेगा। आपका धर्म शुद्ध उपयोग है। वह जितना चूकोगे उतनी आपको मार पड़ेगी। और हमने जो पाँच आज्ञाएँ दी हैं, वे शुद्ध उपयोग में रखने के हेतु के लिए ही है। पाँच आज्ञा पालीं, वही शुद्ध उपयोग है। उसमें से एक पाली, फिर भी वह शुद्ध उपयोग ही है। पाँच में से एक आपसे नहीं पाली जाएगी?

प्रश्नकर्ता : दादा, इसमें ऐसा है न कि एक पालो न तो पाँचों पल जाती है।

दादाश्री : वह तो बल्कि अच्छा है न? एक पाली तो पाँचों का लाभ मिलता है। यह तो बहुत आसान और सरल है। कुछ भी मुश्किल नहीं है। सिर पर कोई डाँटनेवाला नहीं है। नहीं तो सिर पर गुरु महाराज हों, वे तो तेल निकाल डालें! सुबह उठे तब से हमें डाँटते रहेंगे!

कर्म का आयोजन - क्रिया या ध्यान?

प्रश्नकर्ता : अभी जो भोगते हैं उसमें आपका कहना है कि आयोजन है। उनमें क्रियमाण भी होते हैं और संचित भी होते हैं, तो उस कर्म और कारण का आयोजन किस तरह समझें?

दादाश्री : वह आयोजन अपनी क्रिया पर आधारित नहीं होता। अपने ध्यान पर आधारित है। आप नगीनभाई के दबाव से पाँच हज़ार रुपये धर्मदान में दो तो आप देते ज़रूर हो, परन्तु आपका ध्यान वास्तविक नहीं था।

प्रश्नकर्ता : बहुत इच्छा नहीं थी।

दादाश्री : नहीं, इच्छा नहीं थी, ऐसा नहीं है। इच्छा की ज़रूरत ही नहीं है। इच्छा से कर्म नहीं बँधते, ध्यान पर आधारित है। इच्छा तो

हो या नहीं भी हो। पैसे देते समय मन में ऐसा होता है कि 'ये नगीनभाई नहीं होते तो मैं देता ही नहीं।' यानी उल्टा आप दान देकर जानवर में जाओगे - यह रौद्रध्यान बाँधा इसलिए।

प्रश्नकर्ता : ध्यान किस पर आधारित है?

दादाश्री : ध्यान तो आपके डेवलपमेन्ट पर आधारित है। आपको जिस ज्ञान का डेवलपमेन्ट हुआ है, उस पर आधारित है।

आप खराब करोगे परन्तु अंदर ध्यान ऊँचा होगा तो आपको पुण्य बँधेगा। शिकारी हिरण को मारे, परन्तु अंदर खूब पछतावा करे कि 'यह मेरे हिस्से में कहाँ आया? इन बीवी-बच्चों के लिए मुझे यह मजबूरन करना पड़ रहा है!' तो वह ध्यान ऊँचा गया, ऐसा कहा जाएगा। नेचर (कुदरत) क्रिया नहीं देखती। उस समय का आपका ध्यान देखती है। इच्छा भी नहीं देखती।

किसी व्यक्ति ने आपको लूट लिया, तो उस समय आपके मन के सभी भाव रौद्र हो जाते हैं। अंधेरे में ऐसे भाव हो जाते हैं और शुद्ध प्रकाश हो वहाँ कैसे भाव होंगे? 'व्यवस्थित' कहकर भावाभाव हुए बगैर आगे चलने लगेंगे!

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष

प्रश्नकर्ता : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - जीवन के ये चार पद ज़रा समझाइए।

दादाश्री : अर्थ यानी अपने यहाँ लोग जिसे सांसारिक स्वार्थ कहते हैं वह। वहाँ से लेकर परमार्थ तक का अर्थ वह अर्थ है। ठेठ परमात्मा तक अर्थ रहता है।

परमार्थ का अर्थ क्या है? आत्मा संबंधी ही जहाँ पर स्वार्थ है, दूसरा कोई स्वार्थ है ही नहीं, आत्मा के अलावा संसार संबंधी कोई स्वार्थ ही नहीं है, वह परमार्थ कहलाता है। और आत्मा संबंधी स्वार्थी तो 'ज्ञानी पुरुष' होते हैं।

अर्थ फिर जिस स्वार्थ में ले जाता है, उस समय वह सकाम में परिणामित होता है और जब अर्थ परमार्थ में जाता है तब निष्काम में परिणामित होता है। वही का वही काम मोक्ष में ले जाता है और वही का वही काम संसार में भटकाता है।

धर्म में भी वही का वही धर्म संसार में भटकाता है और वही का वही धर्म मोक्ष में ले जाता है।

प्रश्नकर्ता : धर्म की परिभाषा क्या है?

दादाश्री : इस संसार में भटकाए वह शुभ धर्म है और मोक्ष में ले जाए वह शुद्ध धर्म है।

धर्म का नाम क्यों पड़ा? तब कहे कि अधर्म था इसलिए धर्म नाम पड़ा। अर्थात् यह धर्माधर्म है। संसार के धर्मिष्ठ पुरुष क्या करते हैं? अधर्म के विचार आएँ, उन्हें पूरा दिन धक्के मारते रहते हैं। अधर्म को धक्का मारना, उसे धर्म कहा है।

प्रश्नकर्ता : धर्म का पालन करे तो अधर्म ओटोमेटिकली निकल जाएगा न?

दादाश्री : धर्म दो प्रकार के हैं। एक स्वाभाविक धर्म और दूसरा विशेष धर्म। जब शुद्धात्मा प्राप्त होता है तब स्वाभाविक धर्म में आते हैं। स्वाभाविक धर्म ही सच्चा धर्म है। उस धर्म में कुछ भी 'बीनना' है ही नहीं। विशेष धर्म में सारा ही 'बीनना' है।

लौकिक धर्म किसे कहते हैं? दान देना, लोगों पर उपकार करना, ओब्लाइजिंग नेचर रखना, लोगों की सेवा करनी, उन सभी को धर्म कहा है। उनसे पुण्य बँधते हैं। और गालियाँ देने से, मारपीट करने से, लूट लेने से, पाप बँधते हैं। पुण्य और पाप जहाँ है, वहाँ सच्चा धर्म है ही नहीं। सच्चा धर्म पुण्य-पाप से रहित है। जहाँ पुण्य-पाप को हेय माना जाता है और उपादेय खुद के स्वरूप को माना जाता है, वह रियल धर्म है। अर्थात् ये रियल और रिलेटिव, दोनों धर्म अलग हैं।

अर्थ सांसारिक स्वार्थ में परिणामित हो, वह अधर्म और आत्मिक स्वार्थ में परिणामित हो, वह धर्म कहलाता है। वैसा ही सकाम और निष्काम का है।

प्रश्नकर्ता : धर्म के बिना कोई जीव रह सकता है क्या?

दादाश्री : कोई जीव धर्म से बाहर होता ही नहीं है। धर्म में होता है या फिर अधर्म में होता है, उसके सिवाय नहीं होता है।

प्रश्नकर्ता : कुछ ईश्वर को नहीं मानते हैं न?

दादाश्री : इस जगत् में ईश्वर को नहीं माननेवालों को हमें नास्तिक नहीं कहना है। उन्हें नास्तिक कहना भयंकर गुनाह है। उसका क्या कारण है? जिसे 'मैं हूँ' ऐसा स्वयं के अस्तित्व का भान है, वे आस्तिक कहलाते हैं और धर्म सब अलग-अलग प्रकार के होते हैं। कोई नीति का प्रमाण मानता है, कोई सत्य का प्रमाण मानता है, कोई मनुष्यों को बचाने का प्रमाण मानता है, वह भी एक धर्म का चरण ही है। मंदिर बनवाने का नाम ही धर्म नहीं है। जो पूर्णतः नीतिपरायण है वह कभी भी मंदिर में दर्शन करने नहीं जाए तो भी चलेगा। उसे दूसरी किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। प्रामाणिकता तो धर्म का सबसे बड़ा साधन है। प्रामाणिकता और नीति जैसा बड़ा और कोई धर्मसाधन है ही नहीं। यह तो नीति, प्रामाणिकता जैसा कुछ नहीं रहता, इसलिए फिर खुद धर्म में जाकर, मंदिर में जाकर, 'हे प्रभु! मैं कपड़ा खींचकर बेचता हूँ, परन्तु मुझे माफ़ करना' ऐसा कहता है। ये व्यापारी कपड़ा बेचते समय खींचते हैं, वे किसलिए खींचते हैं? मैं उन्हें पूछता हूँ कि भगवान की भक्ति करते हो और यह कपड़ा किसलिए खींचते हो? तब वे कहते हैं कि सभी खींचते हैं, इसलिए मैं भी खींचता हूँ। मैंने कहा, 'सब तो कुएँ में गिरेंगे, तुम भी गिरोगे? तुम किसलिए खींचते हो?' तब व्यापारी कहता है, 'चालीस मीटर कपड़ा देते हैं, उसमें खींच-खींचकर दें तो पाव मीटर बढ़ता है!' अरे, यह खींचने की कसरत किसलिए करता है? अरे, यह तो तू बार-बार रौद्रध्यान करता है! तेरी क्या दशा होगी? महावीर की सभा में बैठा हुआ मैंने तुझे देखा था। महावीर की सभा में

बैठे थे, वे ही लोग अभी यहाँ पर कपड़ा खींचकर नापते रहते हैं और इसलिए इन लोगों की मोक्ष में जाने की बारी नहीं आती। ये तो चटनी के लिए बैठे हुए हैं। कहीं पूरे थाल के लिए ये लोग नहीं बैठे हुए हैं।

प्रश्नकर्ता : सत्य, अहिंसा, प्रामाणिकता, ये सब जो दिव्य गुण हैं, उनमें से एकाध गुण की उपासना करें तो ऐसा है कि बाकी के ओटोमेटिक आ जाएँगे?

दादाश्री : एक पकड़ ले तो सब आ जाएँगे। एक को पकड़कर बैठ जाए तो सारे ही आ जाएँगे!

छूटने का कामी

प्रश्नकर्ता : श्रद्धा से मनुष्य जीवन में टिक सकता है? वह किस प्रकार?

दादाश्री : हम एक स्टीमर में बैठे, फिर किसीके मन में ऐसा वहम आया कि यह स्टीमर डूब जाए ऐसा है, तो हम उतर जाते हैं और श्रद्धा बैठे तो? तो फिर बैठे रहोगे या नहीं बैठे रहोगे? क्या लगता है आपको? श्रद्धा नहीं बैठे तो तुरन्त ही उठ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : कईबार हम श्रद्धा रखकर काम करते हैं, परन्तु उसमें हमें मुश्किल ही आती है।

दादाश्री : वह श्रद्धा नहीं है, वह विश्वास है। विश्वास में मुश्किलें आती है, श्रद्धा में नहीं आतीं।

प्रश्नकर्ता : मेरे साथ ऐसा हुआ है।

दादाश्री : श्रद्धा और विश्वास दो अलग चीज़ें हैं। श्रद्धा बिलीफ़ के अधीन है। विश्वास आए, वहाँ पर उसका विश्वासघात भी हो सकता है!

यह पूरा जगत् ही बिलीफ़ के आधार पर चल रहा है। परन्तु इस जगत् में दुःख क्यों है? क्योंकि उसे रोंग बिलीफ़ें मिली हैं और यदि राइट बिलीफ़ होती तो इस जगत् में दुःख होते ही नहीं! जीव मात्र बिलीफ़,

मान्यता पर ही है। इसमें मनुष्य के अलावा अन्य जीव तो आश्रित ही हैं। देवी-देवता, जानवर सभी आश्रित ही हैं। सिर्फ मनुष्य ही निराश्रित है।

प्रश्नकर्ता : ये मनुष्य निराश्रित हैं, वह किस प्रकार? ये देवी-देवता आश्रित हैं, वह किस प्रकार?

दादाश्री : सिर्फ मनुष्य ही निराश्रित है। मनुष्य के अलावा दूसरा कोई जीव, देवी-देवता भी, 'मैं कर्त्ता हूँ' ऐसा भान नहीं रखते हैं। और जहाँ पर कर्त्ता बना, वहाँ भगवान का आश्रय छूट जाता है। भगवान क्या कहते हैं? 'भाई, तू कर लेता है तो तू अलग और मैं अलग!' फिर भगवान का और आपका क्या लेना-देना? आप फिर थक जाते हो, ऊब जाते हो इसलिए महावीर भगवान की मूर्ति या कृष्ण भगवान की मूर्ति के सामने बैठकर सिर फोड़ते हो। फिर वहाँ पर कोई बाप भी आश्रित के रूप में स्वीकार नहीं करेगा।

कर्त्तापन की रोंग बिलीफ़ टूटेगी तभी आप आश्रित हो, सर्वस्व हो! परन्तु रोंग बिलीफ़ छूटती नहीं न?

प्रश्नकर्ता : 'दादा' छुड़वाते हैं न?

दादाश्री : वह तो छूटना हो उन्हें छुड़वाते हैं। जिसे छूटना ही नहीं हो उसे किस तरह छुड़वाए? क्योंकि भगवान के घर पर भी नियम है। भगवान का क्या नियम है? जिसे छूटना हो उसे भगवान कभी भी बाँधते नहीं हैं और जिसे बँधना हो उसे कभी भी छुड़वाते नहीं हैं! अब जगत् में लोगों को पूछने जाएँ कि आपको बँधना है या छूटना है?

प्रश्नकर्ता : हमें किस तरह से समझ में आएगा कि बँधना है या छूटना है?

दादाश्री : बँधने के कारणों का सेवन करते हैं या छूटने के कारण का सेवन करते हैं, उस पर से समझ में आएगा। छूटने के कारणों का सेवन करे, उसे छूटने के संयोग मिल जाते हैं। वहाँ उसे भगवान हेल्प ही करते रहते हैं और जो बँधने के कारणों का सेवन करता है, उसे भी भगवान

हेल्प करते रहते हैं। भगवान का तो हेल्प करने का ही काम है न!

प्रश्नकर्ता : हेल्प करें उसमें भगवान का पक्षपात है क्या? मदद करने जितना पक्षपात है?

दादाश्री : भगवान खुद मदद नहीं करते, यह कुदरती रचना है सारी - स्वतंत्र : साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स है। क्योंकि जीव मात्र स्वतंत्र है। स्वतंत्र अर्थात् कुदरत उसकी मदद में होती ही है। खुद कहेगा कि मुझे चोरी करनी है तो चंद्र, तारे, सबकुछ हाज़िर होते हैं। भगवान तो उसमें सिर्फ 'लाइट' देने का काम ही करते हैं। उसमें मूल चोरी करने का भाव खुद का है। कुदरत उसे उसका पुण्य जहाँ खर्च करवाना हो वहाँ पर हेल्प करती है, यानी कि उसे उसके सारे संयोग मिलवा देती है। भगवान इसमें सिर्फ लाइट ही देते रहते हैं।

भक्ति, योग और ध्यान

प्रश्नकर्ता : गीता में कहा है कि पृथ्वी पर पाप का भार बढ़ जाता है तब उसका नाश करने के लिए 'मैं' जन्म लेता हूँ, वह 'मैं' कौन है?

दादाश्री : उसे ही आत्मा कहते हैं, मैं अर्थात् कृष्ण नहीं। 'मैं' का अर्थ ही आत्मा। नियम ऐसा है कि जब-जब पृथ्वी पर पाप का भार बढ़ता है, तब किसी महान पुरुष का जन्म हो ही जाता है। अर्थात् प्रत्येक युग में महान पुरुषों का जन्म होता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहते हैं कि श्री कृष्ण भगवान ने रासलीला की थी, उसका क्या कारण है?

दादाश्री : भगवान रासलीला खेले ही नहीं। आपको किसने कहा कि भगवान रासलीला खेले थे? वे तो सारी बाते हैं। कृष्ण तो महान योगेश्वर थे। लोगों ने रासलीला में लाकर उनका दुरुपयोग किया।

कृष्ण का दो प्रकार से आराधन किया जाता है। बालमंदिर के मनुष्य हैं, उन्हें बालकृष्ण के दर्शन करने चाहिए और वैकुंठ में जाना हो, उन्हें

योगेश्वर कृष्ण के दर्शन करने चाहिए। इन दो तरीकों में से आपको क्या चाहिए?

प्रश्नकर्ता : भक्ति-ध्यान, वह नशा है?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : तो फिर नशेवाला जीवन जीना अच्छा या कुदरती!

दादाश्री : कुदरती जीवन जीना हो तो बहुत ही अच्छा। यह सारा कुदरती रखा ही कहाँ है? इस कुदरत ने बहुत ही सुंदर किया है! कुदरती हो तभी प्रगति है, नहीं तो प्रगति नहीं!

प्रश्नकर्ता : कुंडलिनी का जो ध्यान करते हैं, वह खुली आँखों से करें, वह अच्छा है या बंद आँखों से करें वह अच्छा?

दादाश्री : ऐसा है कि ध्यान आप खुली आँखों से करोगे तो भी बंधन है और बंद आँखों से करोगे तो भी बंधन है। कुंडलिनी का ध्यान नहीं करना है। ध्यान खुद के स्वरूप का करना है। कुंडलिनी तो उसमें साधन है। साधन का उपयोग करना है। खुद के स्वरूप की रमणता उत्पन्न हो गई, उसीका नाम मुक्ति।

प्रश्नकर्ता : सांख्ययोग किस तरह प्राप्त होता है?

दादाश्री : सिर्फ सांख्य एक पंखवाला कहलाता है। उससे उड़ा नहीं जा सकता। इसलिए सांख्य और योग, उन दो पंखों से उड़ा जा सकता है! बिना योग के, बिना मानसिक पूजा के आगे बढ़ा किस तरह जाएगा? मानसिक पूजा वगैरह सबकी व्यवस्था की है, वह कितनी अच्छी व्यवस्था है!

यह सांख्य अर्थात् ज्ञान जानना चाहिए। देह के धर्म, मन के धर्म, बुद्धि के धर्म, आत्मा के धर्म, वह सब जानना चाहिए। उसे ही सांख्य कहा जाता है और बिना योग के सांख्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए योग, यहाँ मानसिक पूजा (गुरु महाराज की) कि जिनके आधार पर आप

प्रगति करना चाहते हो, उनका आधार लेना पड़ेगा, अवलंबन लेना पड़ेगा, तो आगे काम बढ़ेगा।

प्रश्नकर्ता : शिव की पहचान क्या है? शिव कहाँ पर है?

दादाश्री : जो कल्याण स्वरूप हो चुके हों, वे पुरुष शिव कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : निर्विचार और निर्विकल्प, उन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : बहुत फर्क है। निर्विचार अर्थात् विचार रहितता और निर्विकल्प अर्थात् विकल्प रहितता। विचार खत्म हो गए यानी शून्य हो गया। विचारशून्य साधु बन जाते हैं, कुछ लोग ऐसे भी बन जाते हैं। विचार करना बंद कर देता है, फिर विचारों पर ध्यान नहीं देता, इसलिए फिर दिनोंदिन विचारशून्य अर्थात् पत्थर जैसा होता जाता है। ऐसे ऊपर से सुंदर दिखता है, शांतमूर्ति लगता है, परन्तु भीतर ज्ञान नहीं होता!

प्रश्नकर्ता : निर्विकल्प का अर्थ कुछ लोग निर्विचार बताते हैं।

दादाश्री : 'ज्ञानी' के अलावा निर्विकल्प कोई होता ही नहीं। निर्विचारी कई हो सकते हैं। विचारशून्यता में से फिर वापिस उसे विचार की भूमिका उत्पन्न करनी पड़ेगी। मन विचार करना बंद कर दे, तो सबकुछ 'स्टेन्डस्टिल' (थमना) हो जाएगा। इसलिए कृपालुदेव ने ऐसा कहा है कि, 'कर विचार तो प्राप्त कर।' अर्थात् विचार की तो ठेठ तक ज़रूरत पड़ेगी और 'प्राप्ति' के बाद विचार की ज़रूरत नहीं है फिर। फिर विचार ज्ञेय बन जाते हैं और खुद ज्ञाता बनता है।

प्रश्नकर्ता : महावीर स्वामी ने अंतिम देशना दी, तो उस समय भी उन्हें विचार तो थे ही, ऐसा अर्थ हुआ न?

दादाश्री : भगवान महावीर को भी ठेठ तक विचार थे। परन्तु उनके विचार कैसे थे कि प्रत्येक समय पर एक विचार आए और जाए। उसे निर्विचार कहा जा सकता है। हम विवाहस्थल पर खड़े हों तब सभी लोग नमस्कार करने आते हैं न! नमस्कार करके आगे चलने लगते हैं। अर्थात्

एक कर्म का उदय हुआ और उसका विचार आया, फिर वह कर्म चला जाता है, फिर वापिस दूसरा कर्म उदय में आता है। इस प्रकार उदय और अस्त होते रहते हैं। किसी जगह पर रुकते नहीं हैं। उनकी मन की ग्रंथियाँ सब खत्म हो चुकी होती हैं, इसलिए उन्हें विचार परेशान नहीं करते! हमें भी विचार परेशान नहीं करते!

विचार तो मन का धर्म है। एक विचार आए और जाए और कुछ भी स्पर्श नहीं करे, उसे मनोलय ही कहा जाता है। मन का तूफ़ान नहीं होता। मन बगीचे जैसा लगता है, गर्मी में फुहारें उड़ती रहती हों वैसा लगता है, और निर्विकल्प तो बहुत ऊँचा पद है। कर्त्तापद का भान टूटा वह निर्विकल्प हुआ। देहाध्यास जाने के बाद निर्विकल्प पद आता है।

प्रश्नकर्ता : समाधि और सुषुप्त अवस्था के बारे में कहिए।

दादाश्री : आज हमारे देश में जिसे समाधि मानते हैं, वे सुषुप्त अवस्था को ही समाधि कहते हैं। कुछ महात्मा मन के 'लेयर्स' (परतें) में गहरे उतर जाते हैं। कोई बुद्धि के लेयर्स में उतर जाता है। उस समय बाहर का भान भूल जाते हैं, उसे लौकिक समाधि कहा जाता है।

समाधि किसे कहते हैं? अखंड जागृतिपूर्वक की समाधि का नाम समाधि! शरीर के ऊपर धूल का एक कण भी गिर गया हो तो पता चल जाए, उसे समाधि कहते हैं। अपने यहाँ लोग हेन्डल मारकर समाधि करने जाते हैं, उसे समाधि नहीं कहते। वह कल्चर्ड समाधि कहलाती है। सच्ची समाधि मुझे निरंतर रहती है। आधि-व्याधि-*उपाधि* में भी समाधि रहती है वह सच्ची समाधि! अभी मुझे जेल में डालने के लिए पकड़कर ले जाए तो भी मेरी समाधि जाएगी नहीं! ऐसी ही दशा रहेगी! यहाँ पर मुक्त है उसमें भी समाधि है, वहाँ जेल में भी समाधि है।

प्रश्नकर्ता : ध्यान करने से प्रकाश का अनुभव होता है, वह मानसिक होता है या वास्तव में?

दादाश्री : वह प्रकाश ही नहीं है, वह तो कल्पना है। इन सभी कल्पनाओं को ही सत्य माना है।

मैं १७–१८ वर्ष का था तब आँख दबाकर मैंने एक प्रयोग किया था। एक बड़ा चमकारा हुआ और उजाला–उजाला दिखा! मैं सोच में पड़ गया कि यह क्या हुआ! फिर मुझे समझ में आया कि यह तो आँख की लाइट चली गई।

जो भौतिक है वह कभी भी आत्मा होनेवाला नहीं है, जो आत्मा है वह कभी भी भौतिक नहीं हो सकता। दोनों निराली ही वस्तुएँ हैं।

प्रश्नकर्ता : निर्गुण अर्थात् क्या?

दादाश्री : निर्गुण अर्थात् जहाँ पर प्रकृति का एक भी गुण नहीं रहा वह, और सगुण अर्थात् देहधारी रूप में परमात्मा आए हों तो सगुण परमात्मा कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष का रास्ता क्या?

दादाश्री : आप बँधे हुए हो ऐसा आपको लगता है? जिसे जेल में डाला हो, उसे मुक्ति चाहिए।

प्रश्नकर्ता : बंधन तो है ही न!

दादाश्री : बंधन में क्या–क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : अभी तो यह संसार बहुत अच्छा लगता है।

दादाश्री : कड़वा नहीं लगता?

प्रश्नकर्ता : गहराई में जाएँ तो कड़वा लगे।

दादाश्री : इतनी अधिक कड़वाहट लगती है, फिर भी इस जीव का कैसा स्वभाव है? वह वापिस आम काटकर खाकर सो जाता है! अरे अभी तो बीवी के साथ लड़ा था और वापिस क्या देखकर आम खा रहा है? लड़ाई होती है और बीवी आम काटकर दे तो किस काम की? एक बार लड़ाई हो जाए, वह किस काम का? आप चला लेते हैं या नहीं चला लेते? फिर आप लड़ो तो वह भी चला लेगी, फिर क्या करे वह? दोनों 'मजिस्ट्रेट'!

प्रश्नकर्ता : मनुष्य जीवन का मुख्य हेतु साधने का मार्ग कौन-सा है?

दादाश्री : यह मनुष्य जीवन इसलिए ही मिला है कि यहाँ से अपनी मुक्ति हो सकती है, भगवान की प्राप्ति की जा सकती है। मनुष्यगति में से ही मुक्ति होती है। अनंत जन्मों से हम प्रयत्न करते रहते हैं, परन्तु सच्चा मार्ग नहीं मिलता। सच्चा मार्ग मिले तब मनुष्यजन्म में से मुक्ति हो सके, ऐसा है। दूसरी किसी योनि में मुक्ति नहीं हो सकती, मनुष्ययोनि में ही अज्ञान से मुक्ति हो सकती है, देह सहित मुक्ति हो सकती है।

इस मनुष्य जीवन का हेतु जो है, उसे साधने का मार्ग, 'ज्ञानी पुरुष' हमें मिलें, तो प्राप्त हो सकता है, और अपना सभी प्रकार का काम हो सकता है।

असंयोगी, वही मोक्ष

प्रश्नकर्ता : हमें मोक्ष नहीं चाहिए, परन्तु संयोग रहित होना है।

दादाश्री : यानी जहाँ संयोग होंगे वहाँ पर वियोग होगा ही। आप कान इस तरह उल्टा पकड़वाते हो!

आत्मा के साथ कोई संयोग नहीं रहे अर्थात् मोक्ष हो गया! यह तो स्थूल संयोग, सूक्ष्म संयोग और वाणी के संयोग मिलते ही रहते हैं और वे संयोग फिर वियोगी स्वभाव के हैं। वियोगी वस्तु कुछ और नहीं है। अर्थात् आपको सिर्फ संयोगों की चिंता करनी है कि साथ में संयोग नहीं रहें! सिर्फ संयोग नहीं रहेंगे तो बहुत हो गया। इसलिए भगवान ने कहा है कि, 'एगो मे शाषओ अप्पा...

तम्हा संजोग संबंधम्, सव्वम् तिविहेण वोसरियामि...'

इस प्रकार आपको संयोग अर्पण कर देने हैं और फिर मोक्ष नहीं चाहिए, ऐसा बोलते हो!

प्रश्नकर्ता : धर्म के प्रति मनुष्य को आकर्षण नहीं होता, थोड़ा

समय होता है और फिर छोड़ देता है फिर धर्म की तरफ जाता है, ऐसा क्यों?

दादाश्री : इस जगत् में सिर्फ आकर्षण ही नहीं है। आकर्षण और विकर्षण दोनों हैं, वे द्वंद्वरूप हैं। यह जगत् ही द्वंद्वरूप है। सिर्फ आकर्षण या सिर्फ विकर्षण नहीं होता है, नहीं तो फिर से आकर्षण होगा ही नहीं और सिर्फ धर्म का आकर्षण होगा तो भी लोग ऊब जाएँगे, क्योंकि इस संसार में जो धर्म चलते हैं, वे यथार्थ धर्म नहीं हैं, भ्रांतिधर्म हैं।

प्रश्नकर्ता : परन्तु इस भ्रांतिधर्म की भी ज़रूरत है न?

दादाश्री : हाँ, डेवलप होने के लिए ज़रूरी है। कुटते-कुटते आगे बढ़ना है। जैसे-जैसे कुटता है, पिसता है वैसे-वैसे बुद्धि बढ़ती है। जैसे-जैसे बुद्धि बढ़ती है, वैसे-वैसे जलन बढ़ती जाती है इसलिए स्वधर्म की शरण ढूंढ़ता है।

सच्ची सामायिक

प्रश्नकर्ता : दादा, शास्त्र पढ़ते हुए थकान लगती है, सामायिक करते हुए थकान लगती है, प्रतिक्रमण करते हुए थकान लगती है, पूजा करते हुए थकान लगती है, थकान लगे तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : भगवान ने सामायिक किसे कहा है? जिसे आर्तध्यान, और रौद्रध्यान नहीं हों, उसे पूरे दिन ही सामायिक है, ऐसा कहा है! महावीर भगवान कितने समझदार थे! आपके लिए कुछ भी मेहनत करने का रखा नहीं, और इन लोगों की एक भी सामायिक भगवान एक्सेप्ट नहीं करते, आर्तध्यान और रौद्रध्यान एक *गुंठाणे* के लिए यानी, अड़तालीस मिनिट के लिए बंद हो जाने चाहिए। 'मैं चंदूभाई हूँ' करके सामायिक करते है, जैसे इस नीम को काट दें तब भी फिर से फूटता है, फिर भी वह कड़वा ही रहता है ना? क्यों, काटने के बाद अंदर चीनी डालें, तब भी कड़वा रहेगा?

प्रश्नकर्ता : हाँ, मूल में ही ऐसा है, दादा।

दादाश्री : मूल स्वभाव में ही ऐसा है दादा! वैसे ही ये चंदूलाल

सारे राग-द्वेष बंद करके सामायिक में बैठे, तो वे किसकी सामायिक करेंगे? न तो आत्मा जाना, न ही मिथ्यात्व समझते हैं! जो मिथ्यात्व समझता है उसे समकित हुए बगैर रहेगा ही नहीं। यानी सामायिक करने के लिए सेठ बैठे हो, परन्तु उन्हें और कुछ आता नहीं है, तो वे क्या करें? खुद का एक घेरा बना देते हैं और दूसरे कोई विचार आएँ, दुकान के, लक्ष्मी के, विषय के, तो उन्हें घेरे से बाहर हाँकते रहते हैं! जिस तरह एक घेरे में गाय के बछड़े घुस जाते हों, कुत्ते घुस जाते हों, तो उन्हें हाँकते रहते हैं और घेरे में घुसने नहीं देते हैं, उसे सामायिक कहते हैं। फिर भी वह सामायिक हो जाती है, क्योंकि आर्तध्यान और रौद्रध्यान उसमें नहीं होते हैं।

प्रश्नकर्ता : आर्तध्यान और रौद्रध्यान उसमें नहीं होते हैं, तब फिर समता ही कहलाएगी न?

दादाश्री : परन्तु आर्तध्यान और रौद्रध्यान जाते नहीं है। वे तो रहते ही हैं। इसलिए सामायिक करने से पहले यह विधि करनी पड़ती है, 'हे भगवान! यह चंदूलाल, मेरा नाम, यह मेरी काया, यह मेरी जात, मेरा मिथ्यात्व, सबकुछ आपको अर्पण करता हूँ। अभी मुझे यह सामायिक करते समय वीतराग भाव दीजिए।' ऐसे विधिपूर्वक करें तो काम होगा।

प्रश्नकर्ता : तीर्थंकर बनने के लिए इस काल में कैसे गुणों की ज़रूरत पड़ेगी?

दादाश्री : निरंतर जगत् कल्याण की भावना, दूसरी कोई भी भावना नहीं होती। खाने के लिए जो मिले, सोने के लिए जो मिले, ज़मीन पर सोने को मिले, फिर भी निरंतर भावना क्या होती है? जगत् का किस तरह कल्याण हो। अब वह भावना उत्पन्न किसे होती है? खुद का कल्याण हो चुका हो, उसे यह भावना उत्पन्न होती है। जिसका खुद का कल्याण नहीं हुआ हो, वह जगत् का कल्याण किस तरह करेगा? भावना करे तो होगा। 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ तो उसे उस 'स्टेज' में ला देते हैं, और स्टेज में आने के बाद उनकी आज्ञा में रहे तो भावना करना सीख जाता है।

प्रश्नकर्ता : नमस्कार और वंदन, ये दोनों समान कक्षा के हैं या अलग–अलग भाव हैं?

दादाश्री : दोनों अलग–अलग भाव से हैं। नमस्कार तो बहुत ऊँची चीज़ है। वंदन तो, यों ही ऐसे हम सिर झुकाकर खड़े–खड़े हाथ जोड़ें, उसे वंदन कहते हैं और नमस्कार तो कितने ही अंग जमीन पर स्पर्श होते हैं तब होता है। अपने में साष्टांग नमस्कार कहते है न? अर्थात् आठों ही अंग ज़मीन को स्पर्श करें, तब वह नमस्कार माना जाता है। परन्तु एक बार ही यदि सच्चे दिल से करें न, तो भी बहुत हो गया!

प्रश्नकर्ता : ज्ञान बेचा जा सकता है? कुछ लोग उनके प्रवचनों की टिकिट रखते हैं।

दादाश्री : ऐसा है कि जहाँ पैसों का लेन–देन है, वहाँ ज्ञान है ही नहीं। वह संसारी ज्ञान होता है, वह मोक्ष का ज्ञान नहीं है।

प्रश्नकर्ता : जीवों का ऐसा कोई क्रम है कि मनुष्य में आने के बाद मनुष्य में ही आएगा या और कहीं जाता है?

दादाश्री : हिन्दुस्तान में मनुष्यजन्म में आने के बाद चारों ही गतियों में भटकना पड़ता है। फ़ॉरेन के मनुष्यों को ऐसा नहीं है। उनमें दो–पाँच प्रतिशत अपवाद होते हैं, बाकी के सभी ऊँचे चढ़ते ही रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : ये लोग जिन्हें विधाता कहते हैं, वे किसे कहते हैं?

दादाश्री : वे कुदरत को ही विधाता कहते हैं। विधाता नाम की कोई देवी नहीं है। साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स (वैज्ञानिक सांयोगिक प्रमाण) वही विधाता है। अपने यहाँ लोगों ने नक्की किया है कि छठ्ठी के दिन विधाता लेख लिख जाते हैं। विकल्पों से यह सब ठीक है और वास्तविक जानना हो, तो यह ठीक नहीं है।

प्रश्नकर्ता : निर्दोष बालक को शारीरिक वेदना भुगतनी पड़ती है, उसका क्या कारण है?

दादाश्री : बालक के कर्म के उदय बालक को भुगतने हैं और मदर को वह देखकर भुगतने होते हैं। मूल कर्म बालक का, उसमें मदर की अनुमोदना थी, इसलिए मदर को देखकर भुगतना पड़ता है। करना, करवाना और अनुमोदन करना, ये तीनों कर्मबंधन के कारण हैं।

प्रश्नकर्ता : स्वस्तिक का क्या अर्थ है?

दादाश्री : स्वस्तिक का 'सिम्बल' (चिह्न) गतिसूचक है, उसकी चार भुजाएँ चार गतियों को सूचित करती हैं और सेन्टर में मोक्ष है। चार गतियों में से अंत में मोक्ष में ही जाना पड़ेगा। चार गतियाँ अर्थात् मनुष्यगति, देवगति, तिर्यंच(पशु)गति और नर्कगति। ये चार गतियाँ पुण्य और पाप के आधार पर हैं और पुण्य-पाप से रहित हो गया और 'ज्ञान' प्राप्त हो गया तो मोक्ष की गति होती है। वहाँ पर क्रेडिट भी नहीं है और डेबिट भी नहीं है। यहाँ क्रेडिट होता है तब देवगति में जाता है या फिर प्रधानमंत्री बनता है। यह आप 'एस.ई.' बने, तो वह क्रेडिट के कारण है। और डेबिट हो तो? तो मिल में नौकरी करनी पड़ेगी। पूरा दिन मेहनत करो तो भी पूरा नहीं पड़ता और क्रेडिट-डेबिट नहीं हुआ तो मोक्ष होता है।

मंदिरों का महत्व

प्रश्नकर्ता : यदि जिनालय नहीं होते, मंदिर नहीं होते, तो फिर जिस प्रकार हमारे लिए दादाश्री प्रकट हुए हैं, उस प्रकार से उनके लिए कोई न कोई प्रकट हुआ होता न?

दादाश्री : वह तो ठीक है। वह एक प्रकार का विकल्प है। ऐसा हुआ है, ऐसा नहीं होता तो दूसरा कोई उपाय तो होता न? दूसरा कुछ न कुछ मिल जाता। परन्तु इन मंदिरों का उपाय बहुत ही अच्छा है। हिन्दुस्तान का यह सबसे बड़ा साइन्स है। यह सबसे अच्छी परोक्ष भक्ति है, परन्तु यदि समझे तो! अभी तो जिनालय में जाते समय मैं महावीर भगवान से पूछता हूँ कि, 'ये सब लोग आपके इतने अधिक दर्शन करते हैं, तो भी इतनी सारी अड़चनें क्यों आती हैं?' तब महावीर भगवान क्या कहते हैं? 'ये लोग दर्शन करते समय मेरा फोटो लेते हैं, बाहर उनके जूते

रखे हुए हैं उनका फोटो लेते हैं और साथ-साथ दुकान का भी फोटो लेते हैं! इसलिए ऐसा होता है। अभी कोई जूते ले जाएगा, उसका भी फोटो लेते हैं!

अंतिम पल में रामनाम

प्रश्नकर्ता : जन्म-मरण का फेरा टालने के लिए इस मनुष्य को लोगों ने श्री राम-श्री कृष्ण, ऐसे सब नाम दिए होते हैं, परन्तु अंतिम घड़ी में कुछ भी याद नहीं आता। तो अंतिम घड़ी में क्या करना चाहिए कि खुद आत्मा में रह सके और मोक्ष में जा सके?

दादाश्री : सच कहते हैं, अंतिम घड़ी में इसमें से कुछ भी याद नहीं आता। अंतिम घड़ी में तो पूरे जीवन का सार याद आता है। सार में तो सबकुछ आलेखन होता है। आप जिनालय में दर्शन करने जाते हों, तो वह बहीखाता बड़ा होता है। वह थोड़ा-बहुत हाज़िर होता है! नहीं तो बेटियाँ दिखती हैं कि इसकी शादी करनी रह गई। तब बच्चे कहते हैं, 'चाचा, नौकार मंत्र बोलो।' तब चाचा कहेगा, 'बेअक्कल है।' अरे, जानेवाला है अब तो सीधा मर न! यह अक्कल का बोरा बेचने जाए तो चार आने भी नहीं मिलें! अभी जाने की तैयारियाँ हो रही हैं, अर्थी बाँधने की तैयारियाँ कर रहे हैं, तब यह वापिस हिसाब निकाल रहा है! किस तरह का है?

यानी अंतिम घड़ी में जीवन का सार आता है। और कुछ भी नहीं चलेगा, इसलिए 'आत्मा का' पहले कर लेना।

दादा भगवान कौन?

प्रश्नकर्ता : 'दादा भगवान' कौन?

दादाश्री : ये दिखते हैं वे 'दादा भगवान' नहीं हैं। आपको जो याद आते हैं, वे सच्चे 'दादा भगवान' हैं! ये जो दिखते हैं, वे तो 'ए. एम. पटेल' हैं और भीतर बैठे हैं प्रकट परमात्म स्वरूप, वे 'दादा भगवान' हैं!

प्रश्नकर्ता : वे 'दादा भगवान' कब हाज़िर रहते हैं?

दादाश्री : निरंतर हाज़िर ही हैं। इन सबको निरंतर हाज़िर रहते हैं!

प्रश्नकर्ता : परन्तु आपश्री को 'दादा भगवान' क्यों कहते हैं?

दादाश्री : यह 'आपश्री' आप किसे मानते हो? ये जो दिखते हैं, उन्हें कहते हो? आप तो उन्हें ही पहचानते हो न? 'आपश्री' मुझे कहते हो न, वह क्या है? ये जो दिखते हैं, वे तो भादरण गाँव के पटेल हैं और कोन्ट्रेक्ट का व्यवसाय करते हैं। 'दादा भगवान' तो अंदर जो व्यक्त हुए हैं, आत्मा व्यक्त हुआ है, प्रकट हुआ है, वे 'दादा भगवान' हैं, जिन्हें संसारी 'प्रकट पुरुष' कहते हैं!

प्रश्नकर्ता : मनुष्य कदापि ईश्वर या परमात्मा नहीं बन सकता। फिर भी लोगों से खुद के ईश्वर या परमात्मा होने का दावा करे, ईश्वरी चमत्कार होने का दावा करे, वह क्या ठीक है?

दादाश्री : वह दावा करने की ज़रूरत ही नहीं है! 'परमात्मा हूँ' ऐसा किसीसे दावा किया ही नहीं जा सकता, फिर भी यदि करे तो वह मूर्ख कहलाएगा।

लोग मुझे भगवान कहते हैं, परन्तु भगवान किसे कहते हैं? इस देह को कभी भी भगवान नहीं कह सकते। ये तो पटेल हैं। ये दिखते हैं, वे 'दादा भगवान' नहीं हैं। 'दादा भगवान' तो भीतर प्रकट हुए हैं वे हैं, देहधारी को भगवान किस प्रकार कह सकते हैं?!

प्रश्नकर्ता : भगवान व्यक्ति के रूप में हैं या शक्ति के रूप में हैं?

दादाश्री : दोनों सच्चे हैं, परन्तु जो व्यक्ति के रूप में पूजे उसे अधिक लाभ मिलेगा। व्यक्ति के रूप में अर्थात् जहाँ भगवान व्यक्त हुए हो वहाँ! सिर्फ मनुष्य में ही भगवान व्यक्त हो सकते हैं, दूसरी किसी योनि में भगवान व्यक्त नहीं हो सकते। आत्मा ही परमात्मा है, परन्तु व्यक्त होना चाहिए। व्यक्त हो जाए, खुलासा हो जाए फिर चिंताएँ चली जाती हैं, *उपाधियाँ* जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : भगवान कहाँ पर व्यक्त होते हैं?

दादाश्री : भगवान व्यक्त हो जाएँ, ऐसे नहीं हैं। वे अव्यक्तरूप में रहे हुए हैं!

प्रश्नकर्ता : आप जैसों में ही भगवान व्यक्त होते हैं, और कहीं पर व्यक्त नहीं होते, इसलिए हम यहाँ पर आए हैं।

दादाश्री : वे और कहीं तो होते नहीं, किसी ही घर में पूर्ण उजाला हो जाता है, फिर उस उजाले से दूसरे सभी दीपक प्रज्वलित होते हैं। एक दीये में से दूसरा दीया प्रकाशित होता है, परन्तु अचानक दीया तो कभी ही प्रकट होता है! हमें सूरत के स्टेशन पर अचानक दीया प्रज्वलित हो गया था!

प्रश्नकर्ता : आपका जो व्यवहार है, वह भी शुभ व्यवहार में से ही उत्पन्न होता है न?

दादाश्री : संसार में एक तो शुभ व्यवहार है और एक अशुभ व्यवहार है। जगत् के लोग सिर्फ शुभ व्यवहार में नहीं रह सकते, वे शुभाशुभ में रहते हैं! संत शुभ व्यवहार में रहते हैं और जो चार वेदों से ऊपर पहुँच चुके हैं, ऐसे 'ज्ञानी पुरुष' शुभाशुभ व्यवहार से परे शुद्ध व्यवहार में होते हैं!

प्रश्नकर्ता : गुरु किसे कहते है?

दादाश्री : भूलवाला गुरु नहीं हो सकता। परन्तु वे कैसी भूलें होती हैं, तो चलाई जा सकती हैं? कि जो भूलें दूसरे किसीको भी नुकसानदायक नहीं हो। खुद ही जानता है कि ये भूलें अभी तक मुझमें बची हैं, यानी कि सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम भूलें होती हैं। नहीं तो परमात्मा और उनमें फर्क ही क्या रहा?

'ज्ञानी पुरुष' खुद देहधारी रूप में परमात्मा ही कहलाते हैं। जिनकी एक भी स्थूल भूल नहीं है या एक भी सूक्ष्म भूल नहीं है।

जगत् दो प्रकार की भूलें देख सकता है : एक स्थूल और एक सूक्ष्म। स्थूल भूलें बाहर की पब्लिक भी देख सकती है और सूक्ष्म भूलें

बुद्धिजीवी देख सकते हैं। ये दोनों भूलें 'ज्ञानी पुरुष' में नहीं होतीं!

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी पुरुष' किस पुण्य के आधार पर मिलते हैं?

दादाश्री : पुण्यानुबंधी पुण्य के आधार पर! यह सब जो पुण्य दिखते हैं, वे पापानुबंधी पुण्य हैं। पापानुबंधी पुण्य अर्थात् बंगला, मोटर, घर पर सभी सुविधाएँ, वह सब उस पुण्य के आधार पर होता है, परन्तु उस पुण्य में से विचार खराब आते हैं, किसका ले लूँ, कहाँ से लूट लूँ, कहाँ से इकट्ठा कर लूँ, किसका भोग लूँ! वह *अणहक्क* का भोगने के लिए तैयार ही होता है। *अणहक्क* की लक्ष्मी भी ले लेता है, वह सब पापानुबंधी पुण्य कहलाता है। पुण्य के आधार पर सुख भोगता है, परन्तु नये अनुबंध पाप के डालता है!

और जिस पुण्य से सुख-सुविधाएँ बहुत नहीं मिलतीं, परन्तु उच्च विचार आते हैं कि, किस प्रकार से किसीको दु:ख नहीं हो ऐसा आचरण करूँ, भले ही खुद को थोड़ी अड़चन पड़ती हो, उसमें हर्ज नहीं है, परन्तु किसीको *उपाधि* में नहीं डालूँ, वह पुण्यानुबंधी पुण्य कहलाता है। अर्थात् नये अनुबंध भी पुण्य के डलते है।

प्रश्नकर्ता : मुझे आपके पास से 'ज्ञान' लेना है परन्तु हमने पहले गुरु बनाए हुए हैं, उससे कोई मुश्किल तो नहीं आएगी न?

दादाश्री : नहीं, आपके गुरु को रहने देना, गुरु के बिना किस तरह चलेगा? वे गुरु हमें सांसारिक धर्म सिखलाते हैं। 'क्या अच्छा करना है और क्या खराब छोड़ देना है' वे सारी बातें हमें समझाते हैं. परन्तु संसार तो खड़ा ही रहेगा न? और हमें तो मोक्ष में जाना है! उसके लिए 'ज्ञानी पुरुष' चाहिए अलग से, 'ज्ञानी पुरुष', वे भगवानपक्षी कहलाते हैं। व्यवहार में वे गुरु और निश्चय में ज्ञानी! दोनों हों तो काम होगा, इसलिए आपके जो गुरु हैं, उन्हें रहने देना। वहाँ पर दर्शन करने भी जाना!

प्रश्नकर्ता : ये सत्पुरुष तो सभी को एकसमान बरसात देते हैं, परन्तु यदि मेरा नीम हो और दूसरे का आम हो, तो बीज में फर्क पड़ जाएगा न? फिर एक-सा परिणाम किस तरह प्राप्त करेंगे?

दादाश्री : अपने यहाँ तो बीज की कोई परेशानी नहीं है। यहाँ पर तो आपको विनयपूर्वक मुझसे कहना है कि साहब, मेरा कल्याण कीजिए। यहाँ पर परम विनय से मोक्ष है।

यह पाँचवे *आरे* का पौद्गलिक सड़न है, यह कभी भी 'रिपेयर' नहीं होगा। यहाँ से रिपेयर करो तो वहाँ से टूटेगा और वहाँ से रिपेयर करो तो यहाँ से टूटेगा। इसके बदले तो 'अक्रम विज्ञान' अंदर से शुद्ध कर देता है और आपको अलग रखता है!

प्रश्नकर्ता : 'दादा' मुझे 'ज्ञान' देंगे परन्तु मुझमें समझने की शक्ति नहीं हो तो क्या करूँ?

दादाश्री : भीतर आत्मा है न, जीवित हो इसलिए सब हो जाएगा। आपमें समझने की शक्ति है, ऐसा यदि मैं पास करने बैठूँ तो कोई पास ही नहीं हो पाएगा। इसलिए मैंने शुरूआत में ऋषभदेव भगवान की मूर्ति के पास बात करके पूछा था कि यह अक्रम विज्ञान देना हो तो किसे दूँ? पास होने के लिए तैतीस प्रतिशत मार्क्स चाहिए और कोई तीन प्रतिशत के ऊपर आता ही नहीं। तब भगवान ने कहा कि तीन प्रतिशतवाले को दो। उसके बाद फिर पार वेल्युवाले को देने लगे, यानी कि ज़ीरो मार्क्सवाले! अभी तो माइनस मार्क्सवालों को यह 'ज्ञान' दिया जा रहा है।

प्रश्नकर्ता : याद करते ही हमें जो दादा भगवान के दर्शन होते हैं और रास्ता दिखाते हैं, वह किसी वैज्ञानिक प्रक्रिया के आधार पर है?

दादाश्री : वह स्वभाव से ही है सारा! उसमें शुद्ध चेतन साइलेन्ट होता है। यह 'लाइट' साइलेन्ट है। 'लाइट' के आधार पर सब क्रियाएँ करता है या नहीं करता? 'लाइट' का फायदा मिलता है!

प्रश्नकर्ता : याद करते ही, 'दादा भगवान' हाज़िर हो जाते हैं। वह क्रिया शुद्ध चेतन के आधार पर होनेवाली बाहर की क्रिया है?

दादाश्री : आधार नहीं, वह तो स्वाभाविक क्रिया है। भीतर सूक्ष्म

शरीर का आकर्षण होना, वह स्वाभाविक क्रिया है।

प्रश्नकर्ता : परन्तु वह *पुद्‌गल*वाले भाग में होता है न?

दादाश्री : सबकुछ *पुद्‌गल* ही कहलाता है। जगत् उसे चेतन मानता है, वास्तव में वहाँ पर चेतन है ही नहीं। कोई चेतन तक पहुँचा ही नहीं! चेतन की परछाई तक भी नहीं पहुँचा!

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी और ज्ञान-अवतार, इन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : उनमें खास कोई फर्क नहीं होता, परन्तु ज्ञानी तो ऐसा है न कि सभी को, शास्त्र के ज्ञानियों को भी ज्ञानी ही कहते हैं न? फिर वे शास्त्र चाहे जो भी हो। कुरान को जानता हो उसे भी ज्ञानी कहते हैं। यानी कि ज्ञान अवतार कहा हुआ है। दूसरे किसीसे ज्ञान-अवतार नहीं लिखा जा सकता, ज्ञानी अकेले ही लिख सकते हैं, उतना फर्क रहा!

प्रश्नकर्ता : कृपालुदेव ज्ञान-अवतार कहलाएँगे न?

दादाश्री : हाँ, वे तो ज्ञान-अवतार हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्मज्ञानी और केवळज्ञानी में क्या फर्क है?

दादाश्री : कुछ भी फर्क नहीं है। आत्मा 'केवळज्ञान स्वरूप' है, परन्तु सत्ता के कारण फर्क है। सत्ता अर्थात् आवरण के कारण केवळज्ञान नहीं दिखता है। बाहर का दिखता है। सत्ता वही की वही होती है, जैसे किसीको डेढ़ नंबर के चश्मे हों और किसीको चश्मे नहीं हों तो फर्क पड़ेगा न? उसके जैसा है!

प्रश्नकर्ता : युग पुरुष प्रकट होंगे हमलोगों के शासन में?

दादाश्री : होंगे न! युग पुरुष नहीं होंगे, तो यह दुनिया किस तरह चलेगी? कुदरत को गरज़ है, उसके लिए हमलोगों को गरज़ रखने की ज़रूरत नहीं है। जन्मोत्री देखने की भी ज़रूरत नहीं है। वह तो कुदरत के नियम से ही होगा। आप अपनी तैयारी रखो, बिस्तर-कपड़े बाँधकर गाड़ी कब आए और बैठ जाएँ, ऐसी तैयारी रखो।

प्रश्नकर्ता : सही गाड़ी आई या गलत आई है, उसका पता किस तरह चलेगा?

दादाश्री : ऐसी शंका हो तो घर चले जाना। भगवान के वहाँ शंकावाले का तो काम ही नहीं है। इन गाड़ियों में सही-गलत नहीं करना होता है। समझने में सही-गलत करना होता है।

प्रश्नकर्ता : भक्त और ज्ञानी, इन दोनों में फर्क है क्या?

दादाश्री : हाँ, सेव्य और सेवक जितना फर्क है! भक्त सेवक है, वे बाद में सेव्य बनेंगे। ज्ञानी सेव्य हैं और भक्त सेवक हैं। सेव्य का सेवन करने से सेव्य बनते जाते हैं और रूप तो एक ही है, परन्तु अवस्थाओं के कारण बदलता है। जिन्होंने आत्मा प्राप्त कर लिया है, वे सभी ज्ञानी कहलाते हैं, परन्तु यदि सभी ज्ञानी कहलाने लगें तो क्या जवाब दोगे? यानी कि ज्ञानी श्रुतज्ञान सहित होने चाहिए। वीतराग भगवान का पूरा श्रुतज्ञान, उसी प्रकार वेदांत मार्ग का सभी श्रुतज्ञान होता है, तब उन्हें ज्ञानी कह सकते हैं। ऐसे ही ज्ञानी नहीं कहे जा सकते!

प्रश्नकर्ता : आशीर्वाद माँगें और दें, तो वे फलित होते हैं क्या?

दादाश्री : हाँ, परन्तु हमेशा सभी फलित नहीं होते, उसमें अपना वचनबल होना चाहिए, तब वह फलित होगा। नहीं तो फिर भी आपको आशीर्वाद तो देने चाहिए। बाकी किसीके देने से दिया नहीं जाता, वह तो उसका काम होनेवाला होता है, तब यह निमित्त बन जाता है। जिसका यशनामकर्म होता है वे निमित्त बन जाते हैं, फिर आशीर्वाद की दुकानें खोलते हैं। खुद में तो संडास जाने की भी शक्ति नहीं है, तो आशीर्वाद क्या देता! यह तो यशनामकर्म होता है, बड़े लोगों का यशनाम कर्म अधिक अच्छा होता है।

जगत् कल्याण की भावना बहुत समय से, बहुत जन्मों से करते आए हों तो यशनाम कर्म बहुत बड़ा होता है। यशनाम कर्म तो जगत्कल्याण की भावना में से उत्पन्न होता है। जगत् के लोगों को सुख हो, जितने

परिमाण में ऐसी इच्छा होती है, उसमें से यशनाम कर्म बँधता है और जगत् को दु:ख दें, तो अपयश नामकर्म बँधता है। अपयश नामकर्मवाला चाहे जितना काम करे, फिर भी अपयश मिलता है! बहुत लोग यहाँ मुझे कहते हैं कि, 'मैंने बहुत काम किया, फिर भी मुझे अपयश मिलता है।' 'अरे, तू अपयश लेकर आया है, इसलिए अपयश मिलेगा। तुझे तो तेरा काम करना है और अपयश लेना है!'

प्रश्नकर्ता : आप विधि करवाते हैं, तो उसके स्थान के रूप में अंगूठे को ही महत्व क्यों देते हैं?

दादाश्री : जिस रास्ते से भगवान से जल्दी तार जुड़े उस जगह पर विधि करवाते हैं। दूसरी जगह पर करें तो तार देर से पहुँचेगा। हमें जल्दी खबर भेजनी है न इसलिए। तुझे पसंद नहीं आया?

प्रश्नकर्ता : 'क्विक सर्विस' तो सभी को पसंद आती है।

दादाश्री : यानी कि ये लोग कुछ बोलते हैं कि अमृत झरता है, कुछ ऐसा अमृत झरता है क्या? तुझे थोड़ा-बहुत अनुभव हुआ?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तब ठीक है। जिस किसी रास्ते अमृत टपके वह काम का!

प्रश्नकर्ता : 'सर्वज्ञ' किसे कहते हैं?

दादाश्री : यह कविराज ने हमारे लिए 'सर्वज्ञ' लिखा है, वास्तव में तो ये कारणसर्वज्ञ हैं। 'सर्वज्ञ' तो, ३६० डिग्री के हों, तब 'सर्वज्ञ' कहलाते हैं। यह तो हमारा ३५६ डिग्री का है, हम सर्वज्ञ के कारणों का सेवन करते हैं!

खुद एक समय भी पर-समय में नहीं जाए, निरंतर स्वसमय में रहें, वे 'सर्वज्ञ'। हम संपूर्ण अभ्यंतर निर्ग्रंथ हैं। हमें जिस वेष में 'ज्ञान' हुआ था, उस वेष में परिवर्तन नहीं होगा। हमें तो, ये कपड़े निकाल लो, तो

भी हर्ज नहीं और रहने दो तो भी हर्ज नहीं है। हमें लूट ले तो भी हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आपमें कितने कर्मों का अभाव है?

दादाश्री : हममें सभी कर्मों का अभाव है। सिर्फ इस देह के पोषण के लिए ज़रूरत हो उतना होता है। वह कर्म भी *संवर*पूर्वक की *निर्जरा* के रूप में होता है। दूसरा कोई हमें विचार ही नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : यानी कि आपको अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन प्रकट हो चुका है?

दादाश्री : सबकुछ प्रकट हो चुका है। सिर्फ चार डिग्री की ही कमी है। जितना केवळज्ञानी को 'ज्ञान' में दिखता है, उतना हमें समझ में आ गया है। उनका केवळज्ञान कहलाता है, हमारा केवळदर्शन कहलाता है। इसलिए हम कहते हैं कि पूरे जगत् के बारे में यहाँ पर पूछा जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : 'केवळज्ञान' के बिना 'केवळदर्शन' हो सकता है?

दादाश्री : क्रमिक मार्ग में 'केवळज्ञान' के बिना 'केवळदर्शन' नहीं हो सकता। 'अक्रममार्ग' में 'केवळदर्शन' हो जाता है, फिर 'केवळज्ञान' होने तक कुछ समय लगता है। ये सब बुद्धि के विषय नहीं हैं, यह ज्ञान का विषय है।

प्रश्नकर्ता : आप साक्षात्कारी पुरुष हैं, अब आप मंदिरों में जाओ, उससे मंदिर में जाने के लिए प्रतिष्ठा खड़ी नहीं होती?

दादाश्री : हम जहाँ जाते हैं, वहाँ पर सभी जगह दर्शन करने जाते हैं। जिनालय में, महादेवजी के मंदिर में, माताजी के मंदिर में, मस्जिद में, सभी जगह दर्शन करने जाते हैं। हम नहीं जाएँ तो लोग भी नहीं जाएँगे। उससे गलत प्रथा पड़ेगी। हमसे गलत प्रथा नहीं पड़े। उसकी हम पर जिम्मेदारी होती है। लोगों को किस तरह शांति हो, कैसे सुख हो,

हमारे ऐसे रास्ते होते हैं।

यह अक्रम विज्ञान इतना अधिक फलदायी है, एक मिनिट भी टाइम कैसे खोएँ? फिर ऐसा जोग किसी जन्म में नहीं आएगा। इसलिए इस जन्म में पूरा कर लेना है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह पूरा कर लेने को कहा, वह किस तरह?

दादाश्री : हम जब तक हैं, तब तक और कहीं टाइम नहीं बिगाड़ना चाहिए। हम बड़ौदा जाएँ और जिसके वैसे अनुकूल संयोग हों और पैसे हों, उन्हें वहाँ पर आना चाहिए। जितना हो सके उतना हमारा अधिक समय लेना। सिर्फ हमारे सत्संग में आकर बैठे रहना। और कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है!

प्रश्नकर्ता : आपका परिचय देंगे?

दादाश्री : 'मुझे' आप पहचान नहीं सकोगे। 'ये' जो आप देखते हो, वे तो अंबालाल पटेल हैं - भादरण गाँव के! मुझे तो आप पहचान ही नहीं सकोगे न! क्योंकि 'मैं' इस तरह दिखूँ, ऐसा हूँ ही नहीं!

यह जो वाणी बोली जा रही है, वह 'ओरिजिनल टेपरिकॉर्डर' है। आपका भी 'ओरिजिनल टेपरिकॉर्डर' है, परन्तु आपको अहंकार है इसलिए 'मैं बोला', 'मैं बोला' करते रहते हो! हमें अहंकार नहीं है इसलिए ऐसा कुछ झंझट ही नहीं रहता। ये दिखते हैं वे भादरण के पटेल हैं और भीतर 'दादा भगवान' बैठे हैं! यहाँ व्यक्त हो चुके हैं और आपमें अव्यक्त रूप से रहे हुए हैं। उन व्यक्त के साथ विनयपूर्वक बैठने से आपके भी व्यक्त होते जाएँगे। यह परम विनय का मार्ग है। यहाँ पैसों की ज़रूरत नहीं है। यहाँ सेवा की भी ज़रूरत नहीं है। यहाँ किसी चीज़ की भी ज़रूरत नहीं है। यहाँ द्रव्यपूजा नहीं होती, यह तो मोक्ष का मार्ग है।

हमारे पास अविनय करो उसमें हमें हर्ज नहीं है, परन्तु आप अपने खुद पर अंतराय डाल रहे हो, आप हमें गालियाँ देते हो, वह आप खुद अपने को ही नुकसान कर रहे हो। यहाँ तो बहुत विनय चाहिए, परम विनय

चाहिए! यहाँ एक अक्षर भी उल्टा-सीधा नहीं बोलना चाहिए। अभी यदि मामलतदार के पास गए हों तो उस घड़ी चुप होकर बैठे रहेंगे, वहाँ कैसे एक अक्षर भी नहीं बोलते! और ये तो 'ज्ञानी पुरुष'! उनके पास तो बोलते होंगे? 'ज्ञानी पुरुष' तो देहधारी परमात्मा कहलाते हैं!!! वहाँ सभी वस्तुएँ प्राप्त हों, ऐसा है!

खुद अपनी ही भक्ति

प्रश्नकर्ता : हम इन्वाइट नहीं करें, फिर भी अपने आप वस्तु आती है। इस नींद को लाना पड़ता है? वह अपने आप ही आती है, वैसे ही यह ज्ञान भी अपने आप ही आएगा?

दादाश्री : ये रिलेटिव वस्तुएँ इन्वाइट करने जैसी नहीं हैं। इन्वाइट करने जैसी वस्तु क्या है? कि हमें जिस गाँव जाना हो, उसका ज्ञान जानने जैसा है। बाकी दूसरा सब तो अपने आप ही आएगा।

आज धर्म में जो सारे पुरुषार्थ चल रहे हैं, वे तो खेतीबाड़ी करते हैं, बीज डालते हैं उसका पाँच सौ-पाँच सौ गुना मिलता रहता है।

प्रश्नकर्ता : अपने इस मार्ग में भी थोड़ी खेतीबाड़ी है न? अपने में भी आरती करते हैं न?

दादाश्री : अपने में खेतीबाड़ी होती होगी? खुद खुदा हो गया न! अपने यहाँ जो आरती है वह खुद की आरती है, यहाँ हर एक व्यक्ति खुद अपनी ही आरती कर रहा है। अपने यहाँ जो पद गाए जाते हैं, वह खुद की ही कीर्तन भक्ति है! अपने यहाँ खुद के अलावा रिलेटिव वस्तुएँ हैं ही नहीं!

प्रश्नकर्ता : खुद की कीर्तनभक्ति करनेवाला कौन?

दादाश्री : खुद ही, खुद!

प्रश्नकर्ता : वह कौन-सा भाग है?

दादाश्री : वह प्रज्ञाशक्ति है, वह काम कर रही है!

प्रश्नकर्ता : अज्ञा नहीं न?

दादाश्री : नहीं, अज्ञा तो रहेगी ही नहीं! अज्ञा हो वहाँ पर संसार खड़ा हो जाएगा। संसारी बाबत की सलाह दें, वह अज्ञाशक्ति है!

जिसे खबर नहीं है कि अपने यहाँ खुद अपनी ही कीर्तनभक्ति करते हैं, उन्हें तो फिर नुकसान ही होगा न? यह जानने के बाद नुकसान मत होने दो! यहाँ जो भक्ति करते हैं, वह मेरे लिए, 'ए. एम. पटेल' के लिए नहीं है, 'दादा भगवान' की है! और 'दादा' तो सबमें बैठे हुए हैं, मुझ अकेले में नहीं बैठे हुए हैं, वे आपमें भी बैठे हुए हैं, यह उनकी ही भक्ति है! यह आरती बगैरह सब उनका ही है और इसलिए ही यहाँ पर सभीको आनंद आता है, आपके साथ मैं भी अंदर बैठे हुए 'दादा' को मेरे नमस्कार करता हूँ!

प्रश्नकर्ता : उस घड़ी सब आनंद में आ जाते हैं, उसका कारण क्या है?

दादाश्री : क्योंकि ये 'दादा' यदि देहधारी रूप में होते न तब तो मन में ऐसा होता कि खुद अपना ही गाना गाते रहते हैं! वास्तव में यह वैसा नहीं है! कृष्ण भगवान ने गीता में इसी तरह गाया है! परन्तु लोगों को समझ में नहीं आता न! ''तू' ही कृष्ण भगवान है'', जब तक स्वरूप का भान नहीं हुआ हो, तब तक यह किस तरह समझ में आएगा?

सुननेवाला भी खुद का सत्संग करता है और बोलनेवाला भी खुद का सत्संग करता है। यह विज्ञान इस प्रकार का है कि किसी व्यक्ति को दूसरों के लिए करने की ज़रूरत नहीं है, अपने आप खुद अपने लिए ही कर रहे हैं!

ये आपको दिखते हैं, वे 'दादा भगवान' हैं? नहीं, नहीं हैं ये 'दादा भगवान', ये तो 'ए. एम. पटेल' हैं, भादरण गाँव के हैं। 'दादा भगवान' तो अंदर प्रकट हुए हैं, वे हैं!

उनका स्वरूप क्या है? ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप - वह उनका

स्वरूप है! ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप के आधार पर जो अनुभव में आता है, वे 'दादा भगवान' हैं।

वर्ना ये तो पटेल हैं। कल यह बुलबुला फूट जाएगा तो लोग इसे जला देंगे और 'दादा भगवान' को कोई नहीं जला सकता। क्योंकि अग्नि स्थूल स्वरूप है और आत्मा सूक्ष्म है। स्थूल सूक्ष्म को किस तरह जलाएगा? उसी प्रकार के ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप के स्वरूप में रहे हुए 'दादा भगवान' आपके भीतर भी बिराजमान हैं! वह आप खुद ही हो!

जय सच्चिदानंद

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

अणहक्क : बिना हक़ का

अशाता : दुःख-परिणाम

आड़ाई : अहंकार का टेढ़ापन

आरे : कालचक्र का एक भाग

उपाधि : बाहर से आनेवाले दुःख

ऊपरी : बॉस, वरिष्ठ मालिक

गलन : डिस्चार्ज होना, खाली होना

निकाल : निपटारा

निर्जरा : आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना

नोंध : अत्यंत राग अथवा द्वेष सहित लम्बे समय तक याद रखना, नोट करना

पुद्गल : जिसका सर्जन और विनाश हो

पूरण : चार्ज होना, भरना

लागणी : भावुकतावाला प्रेम, लगाव

वळगण : बला, भूतावेश, पाश, बंधन

सिलक : जमापूँजी

संवर : शुद्ध उपयोगपूर्वक कर्म की निर्जरा जिससे नये कर्म चार्ज नहीं होते

शाता : सुख-परिणाम

प्राप्तिस्थान

दादा भगवान परिवार

अडालज : त्रिमंदिर संकुल, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे, पोस्ट : अडालज, जिला : गांधीनगर, गुजरात - 382421
फोन : (०७९) ३९८३०१००, email : info@dadabhagwan.org

अहमदाबाद : दादा दर्शन, ५, ममतापार्क सोसाइटी, नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-३८००१४. फोन : 079-27540408

राजकोट : त्रिमंदिर, अहमदाबाद-राजकोट हाईवे, तरघड़िया चोकड़ी, पोस्ट : मालियासण, जिला : राजकोट. फोन : 9274111393

भुज : त्रिमंदिर, हिल गार्डन के पीछे, सहयोगनगर के पास, एयरपोर्ट रोड, भुज (कच्छ), गुजरात. संपर्क : 02832-290123

मुंबई	: 9323528901	**दिल्ही**	: 9310022350
कोलकता	: 033-32933885	**चेन्नई**	: 9380159957
जयपुर	: 9351408285	**भोपाल**	: 9425024405
इन्दोर	: 9893545351	**जबलपुर**	: 9425160428
रायपुर	: 9425245616	**भिलाई**	: 9827481336
पटना	: 9431015601	**अमरावती**	: 9823127601
बेंगलूर	: 9590979099	**हैदराबाद**	: 9989877786

U.S.A. : **Dada Bhagwan Vignan Institue : Dr. Bachu Amin,** 100, SW Redbud Lane, Topeka, Kansas 66606.
Tel : 785-271-0869, E-mail : bamin@cox.net
Dr. Shirish Patel, 2659, Raven Circle, Corona, CA 92882
Tel. : 951-734-4715, **E-mail :** shirishpatel@sbcglobal.net

U.K. : **Dada Centre**, 236, Kingsbury Rd., (Above Kingsbury Print.), Kingsbury, London, NW9 0BH, **Tel. :** +44 7956476253,
E-mail: dadabhagwan_uk@yahoo.com

Canada : **Dinesh Patel,** 4, Halesia Drive, Etobicock, Toronto, M9W 6B7. **Tel. :** 416 675 3543
E-mail: ashadinsha@yahoo.ca

Dubai : +971 506754832 **Singapore** : +65 81129229

Australia : +61 421127947 **New Zealand :** +64 96237423

Website : www.dadabhagwan.org

आप्तवाणी, तमाम धर्मों का सार!

आप्तवाणी की ख्याति दिनोंदिन बहुत बढ़ेगी। पूरे जगत के खुलासे इस में से मिलेंगे। सभी धर्म इन में से प्राप्ति करेंगे, यानी इन आप्तवाणियों में से ये ही लोग तत्व निकाल लेंगे, इसी की ज़रुरत है।

आप्तवाणी पढ़कर तो कितने ही लोग कहते हैं कि हमें और कोई धार्मिक पुस्तक पढ़ने की ज़रुरत नहीं पड़ेगी। यानी इन आप्तवाणियों से ही चलेगा सब कुछ। अपनी पुस्तकें लोगों को बहुत हेल्प करेंगी।

इसलिए सभी से कहा है कि एक बार पुस्तकें छपवा दो। छप गई न, अब उन पर से लोग और छापेंगे, परंतु अब यह खो नही जाएगा। यह बाते खोएँगी नहीं अब।

- दादाश्री

आत्मविज्ञानी 'ए. एम. पटेल' के भीतर प्रकट हुए

दादा भगवानना असीम जय जयकार हो